इकाई 1: (UNIT-1) मनोविज्ञान: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इसका अर्थ, शिक्षा के साथ सम्बन्ध तथा मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान में अंतर (Psychology: Its meaning in the Historical Perspective, Relation with Education, Distinction between Psychology and Educational Psychology)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मनोविज्ञान का अर्थ

1.4 मनोविज्ञान की परिभाषाएं

1.5 मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.6 शिक्षा का अर्थ

1.7 शिक्षा में मनोविज्ञान की भूमिका

अपनी उन्नति जानिए

1.8 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ

1.9 शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध

1.10 मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान में अंतर

अपनी उन्नति जानिए

1.11 सारांश

1.12 शब्दावली

1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.15 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा केवल जानकारी प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का माध्यम भी है। इस प्रक्रिया को प्रभावी और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए मनोविज्ञान का सहयोग अत्यंत आवश्यक है। मनोविज्ञान, जो मानव व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है, यह समझने में सहायता करता है कि विद्यार्थी कैसे सीखते हैं, क्या सोचते हैं, उनकी रुचियाँ, आवश्यकताएँ और क्षमताएँ क्या हैं। शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार शिक्षण और अधिगम की उस पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हैं, जिसके माध्यम से शिक्षक विद्यार्थी की मानसिक अवस्था, विकास स्तर और अधिगम शैली को समझकर उपयुक्त शिक्षण विधियाँ अपना सकते हैं। अतः शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो शिक्षण को अधिक प्रभावशाली और विद्यार्थी-केंद्रित बनाती है।

मनोविज्ञान (Psychology) का अर्थ है मन और व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन। यह एक ऐसी शाखा है जो यह समझने का प्रयास करती है कि लोग कैसे सोचते हैं, महसूस करते हैं, सीखते हैं, और व्यवहार करते हैं।

संक्षेप में:

"मन" = सोच, भावना, स्मृति, इच्छा आदि।

"विज्ञान" = व्यवस्थित और प्रमाण-आधारित अध्ययन।

मनोविज्ञान शब्द संस्कृत के दो शब्दों से बना है:

मन (Mind)

विज्ञान (Study/Science)

इसका उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक क्रियाकलापों और व्यवहार के कारणों को समझना और उनकी व्याख्या करना होता है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात शिक्षार्थी-

1. मनोविज्ञान के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगें।
2. मनोविज्ञान की परिभाषाओं को आत्मसात कर सकेंगे
3. मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की व्याख्या कर सकेंगे।
4. शिक्षा के अर्थ का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. शिक्षा में मनोविज्ञान की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।
6. शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को आत्मसात कर सकेंगें।
7. शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध का विश्लेषण कर सकेंगें।
8. मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान में अंतर का विश्लेषण कर सकेंगें।

1.3 मनोविज्ञान का अर्थ

मनोविज्ञान एक ऐसी वैज्ञानिक शाखा है जो मन (Mind), व्यवहार (Behaviour) और मानसिक प्रक्रियाओं (Mental Processes) का अध्ययन करती है। यह यह जानने का प्रयास करता है कि व्यक्ति कैसे सोचता है, महसूस करता है, सीखता है, कार्य करता है, और दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करता है।

शब्द की उत्पत्ति के अनुसार वास्तविक अर्थ:

'मनोविज्ञान' दो शब्दों से मिलकर बना है:

'मन' – जो मानसिक क्रियाओं, जैसे सोच, भावना, इच्छा आदि को दर्शाता है।

'विज्ञान' – जो किसी विषय के व्यवस्थित और तर्कसंगत अध्ययन को दर्शाता है।

अतः मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है — "मन का विज्ञान" या "मन का ज्ञान"।

मनोविज्ञान शब्द की उत्पत्ति:

‘मनो’ = मन

‘विज्ञान’ = ज्ञान या अध्ययन

इस प्रकार, मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है "मन का अध्ययन"।

मनोविज्ञान क्या अध्ययन करता है?

1. मानव मस्तिष्क की कार्यप्रणाली – जैसे स्मृति, एकाग्रता, निर्णय लेना।

2. भावनाएँ और अनुभूतियाँ – जैसे क्रोध, प्रेम, दुख, खुशी।

3. व्यवहार – जैसे बोलना, चलना, प्रतिक्रिया देना।

4. व्यक्तित्व और विकास – जैसे बचपन से बुढ़ापे तक मनोविकास।

5. सीखने की प्रक्रिया – कैसे हम अनुभवों से सीखते हैं।

मनोविज्ञान के उद्देश्य:

1. व्यवहार को समझना

2. व्यवहार का वर्णन करना (Describe)

3. भविष्यवाणी करना (Predict)

4. व्यवहार को नियंत्रित करना (Control/Modify)

5. समस्याओं का समाधान करना (जैसे तनाव, अवसाद, सीखने में कठिनाई आदि)

मनोविज्ञान का वास्तविक अर्थ है मानव मस्तिष्क की क्रियाओं और व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति कैसे सोचता है, अनुभव करता है, महसूस करता है, और व्यवहार करता है।

आज के युग में मनोविज्ञान केवल मन का नहीं, बल्कि व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है। यह बाहरी व्यवहार (जो देखा जा सकता है) और आंतरिक मानसिक प्रक्रियाओं (जो अदृश्य होती हैं) — दोनों की व्याख्या करता है।

निष्कर्ष- मनोविज्ञान का वास्तविक अर्थ है मनुष्य के विचारों, भावनाओं, इच्छाओं, निर्णयों और कार्यों को समझना, उसका विश्लेषण करना और उन्हें वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करना। यह केवल एक सैद्धांतिक विषय नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन में अत्यंत उपयोगी ज्ञान है। मनोविज्ञान केवल रोगों या मानसिक विकारों से संबंधित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक विज्ञान है जो हमें मानव स्वभाव को समझने, संबंध सुधारने, और समाज में बेहतर समायोजन करने में सहायता करता है। यह शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, अपराध, खेल, पारिवारिक जीवन जैसे अनेक क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध होता है।

1.4 मनोविज्ञान की परिभाषाएं

मनोविज्ञान की प्रमुख परिभाषाएँ (Definitions of Psychology): निम्नलिखित है:-

मनोविज्ञान को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। नीचे कुछ प्रमुख परिभाषाएँ दी गई हैं:

1. शाब्दिक परिभाषा:

"मनोविज्ञान" शब्द संस्कृत के दो शब्दों "मन" और "विज्ञान" से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – "मन का अध्ययन"।

2. प्रारंभिक परिभाषा (आत्मा का विज्ञान):

प्राचीन समय में मनोविज्ञान को "आत्मा का विज्ञान" माना जाता था, लेकिन आत्मा को न देखा जा सकता है और न ही मापा जा सकता है, इसलिए यह परिभाषा वैज्ञानिक नहीं मानी गई।

3. मस्तिष्क का विज्ञान (Mind-based Psychology):

बाद में इसे "मन का विज्ञान" कहा गया। यह विचारधारा मानसिक प्रक्रियाओं पर केंद्रित थी, लेकिन केवल आंतरिक अनुभवों पर ध्यान देने से व्यवहार की पूरी समझ नहीं हो पाई।

4. व्यवहारवादी परिभाषा:

जे.बी. वॉटसन (J.B. Watson) के अनुसार:

"मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।"

("Psychology is the science of behaviour.")

5. आधुनिक परिभाषा:

क्रो एंड क्रो (Crow & Crow) के अनुसार:

"मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मानव एवं प्राणी के व्यवहार और अनुभवों का अध्ययन करता है।"

6. विलियम जेम्स (William James):

"मनोविज्ञान, चेतन मन के कार्यों का विज्ञान है।"

("Psychology is the science of mental life.")

7. स्किनर (B.F. Skinner):

"मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो जीव के व्यवहार का अध्ययन करता है, जैसा कि वह देखा और मापा जा सकता है।"

निष्कर्ष- मनोविज्ञान की परिभाषाएँ समय और शोध के साथ विकसित हुई हैं। आज इसे एक व्यापक विज्ञान माना जाता है जो मानव मस्तिष्क, व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन पर आधारित है।

1.5 मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मनोविज्ञान का विकास एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में धीरे-धीरे हुआ। इसकी जड़ें दर्शन (Philosophy) और जीवविज्ञान (Biology) में पाई जाती हैं। पहले यह आत्मा, फिर मन और बाद में व्यवहार के अध्ययन तक विकसित हुआ।

1. प्राचीन काल (Ancient Period):

मनोविज्ञान की शुरुआत दर्शन से हुई।

भारत में उपनिषदों, वेदों, योगदर्शन (पतंजलि), और भगवद्गीता में मानसिक अवस्थाओं और आत्मा की चर्चा की गई है।

प्लेटो और अरस्तू (ग्रीक दार्शनिक) ने भी आत्मा, चेतना और स्मृति पर विचार व्यक्त किए।

2. मध्यकाल (Medieval Period):

इस काल में मनोविज्ञान धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोणों तक सीमित रहा।

ईसाई धर्मशास्त्र में आत्मा को ईश्वर से जोड़कर देखा गया।

वैज्ञानिक पद्धति का अभाव रहा।

3. आधुनिक काल की शुरुआत (17वीं – 18वीं शताब्दी):

रेने देकार्त (René Descartes) ने मन और शरीर के द्वैतवाद (Dualism) की बात की।

जॉन लॉक ने अनुभववाद (Empiricism) का समर्थन किया और कहा कि "मन एक खाली स्लेट (Tabula Rasa) है।"

4. मनोविज्ञान का स्वतंत्र विज्ञान के रूप में उदय (19वीं शताब्दी):

1879 में विल्हेम वुंट (Wilhelm Wundt) ने जर्मनी के लाइपज़िग विश्वविद्यालय में पहली मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की।

इसी घटना को मनोविज्ञान की जन्म तिथि माना जाता है।

वुंट ने मनोविज्ञान को प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया।

5. 20वीं शताब्दी – प्रमुख विचारधाराओं का विकास:

संरचनावाद (Structuralism): वुंट और टिचनर द्वारा; चेतना के घटकों का विश्लेषण।

कार्यक्षमता वाद (Functionalism): विलियम जेम्स द्वारा; मानसिक प्रक्रियाओं के कार्य पर बल।

व्यवहारवाद (Behaviourism): वॉटसन और स्किनर द्वारा; केवल देखे जाने योग्य व्यवहार का अध्ययन।

गेश्टाल्टवाद: मन को संपूर्णता में देखने का दृष्टिकोण (जर्मनी में विकसित)।

मनविश्लेषण (Psychoanalysis): सिगमंड फ्रायड द्वारा; अचेतन मन और मानसिक संघर्षों पर बल।

मानवतावादी मनोविज्ञान: एब्राहम मैसलो और कार्ल रोजर्स द्वारा; आत्मविकास और व्यक्ति की संभावनाओं पर बल।

6. समकालीन मनोविज्ञान (Contemporary Psychology):

आज मनोविज्ञान एक बहुआयामी विज्ञान है जिसमें कई शाखाएँ हैं – जैसे कि शैक्षिक मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान, अपराध मनोविज्ञान, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान आदि।

आधुनिक तकनीकों (जैसे ब्रेन स्कैनिंग, न्यूरोसाइंस) का उपयोग बढ़ रहा है।

निष्कर्ष- मनोविज्ञान एक दार्शनिक विचारधारा से विकसित होकर अब एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक विषय बन चुका है। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह दिखाती है कि मानव मन और व्यवहार को समझने की यह यात्रा हजारों वर्षों से चल रही है, और आज भी विकसित हो रही है।

1.6 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा मानव जीवन का आधार स्तंभ है, जो व्यक्ति को अज्ञानता से ज्ञान की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। यह केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है। शिक्षा से ही मनुष्य में संस्कार, नैतिकता, विवेक, और समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होती है। इसका उद्देश्य व्यक्ति

को न केवल ज्ञानवान बनाना है, बल्कि उसे एक सुजञ, सजग और जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित करना भी है। अतः शिक्षा का वास्तविक अर्थ केवल पढ़ना-लिखना नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला सिखाना है।

शिक्षा मानव जीवन का वह साधन है जो उसे पशु से मनुष्य बनाती है। यह केवल किताबी ज्ञान नहीं, बल्कि वह समग्र प्रक्रिया है जो व्यक्ति के आचार, विचार, व्यवहार और व्यक्तित्व को आकार देती है। शिक्षा ही वह प्रकाश है जो अज्ञान के अंधकार को दूर करती है।

मुख्य भाग:

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है—ज्ञान देना, सिखाना, विकसित करना। संस्कृत में 'शिक्षा' शब्द 'शिक्ष' धातु से बना है जिसका अर्थ है—सिखाना। परंतु व्यापक अर्थ में शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि व्यक्ति के मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक और सामाजिक विकास में सहायक होना है।

प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण, आत्मसंयम, और आध्यात्मिक उन्नति था। गुरुकुल व्यवस्था में गुरु शिष्य को जीवन के हर क्षेत्र की शिक्षा देता था। आज भी शिक्षा का यही मूल उद्देश्य है—व्यक्ति को ऐसा बनाना कि वह समाज में सजग, संवेदनशील और जिम्मेदार भूमिका निभा सके।

शिक्षा का महत्व:

शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाती है, सोचने की शक्ति देती है, और उसे अच्छे-बुरे में अंतर करना सिखाती है। एक शिक्षित समाज ही देश की उन्नति का आधार बनता है। महात्मा गांधी ने कहा था—"शिक्षा का उद्देश्य है – शरीर, मन और आत्मा का संतुलित विकास।"

निष्कर्ष: इस प्रकार, शिक्षा का अर्थ केवल किताबी ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। एक सच्ची शिक्षा वही है जो मनुष्य को चरित्रवान, नैतिक, विवेकशील और सहानुभूतिपूर्ण बनाए। इसलिए कहा गया है—"विद्या ददाति विनयम्।" अर्थात् शिक्षा विनम्रता देती है।

शिक्षा का सामान्य अर्थ है – ज्ञान, कौशल, मूल्यों, और संस्कारों का वह व्यवस्थित प्रक्रिया जिसके माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है।

शब्द की व्युत्पत्ति:

'शिक्षा' शब्द संस्कृत धातु 'शिक्ष्' से बना है, जिसका अर्थ है – सिखाना, ज्ञान देना, प्रशिक्षण देना।

शिक्षा का व्यापक अर्थ:

शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया है।

इसका उद्देश्य व्यक्ति को योग्य, जिम्मेदार, और आत्मनिर्भर बनाना है।

प्रसिद्ध विचारकों द्वारा शिक्षा की परिभाषाएँ:

1. स्वामी विवेकानंद:

"शिक्षा का अर्थ है मनुष्य में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति।"

2. महात्मा गांधी:

"शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण, जीवनोपयोगी कौशल, और समाज सेवा की भावना उत्पन्न करना है।"

3. जॉन डीवी (John Dewey):

"शिक्षा जीवन की तैयारी नहीं, स्वयं जीवन है।" ("Education is not preparation for life; education is life itself.")

निष्कर्ष- शिक्षा एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जो व्यक्ति को न केवल ज्ञान देती है, बल्कि उसे सोचने, समझने, निर्णय लेने, और समाज में उपयोगी भूमिका निभाने के योग्य बनाती है। यह व्यक्तित्व निर्माण का मूल आधार है।

1.7 शिक्षा में मनोविज्ञान की भूमिका

शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के समग्र विकास को सुनिश्चित करना है – जैसे बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक विकास। इस उद्देश्य की पूर्ति में मनोविज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा और मनोविज्ञान का गहरा संबंध है; क्योंकि जब तक हम विद्यार्थी के मन, व्यवहार, जरूरतों और क्षमताओं को नहीं समझेंगे, तब तक प्रभावी शिक्षण संभव नहीं है।

मुख्य भाग: शिक्षा में मनोविज्ञान की प्रमुख भूमिकाएँ

1. बालक की प्रकृति को समझना- हर बच्चा अलग होता है – उसकी रुचियाँ, क्षमताएँ, और सीखने की शैली भिन्न होती है। मनोविज्ञान शिक्षक को यह समझने में मदद करता है कि बच्चे कैसे सोचते हैं, सीखते हैं और व्यवहार करते हैं।

2. शिक्षण विधियों का चयन- मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार शिक्षक उम्र, रुचि और क्षमता के अनुरूप उपयुक्त शिक्षण विधि (जैसे प्रयोगात्मक, दृश्य-श्रव्य, समूह कार्य) का चुनाव कर सकते हैं।

3. प्रेरणा (Motivation)- सीखने में रुचि बनाए रखने और बच्चों को प्रेरित करने के लिए मनोविज्ञान आवश्यक है। मस्लो के सिद्धांत जैसे प्रेरणा की आवश्यकता को समझकर शिक्षक प्रेरक वातावरण बना सकते हैं।

4. अनुशासन और व्यवहार प्रबंधन- मनोविज्ञान शिक्षक को यह सिखाता है कि बच्चों के अनुचित व्यवहार को कैसे सकारात्मक तरीकों से सुधारा जाए।

5. मूल्यांकन और मापन- शिक्षा में मूल्यांकन का कार्य केवल अंक देने तक सीमित नहीं है। मनोविज्ञान द्वारा तैयार किए गए इंटेलिजेंस टेस्ट, पर्सनैलिटी टेस्ट आदि से बच्चों की योग्यता और प्रगति का सही आकलन किया जा सकता है।

6. समस्याओं की पहचान और समाधान- कुछ बच्चों को पढ़ाई में कठिनाई होती है (जैसे डिस्लेक्सिया, ध्यान की कमी आदि)। मनोविज्ञान शिक्षकों को ऐसे बच्चों की पहचान करने और उन्हें सहारा देने में सहायता करता है।

7. समाज और भावनात्मक विकास- मनोविज्ञान शिक्षक को यह समझने में सहायता करता है कि बच्चों की सामाजिकता, भावनाएँ और संबंध कैसे विकसित होते हैं।

निष्कर्ष- मनोविज्ञान शिक्षा का मूल स्तंभ है। एक अच्छा शिक्षक वही है जो बालकों के मनोविज्ञान को समझकर शिक्षण करता है। इसलिए यह कहना बिल्कुल उचित है कि "शिक्षा बिना मनोविज्ञान के अधूरी है।" शिक्षा को प्रभावशाली, व्यावहारिक और बालक-केंद्रित बनाने के लिए मनोविज्ञान की समझ आवश्यक है।

अपनी उन्नति जानिए

प्र.1 शिक्षा का उद्देश्य है।

प्र. 2 शिक्षा का अर्थ है ।

प्र. 3 मनोविज्ञान की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिये?

प्र. 4 मनोविज्ञान (Psychology) का अर्थ है क्या है।

1.8 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ

शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया, विद्यार्थी के व्यवहार, मानसिक विकास, और शिक्षण विधियों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि विद्यार्थी कैसे सीखते हैं, क्या सोचते हैं, किस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं, और एक शिक्षक कैसे प्रभावशाली ढंग से शिक्षा प्रदान कर सकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा:

1. क्रो एंड क्रो (Crow & Crow):

"शिक्षा मनोविज्ञान एक ऐसा अध्ययन है जो सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का वैज्ञानिक रूप से निरीक्षण करता है।"

2. स्किनर (B.F. Skinner):

"शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करता है।

मुख्य बातें:

यह विद्यार्थी के मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास पर केंद्रित होता है।

यह शिक्षक को सिखाता है कि वह कैसे अध्यापन, मूल्यांकन, और प्रेरणा के क्षेत्र में बालकों की आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करे।

शिक्षा मनोविज्ञान सीखने के नियमों, शिक्षण विधियों, प्रेरणा, मूल्यांकन, और बाल विकास जैसे विषयों से जुड़ा होता है।

निष्कर्ष- शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक और विद्यार्थी के बीच एक प्रभावी सेतु की तरह कार्य करता है। यह शिक्षक को यह समझने में मदद करता है कि हर बच्चा अलग होता है, और उसकी सीखने की शैली व मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए शिक्षा दी जानी चाहिए।

यह रहे शिक्षा मनोविज्ञान के उद्देश्य, विशेषताएँ और महत्व –

1. शिक्षा मनोविज्ञान के उद्देश्य (Objectives of Educational Psychology):

1. सीखने की प्रक्रिया को समझना: यह जानना कि विद्यार्थी कैसे सीखते हैं और उनकी सीखने की गति व शैली क्या है।

2. विद्यार्थी के व्यवहार का अध्ययन: बालक के मानसिक, सामाजिक, और भावनात्मक व्यवहार को समझना।

3. शिक्षण विधियों का विकास: ऐसी विधियाँ विकसित करना जो विभिन्न प्रकार के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त हों।

4. प्रेरणा के सिद्धांतों को समझना: सीखने के लिए प्रेरित करने के उपायों की पहचान करना।

5. मूल्यांकन व आकलन: विद्यार्थियों की प्रगति का सही मूल्यांकन कैसे करें – इसका मार्गदर्शन।

2. शिक्षा मनोविज्ञान की विशेषताएँ (Characteristics):

1. यह मनोविज्ञान की एक व्यावहारिक शाखा है।

2. यह बालक-केंद्रित है – हर छात्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है।

3. वैज्ञानिक विधियों पर आधारित होता है – जैसे प्रयोग, निरीक्षण, परीक्षण आदि।

4. व्यवहार में परिवर्तन पर केंद्रित है।

5. यह शिक्षकों के लिए सहायक होता है – जिससे वे अधिक प्रभावी ढंग से पढ़ा सकें।

3. शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व (Importance):

1. शिक्षक को योग्य बनाता है: शिक्षक विद्यार्थियों की मानसिकता को समझकर प्रभावी शिक्षण कर सकता है।

2. व्यक्तित्व विकास में सहायक: यह विद्यार्थियों के समग्र विकास (शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक) में मदद करता है।

3. सीखने की समस्याओं को हल करता है: जैसे ध्यान की कमी, अधिगम अक्षमता, व्यवहारिक समस्याएं आदि।

4. प्रेरणा एवं अनुशासन में सहायक: विद्यार्थियों को सकारात्मक रूप से प्रेरित और अनुशासित करने की विधियाँ बताता है।

5. शिक्षा को वैज्ञानिक बनाता है: शिक्षा को केवल परंपरागत पद्धति नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रक्रिया बनाता है।

1.9 शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध

शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। शिक्षा का कार्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि विद्यार्थी के समग्र विकास को सुनिश्चित करना है, और यह कार्य तब ही सफल हो सकता है जब शिक्षक को विद्यार्थियों के मन, व्यवहार और सोच की सही समझ हो। यहीं पर मनोविज्ञान, विशेष रूप से शैक्षिक मनोविज्ञान, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध:

शिक्षा मनोविज्ञान- शिक्षा एक क्रियात्मक प्रक्रिया है जो ज्ञान व व्यवहार में परिवर्तन लाती है। मनोविज्ञान व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है। शिक्षा विद्यार्थियों को कैसे पढ़ाया जाए, यह बताती है। मनोविज्ञान बताता है कि विद्यार्थी कैसे सीखते हैं। शिक्षा में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनोविज्ञान शिक्षक को विद्यार्थियों की मानसिकता को समझने में मदद करता है। शिक्षा मूल्यांकन, अनुशासन, प्रेरणा आदि से जुड़ी है। मनोविज्ञान इन सभी तत्वों की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।

मुख्य बिंदु जो संबंध को स्पष्ट करते हैं:

1. बालकों की प्रकृति को समझने में सहायता: मनोविज्ञान शिक्षक को बताता है कि बालक की सोच, भावना, समझ और रुचियाँ कैसी हैं।

2. प्रभावी शिक्षण विधियों का चयन: मनोविज्ञान यह तय करने में मदद करता है कि किस उम्र में कौन-सी विधि प्रभावी होगी।

3. सीखने की समस्याओं की पहचान: जैसे – पढ़ाई में रुचि न होना, ध्यान की कमी, धीमी सीखने की गति आदि।

4. प्रेरणा का महत्व: विद्यार्थी को सीखने के लिए प्रेरित करने के लिए मनोवैज्ञानिक उपायों का प्रयोग।

5. मूल्यांकन एवं परीक्षण: विद्यार्थियों की क्षमता, प्रगति और व्यक्तित्व का मूल्यांकन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से।

शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध पूरक और आवश्यक है। शिक्षा को प्रभावी, बालक-केंद्रित और वैज्ञानिक बनाने के लिए मनोविज्ञान का योगदान अमूल्य है। यह कहना उचित होगा कि –

"मनोविज्ञान के बिना शिक्षा अंधकारमय है और शिक्षा के बिना मनोविज्ञान अधूरा।"

1.10 मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान में अंतर

मनोविज्ञान (Psychology): यह एक व्यापक विज्ञान है जो मानव और प्राणी के व्यवहार, मानसिक क्रियाओं और अनुभवों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology): यह मनोविज्ञान की एक उपशाखा है जो शिक्षण, अधिगम, विद्यार्थी के व्यवहार और विकास का अध्ययन करती है।

मनोविज्ञान (Psychology) तथा शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology) में अंतर को निम्नलिखित विन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है:-

मनोविज्ञान

1. यह मानव व्यवहार का सामान्य अध्ययन है।

2. इसका क्षेत्र व्यापक है – जैसे भावनाएं, सोच, स्मृति, स्वप्न, रोग आदि।

3. यह सामान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर केंद्रित होता है।

4. इसमें सभी आयु के लोगों का अध्ययन किया जाता है।

5. इसका प्रयोग चिकित्सा, परामर्श, संगठन, खेल आदि क्षेत्रों में होता है।

शिक्षा मनोविज्ञान

1. यह विशेष रूप से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अध्ययन करता है।

2. इसका क्षेत्र सीमित है – विद्यालय, कक्षा, विद्यार्थी, शिक्षक आदि।

3. यह उन सिद्धांतों का प्रयोग शिक्षण प्रक्रिया में करता है।

4. यह मुख्यतः विद्यालयी बच्चों और किशोरों पर केंद्रित होता है।

5. इसका प्रयोग विशेष रूप से शिक्षा और शिक्षण में किया जाता है।

निष्कर्ष- मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान में अंतर होते हुए भी दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक व्यावहारिक शाखा है जो शिक्षकों को विद्यार्थियों के व्यवहार को समझने, सीखने की विधियाँ अपनाने, और बेहतर शिक्षण वातावरण बनाने में सहायता करती है।

<u>अपनी उन्नति जानिए (Know your progress)</u>

प्र.1 "शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करता है। यह परिभाषा किसने दी है?

प्र. 2 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ है।

प्र. 3 मनोविज्ञान का क्षेत्र है।

प्र. 4 शिक्षा मनोविज्ञान विशेष रूप से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अध्ययन करता है। सत्य /असत्य

1.11 सारांश (Summary)

शैक्षिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है, जो विशेष रूप से शिक्षा, अधिगम (learning), शिक्षण विधियों, बालक के व्यवहार, और कक्षा की परिस्थितियों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। इसका उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, वैज्ञानिक और बालक-केंद्रित बनाना है।

1. अर्थ और परिभाषा: शैक्षिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो यह समझने में सहायता करता है कि विद्यार्थी कैसे सीखते हैं, शिक्षक कैसे पढ़ाएं, और कक्षा में प्रभावी शिक्षण कैसे हो।

2. मुख्य अध्ययन क्षेत्र:

बालक का मानसिक और शारीरिक विकास

अधिगम की प्रक्रिया

प्रेरणा और रुचि

अनुशासन और कक्षा प्रबंधन

व्यक्तित्व और बुद्धि

मूल्यांकन एवं परीक्षण

3. प्रमुख उद्देश्य:

छात्र के व्यवहार को समझना

प्रभावी शिक्षण विधियों का विकास

बालकों की समस्याओं का समाधान

व्यक्तिगत अंतर को पहचानना

सीखने में सुधार लाना

4. महत्व:

यह शिक्षक को छात्र की मानसिकता को समझने में सहायता करता है।

यह शिक्षण को विज्ञान आधारित बनाता है।

इससे छात्रों में रुचि, आत्मविश्वास और प्रेरणा बढ़ाई जा सकती है।

शिक्षक मूल्यांकन को उचित ढंग से कर पाते हैं।

5. मुख्य सिद्धांत और योगदान:

पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

स्किनर का प्रतिफल सिद्धांत (Operant Conditioning)

कोहल्बर्ग का नैतिक विकास सिद्धांत

वाइगोत्स्की का सामाजिक विकास सिद्धांत

6. शिक्षा में उपयोग:

शिक्षण योजना बनाना

पाठ्यक्रम निर्माण

छात्र-केंद्रित शिक्षण

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की मदद

निष्कर्ष- शैक्षिक मनोविज्ञान शिक्षा प्रणाली की आत्मा है। यह केवल एक सैद्धांतिक विषय नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक मार्गदर्शक है जो शिक्षकों को यह समझने में सक्षम बनाता है कि विद्यार्थियों को कैसे पढ़ाया जाए, कैसे समझा जाए, और कैसे उनके सम्पूर्ण विकास को सुनिश्चित किया जाए। यह शिक्षा को बालक-केंद्रित, संवेदनशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

1.12 शब्दावली (Glossary)

1- मनोविज्ञान (Psychology): यह एक व्यापक विज्ञान है जो मानव और प्राणी के व्यवहार, मानसिक क्रियाओं और अनुभवों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology): यह मनोविज्ञान की एक उपशाखा है जो शिक्षण, अधिगम, विद्यार्थी के व्यवहार और विकास का अध्ययन करती है।

2- आत्मा का विज्ञान- प्राचीन समय में मनोविज्ञान को "आत्मा का विज्ञान" माना जाता था, लेकिन आत्मा को न देखा जा सकता है और न ही मापा जा सकता है, इसलिए यह परिभाषा वैज्ञानिक नहीं मानी गई।

3- विद्यालय- विद्यालय किसी भी समाज की नींव होता है। यह केवल एक भवन नहीं, बल्कि एक ऐसा स्थान है जहाँ देश के भविष्य का निर्माण होता है। विद्यालय छात्रों को न केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान करता है, बल्कि उन्हें नैतिक मूल्यों, सामाजिक कर्तव्यों और जीवन जीने की कला भी सिखाता है। यहाँ छात्र अनुशासन, समय का पालन, सहनशीलता, नेतृत्व, सहयोग और आत्मनिर्भरता जैसे गुण सीखते हैं जो उन्हें एक अच्छा नागरिक बनने में सहायक होते हैं।

4- प्रेरणा (Motivation)- सीखने में रुचि बनाए रखने और बच्चों को प्रेरित करने के लिए मनोविज्ञान आवश्यक है। मस्लो के सिद्धांत जैसे प्रेरणा की आवश्यकता को समझकर शिक्षक प्रेरक वातावरण बना सकते हैं।

5- समकालीन मनोविज्ञान (Contemporary Psychology)- आज मनोविज्ञान एक बहुआयामी विज्ञान है जिसमें कई शाखाएँ हैं – जैसे कि शैक्षिक मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान, अपराध मनोविज्ञान, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान आदि।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of practice Questions)

भाग -1

उ.1 शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के समग्र विकास को सुनिश्चित करना है।

उ. 2 पूर्णता की अभिव्यक्ति है।

उ. 3 सीखने में रुचि बनाए रखने और बच्चों को प्रेरित करने के लिए मनोविज्ञान आवश्यक है।

उ. 4 मनोविज्ञान (Psychology) का अर्थ है मन और व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन।

भाग -2

उ.1 स्किनर (B.F. Skinner)

उ. 2 यह विशेष रूप से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अध्ययन करता है।

उ. 3 इसका क्षेत्र व्यापक है – जैसे भावनाएं, सोच, स्मृति, स्वप्न, रोग आदि।

उ. 4 सत्य

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. लाल, रमन बिहारी (2009) : History , Development and Problems of Indian Education, Uttar Pradesh, (Revised edition)
1. शर्मा कृष्णकांत (2009) : भारतीय शिक्षा का इतिहास , विकास एवं समस्याएं , मेरठ ,आर० लाल० पब्लिकेशन
2. पाठक, पी० डी० (2005), भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं , आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर
3. पचौरी गिरीश (2007), शिक्षा और समाज मेरठ , इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस ।

4. एन. आर. स्वरुप सक्सेना , डॉ के.पी. पाण्डेय (1993 – 94) शिक्षा सिद्धांत, मेरठ , आर.लाल.बुक डिपो ।

5. शर्मा,गणपति एवं व्यास. (2014). उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा. जयपुर:हिंदी ग्रन्थ अकादमी

6. लोढ़ा, एम्. (2013). नैतिक शिक्षा के विबिध आयाम. जयपुर:हिंदी ग्रन्थ अकादमी

7. रूहेला, एस.पी. (2014). शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन

8. मालवीय,राजीव. (2013). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन

9. भटनागर, सुरेश. (2008). भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास. मेरठ: आर लाल बुक डिपो

10. सक्सेना, एन. आर. स्वरुप. (2005). शिक्षा सिद्धांत. मेरठ: आर लाल बुक डिपो

1.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. शिक्षा मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? मनुष्य के विकास में इसके महत्व का वर्णन कीजिये।

2. शिक्षा मनोविज्ञान की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

3. मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान में अंतर स्पष्ट कीजिये ।

4. शिक्षा और मनोविज्ञान में सम्बन्ध का वर्णन कीजिये।

UNIT-2 Methods of Psychology in Education
(शिक्षा में मनोविज्ञान की विधियाँ)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शिक्षा में मनोविज्ञान की विधियाँ

2.3.1 अंतर्दर्शन विधि

2.3.2 बहिर्दर्शन विधि

2.3.3 प्रयोगात्मक विधि

2.3.4 सर्वेक्षण विधि

2.3.5 जीवन इतिहास विधि

2.3.6 तुलनात्मक विधि

2.3.7 मनोविश्लेषण विधि

2.3.8 उपचारात्मक विधि

2.4 सारांश

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

जैसा की हम पढ़ चुके हैं कि, शिक्षा मनोविज्ञान, मानव व्यवहार को जानने का विज्ञान है। अब प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा मनोविज्ञान किस प्रकार मानव व्यवहार की जानकारी प्रदान करता है। शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत वे कौन-कौन सी विधियाँ हैं जिनके प्रयोग के द्वारा हम किसी व्यक्ति के व्यवहार का पता लगा सकते हैं? हम सब इस बात से सहमत होंगे कि विज्ञान सिद्दांतों एवं प्रयोगों के आधार पर सामान्यीकरण की बात करता है। जैसे न्यूटन ने अपने प्रयोगों और सिद्दांतों के आधार पर गुरुत्वाकर्षण के तथ्य को उजागर किया। इसी प्रकार मनोविज्ञान भी अपने सिद्दांतों का प्रयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए करता है। मानव व्यवहार का पता लगाने के लिए शिक्षा मनोविज्ञान विभिन्न विधियों का प्रयोग करता है जिससे वह व्यक्तियों अथवा छात्रों के व्यवहार से सम्बंधित आवश्यक सूचनाएं एकत्रित कर सके। हम सब जानते हैं की शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है इस कारण शिक्षा मनोविज्ञान में प्रयुक्त होने वाली विधियाँ भी मनोविज्ञान की विधियाँ ही हैं। शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार में आने वाली स्थिति जैसे क्रोध, अवसाद, भय, संदेह, दृष्टिकोण,भग्नाषा आदि पर प्रश्नावली, साक्षत्कार एवं अन्य विधियों का प्रयोग करके सूचनाएं एकत्रित करता है और इन सूचनाओं का विश्लेषण करके समस्या के उपचार पर विचार करता है। मनोवैज्ञानिक विधियों के द्वारा प्राप्त आंकड़े पूर्णतया वैज्ञानिक होते हैं जिसके अतर्गत सर्व प्रथम समस्या को जानने का प्रयास किया जाता है उसके बाद उस समस्या का समाधान वैज्ञानिक विधियों द्वारा करने का प्रयास किया जाता है जिससे कि परिणामों की विसस्वनीयता एवं वैधता बनी रह सके। प्रस्तुत इकाई में हम शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत आने वाली प्रमुख विधियों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-
- शिक्षा मनोविज्ञान में प्रयुक्त विधियों को जान सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत अंतर्दर्शन विधि का प्रयोग कर सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान में प्रयुक्त होने वाली बहिर्दर्शन विधि को जान सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान की प्रयोगात्मक विधि को स्पष्ट कर पायेंगे।

- शिक्षा मनोविज्ञान की जीवन इतिहास विधि को समझ सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाली सर्वेक्षण विधि को स्पष्ट कर पायेंगे।

2.3 शिक्षा में मनोविज्ञान की विधियाँ:

शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत मानव व्यवहार के अध्ययन और अनुसन्धान के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ कहा जाता है शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत जो विधियाँ आती हैं उन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है –

(अ) आत्मनिष्ठ विधियाँ (Subjective Methods)-

i. अन्तर्दर्शन विधि (Introspective Method)

ii. गाथा वर्णन विधि (Anecdotal Method)

(ब) वस्तुनिष्ठ विधियाँ' (Objective Methods)-

i. बहिर्दर्शन विधि (Observational Method)

ii. सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

iii . प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

iv.जीवन-इतिहास विधि (Case History Method)

v. तुलनात्मक विधि (Comparative Method)

vi-मनोविश्लेषण विधि (Psycho-analytic Method)

vii.उपचारात्मक विधि (Clinical Method)

viii. विकासात्मक विधि (Developmental Method)

ix.सांख्यिकीय विधि (Statistical Method)

x. परीक्षण विधि (Test Method)

xi. साक्षात्कार विधि (Interview Method)

xii. प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)

xiii. विभेदात्मक विधि (Differential Method)

xiv. मनोभौतिकी विधि (Psycho-physical Method)

उपरोक्त विधियों में से हम कुछ प्रमुख विधियों का अध्ययन प्रस्तुत इकाई में करेंगे-

2.3.1अन्तर्दर्शन विधि (Introspection Method)

अन्तर्दर्शन विधि मनोविज्ञान की संभवतः सर्वाधिक प्राचीन विधि है। इस विधि का प्रतिपादन संरचनावाद के जनक विल्हेल्म वुण्ट तथा उनके शिष्य टिचनर ने किया था। इन्होंने मनोविज्ञान को चेतना अनुभूतियों (Conscious Experiences) के रूप में परिभाषित करते हुए कहा कि चेतन अनुभूतियों का अध्ययन अन्तर्दर्शन के द्वारा ही किया जा सकता है। इनके अनुसार चेतन अनुभूति के अन्तर्दर्शन में तीन तत्व-संवेदना (Sensation), भाव (Feeling) तथा प्रतिमा (Image) सम्मिलित रहते हैं।

अन्तर्दर्शन से तात्पर्य अपने अंदर देखना अथवा अन्तर्निरीक्षण से है। अंतर्दर्शन विधि में व्यक्ति को अपने स्वयं के भावों को व्यक्त करना होता है व्यक्ति अपने भावों को स्पष्ट रूप से सत्य निष्ठा के साथ व्यक्त करे तो इस विधि को प्रमाणिक माना जा सकता है परन्तु यह सदैव सत्य नहीं हो सकता कि प्रत्येक व्यक्ति सत्य निष्ठा पूर्वक ही अपने अन्तर्मन के भावों को व्यक्त करे।

अन्तर्निरीक्षण को आत्म-निरीक्षण अथवा स्वनिरीक्षण से अधिक व्यापक समझा जा सकता है। आत्म-निरीक्षण में भाव व प्रतिमा निर्माण का प्रायः अभाव रहता है। अवैज्ञानिक विधि होने के कारण वर्तमान समय में इसका प्रयोग बहुत सीमित हो गया है।

प्रारम्भ में मनोवैज्ञानिक मानसिक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस विधि का प्रयोग करते थे। वे अपने अनुभवों के समय अर्थात् सुख-दुख, क्रोध-शान्ति, घृणा-प्रेम आदि स्थितियों में अपनी मानसिक दशाओं तथा भावनाओं का अन्तर्निरीक्षण करके उसका वर्णन करते थे तथा जिसके विश्लेषण के द्वारा वे मनोवैज्ञानिक नियमों तथा सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते थे। (उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति क्रोध में है तथा वह अपने क्रोध की अनुभूति के कारणों को स्वयं ज्ञात करे तथा इसके आधार पर क्रोध से सम्बन्धित मानसिक प्रक्रिया के नियम, सिद्धान्त अथवा दशाओं का निरीक्षण करे तो इसे अन्तर्दर्शन कहा जायेगा। अतः इस विधि को अन्र्त-अवलोकन अथवा आत्मगत निरीक्षण (Subjective Observation) भी कहा जाता है।

अन्तर्दर्शन की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अन्तर्दर्शन करने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह (Prejudice) तथा पक्षपात (Bias) की भावना से ग्रसित न हो, उसका अपनी अवधान प्रक्रिया (Attention Process) पर पूर्ण नियन्त्रण हो, वह शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ हो, उसमें थकान (Fatigus) अथवा ऊब (Monotomy) जैसी अवरोधनात्मक भावनाएँ न हो एवं उसमें अन्तर्दर्शन के प्रति रूचि (Interest) तथा विश्वास हो।

अन्तर्दर्शन की विशेषताएं(Characteristics of Introspection)

अन्तर्दर्शन विधि वस्तुतः आत्मनिरीक्षण की विधि है। आत्मनिरीक्षण की निम्नांकित विशेषताएं अन्तर्दर्शन की विशेषताएं भी हैं -

(i) व्यक्ति को अपने व्यवहार के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष (Direct), तत्काल (Immediate) तथा बास्तविक (Real) ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

(ii) व्यक्ति स्वयं ही अपने व्यवहार का अवलोकन करता है। अन्य व्यक्ति कभी-कभी दूसरे का व्यवहार का वास्तविक अवलोकन नहीं कर सकते हैं।

(iii) किसी विशिष्ट उपकरण की आवश्यकता न होने के कारण यह विधि अत्यन्त सरल तथा सदैव सुलभ विधि है।

अन्तर्दर्शन विधि की सीमाएं (Limitations of Introspection)

अन्तर्दर्शन विधि में वैज्ञानिकता का अभाव होने के कारण यह विधि अधिक प्रमाणिक स्वीकार नहीं की जाती है। इस विधि की मुख्य सीमाएं निम्नवत् हैं

(i) अन्तर्दर्शन विधि में व्यक्ति अपने स्वयं के व्यवहार का अवलोकन करता है। किसी मानसिक प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति के द्वारा अपने व्यवहार का अवलोकन करना यदि असम्भव नहीं हो तो कठिन अवश्य है।

(ii) अन्तर्दर्शन विधि से प्राप्त होने वाली विभिन्न सूचनाएं अत्यधिक विषयनिष्ठ (Subjective) प्रकृति की होती हैं।

(iii) शिशुओं, बालकों, असामान्य व्यक्तियों तथा पशुपक्षियों के द्वारा अन्तर्दर्शन विधि का प्रयोग सम्भब नहीं हो सकता है।

(iv) अचेतनाबस्था (Unconciousness) में किए जाने बाले व्यवहार का अध्ययन इस विधि के द्वारा नहीं किया जा सकता है।

(v) बदलते मनोवैज्ञानिक अनुभवों के साथ-साथ व्यवस्थित ढंग से अंतर्दर्शन करना प्रायः अत्यन्त कठिन होता है।

अन्तर्दर्शन विधि के उपरोक्त इंगित गुण तथा दोषों को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि यद्यपि अन्तर्दर्शन को आधुनिक समय में मनोविज्ञान की एक सर्वमान्य विधि स्वीकार नहीं किया जाता है फिर भी कुछ परिस्थितियों में यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। मनोवैज्ञानिक अग्र-अध्ययनों (Pilot Studies) में अन्तर्दर्शन विधि को प्रयोगात्मक बिधि के पूरक (supplement) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

2.3.2 बहिर्दर्शन (Extrospection Method)

बहिर्दर्शन विधि का प्रतिपादन व्यवहारवाद (Behaviourism) नामक मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के जनक जॉन बी० वाटसन (John B. Watson) के द्वारा किया गया था। उन्होंने मनोविज्ञान को व्यवहार के विज्ञान के रूप में परिभाषित करते हुए कहा कि इसका अध्ययन निरीक्षण विधि से ही किया जा सकता है। आधुनिक समय में यह विधि मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में प्रयुक्त की जाने वाली एक प्रमुख विधि है।

किसी अन्य व्यक्ति का अवलोकन करके उसके व्यवहार को जानना बहिर्दर्शन कहलाता है। बहिर्दर्शन विधि में व्यक्ति के व्यबहार, उसके आचरण, क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं आदि को ध्यानपूर्वक देखकर उसके व्यबहार के कारणों का अनुमान लगाया जाता है। उदहारण के लिए यदि कोई व्यक्ति अवसाद की स्थिति से गुजर रहा है तो बहिर्दर्शन विधि का प्रयोग करके हम यह जानने का प्रयास कर सकते हैं कि व्यक्ति अवसाद में क्यों आता है, अवसाद की अवस्था में व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करता है अवसाद की व्यक्ति के ऊपर क्या प्रतिक्रिया होती है? अवसाद के कारण व्यक्ति में कौन कौन

से बदलाव आते हैं ? इस प्रकार हम इस विधि के द्वारा आंकड़ों का सूक्ष्म अध्ययन कर सकते हैं और व्यक्ति को उपचार भी दिया जा सकता है

बहिर्दर्शन बिधि का प्रयोग दो प्रकार से किया जा सकता है

(1) औपचारिक बहिर्दर्शन (Formal Extrospection) तथा

(2) अनौपचारिक वहिर्दर्शन (Informal Extrospection)

औपचारिक बहिर्दर्शन को व्यवस्थित एवं पूर्व निर्धारित ढंग से सम्पन्न किया जाता है। बहिर्दर्शन को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule) का प्रयोग किया जा सकता है।

बहिर्दर्शन की विशेषताएं(Characteristics of Extrospection)

बर्हिदर्शन बिधि की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(i) बहिर्दर्शन विधि का प्रयोग शिशुओं, बालकों, किशोरों, प्रौढ़ों, समूहों आदि सभी के ऊपर किया जा सकता है।

(ii) अचेतन, अर्द्धचेतन, विकृत तथा विक्षिप्त अवस्थाओं में किए जाने वाले वाले व्यवहारों का अध्ययन भी बहिर्दर्शन विधि के प्रयोग से किया जा सकता है।

(iii) बहिर्दर्शन विधि में एक साथ अनेक व्यक्ति किसी व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन कर सकते हैं जिससे परिणाम अपेक्षाकृत अधिक वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध प्राप्त होते हैं।

(iv) बहिर्दर्शन विधि की सहायता से पशु-पक्षियों से प्राप्त परिणामों को मनुष्यों पर लागू करने की सम्भावना को देखा जा सकता है।

(v) बहिर्दर्शन विधि से प्राप्त परिणाम अर्न्तदर्शन विधि की अपेक्षाकृत अधिक वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तया वैध होते हैं।

(vi) बहिर्दर्शन विधि से प्राप्त परिणामों के संख्यात्मक होने के कारण उनका सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सकता है।

बहिर्दर्शन की सीमाएं (Limitations of Extrospection)

बहिर्दर्शन विधि की सीमाएं निम्नलिखित हैं -

(1) बहिर्दर्शन विधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि अबलोकनकर्ता अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का अवलोकन या व्याख्या करते समय प्रायः अपनी पूर्वधारणाओं तथा पूर्वाग्रहों से ग्रसित रहता है जिसके कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम कभी-कभी आत्मनिष्ठ हो जाते हैं।

(ii) अवलोकित किए जाने वाला व्यक्ति कभी-कभी जानबूझकर अस्वाभाविक तथा कृत्रिम व्यवहार करता है, परन्तु अवलोकनकर्ता इस व्यवहार को वास्तविक मानकर उसकी त्रुटिपूर्ण व्याख्या कर देता है। अवलोकित व्यक्ति के ढोंगपूर्ण व्यवहार से धोखा खाकर निकाले गये निष्कर्ष असत्य होते हैं।

(iii) बहिर्दर्शन विधि में अवलोकनकर्ता को एक साथ अनेक कार्य करने पड़ते हैं। व्यवहार का अवलोकन करना एक अत्यंत कठिन कार्य है। अवलोकनकर्ता के द्वारा दी गई स्वाभावित त्रुटियों के कारण बहिर्दर्शन विधि अविश्वसनीय परिणाम दे सकती है।

(iv) गोपनीय प्रकृति के व्यबहार जैसे यौन क्रियाओं (Sex behaviour) आदि का अवलोकन इस विधि के द्वारा करना सम्भव नहीं होता है।

बहिर्दर्शन विधि के उपरोक्त वर्णित गुण तथा दोषों को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान के अध्ययन की यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि है। बहिर्दर्शन का प्रयोग करके व्यवहारवादियों के द्वारा अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की रचना की गई है।

2.3.3 प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

अंतर्दर्शन एवं वहिर्दर्शन विधियों के अध्ययन में हमने यह जाना कि इन विधियों के द्वारा व्यवहार में अध्ययन करते समय व्यक्ति के व्यवहार पर अवलोकनकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं रहता है जिस कारण अवलोकन कर्ता व्यक्ति के व्यवहार के वास्तविक कारणों को नहीं जान सकता। साथ ही अवलोकन विधियों द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करना भी मुश्किल होता है कार्यकारण सम्बन्ध प्रयोगात्मक बिधियों के द्वारा जाना जा सकता है।

प्रयोगात्मक विधि में परीक्षण और प्रयोगों के आधार पर व्यवहार संबंधी निष्कर्ष निकालने पर जोर दिया जाता। वैज्ञानिक विषयों में जिस प्रकार प्रयोगशालाओं में तथा वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि में व्यवस्थित एवं नियंत्रित परिस्थितियों में वस्तुओं एवं प्राणियों पर प्रयोग करके उनके गुण, व्यवहार एवं क्रियाओं आदि का अध्ययन किया जाता है वैसे ही मनोविज्ञान की दुनिया में पशु-पक्षियों तथा व्यक्तियों पर प्रयोग करके उनके व्यवहार के अध्ययन का प्रदत किया जाता है। वास्तव में देखा जाये तो मनोविज्ञान को विज्ञान के रूप में मान्यता दिलाने में इसी विधि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस दृष्टि से प्रयोगात्मक विधि शिक्षा मनोविज्ञान में, बालकों के व्यवहार अध्ययन करने के लिये एक ऐसी विधि का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें पूर्ण नियंत्रित एव पूर्ण व्यवस्थित परिस्थितियों में उनके व्यवहार एवं क्रियाओं का वस्तुनिष्ठ निरीक्षण करके उचित निष्कर्ष निकाले जा सकें एवं उनके आधार पर सामान्य सिद्धांत एवं नियमों के स्थापना की जा सके।

नवीन तथ्यों एवं सिद्दांतों को प्रतिपादित करने की यह सर्वाधिक परिष्कृत बिधि है। प्रयोगात्मक विधि में प्रयोग एवं चर को महत्व दिया जाता है मनोविज्ञान के अंतर्गत प्रयोग का सम्बन्ध प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह से है जिस समूह को विशिष्ट उपचार दिया जाता है उसे प्रयोगात्मक समूह एवं जिस समूह को विशिष्ट उपचार नहीं दिया जाता उसे नियंत्रित समूह कहते है। उदाहरण के लिए यदि किसी कक्षा के विद्यार्थियों के दो समूह बनाये जांय और उनमे से एक समूह को परमपरागत शिक्षण विधियों द्वारा पढाया जाय और दूसरे समूह को किसी विशेष शिक्षण विधि का प्रयोग करके पढ़ाया जाय तो ऐसे में जिस समूह को परंपरागत तरीके से पढाया जा रहा है उसे नियंत्रित समूह तथा जिस समूह को विशेष शिक्षण विधि का प्रयोग करके पढ़ाया जा रहा है उसे प्रयोगात्मक समूह कहा जाता है। प्रयोगात्मक समूह में हम चरो को नियंत्रित कर सकते हैं। इस प्रकार हम दोनों समूहों के आंकड़ों के विश्लेषण से आये परिणामों से समूहों में सार्थक

अंतर पता कर सकते हैं । ये भी कह सकते हैं कि विशेष शिक्षण विधि के प्रयोग से नियंत्रित समूह की तुलना में प्रयोगात्मक समूह किस स्थिति में है।

प्रयोगात्मक विधि में चरों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है चर बस्तुतः ऐसी दशाएं, परिस्थितियाँ, विशेषताएं अथवा गुण हैं जिन्हें प्रयोगकर्ता मापता है, नियन्त्रित करता है अथवा संचालित करता है। प्रयोगात्मक विधि में आश्रित एवं स्वतन्त्र चरों का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है।

स्वतन्त्र चर (Independent Variables) वे चर हैं जिनके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक अध्ययनों में स्वतन्त्र चर पर नियंत्रण प्रयोगकर्ता के द्वारा किया जाता है। स्वतन्त्र चर प्रयोगात्मक समूह को दिये जाने वाले विशेष उपचार (Treatment) को इंगित करते हैं।

आश्रित चर (Dependent Variables) वे चर हैं जिन पर स्वतन्त्र चर का प्रभाव पड़ता है। अतः आश्रित चर वास्तव में स्वतन्त्र चर के कारण व्यवहार में आये वे परिवर्तन हैं जिन्हें प्रयोगकर्ता मापता है। स्पष्टतः किसी प्रयोग में स्वतन्त्र चर कारण (Cause) को तथा आश्रित चर प्रभाव (Effect) को इंगित करते हैं। प्रयोगात्मक अध्ययनों में शिक्षण विधि, शिक्षण सामग्री, पुरस्कार, प्रशिक्षण प्रकार, दवा की मात्रा, अभ्यास, समूह कार्य आदि स्वतन्त्र चर हो सकते हैं जबकि इनके लिए परीक्षा प्राप्तांक, त्रुटियों की संख्या, कार्य करने की गति, कार्य प्रभावशीलता, रोग की गहनता, अधिगम की मात्रा, सामाजिक समायोजन जैसे आश्रित चर के रूप में लिये जा सकते हैं।

स्वतन्त्र तथा आश्रित चरों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी चर हो सकते हैं जो इन दोनों प्रकार के चरों के बीच के परस्पर सम्बन्ध को प्रभावित करते हैं जिन्हें हस्तक्षेपी चर (Intervening Variables) कहते हैं। प्रयोगकर्ता सदैव इस प्रकार के चरों पर नियंत्रण की कोशिश करता है। जिनको नियंत्रित करने की बहुत सी विधियाँ हैं।

प्रयोगात्मक बिधि का प्रयोग हम निम्नलिखित सोपानों के आधार पर कर सकते हैं –

i -अध्ययन की समस्या

ii-परिकल्पना निर्माण

iii-प्रयोग डिजाईन

iv-प्रतिदर्श चयन

v-आंकड़ों का संग्रहण

vi-आंकड़ों का विश्लेष्ण

vii-परिणामों का सामान्यीकरण

प्रयोगात्मक विधि की विशेषताएं(Characteristics of Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

(i) प्रयोगात्मक विधि एक वैज्ञानिक विधि है। इससे प्राप्त निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध होते हैं।

(ii) इस विधि में परिस्थितियों पर मनोवैज्ञानिक का नियंत्रण रहता है इसलिए इस विधि से कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

(iii) इस विधि से प्राप्त परिणामों का सत्यापन प्रयोग की पुनरावृत्ति (Replication) करके किया जा सकता है।

(iv)पशुओं पर प्रयोग करके प्राप्त परिणामों को मनुष्यों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

(v) उच्चस्तरीय प्रयोगात्मक अभिकल्पों का प्रयोग करके इस विधि के द्वारा मनोवैज्ञानिक समस्या का अध्ययन विशद् ढंग से किया जा सकता है।

प्रयोगात्मक विधि की सीमाएं(Limitations of Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि की सीमाएं निम्नलिखित हैं-

(i) भौतिक परिस्थितियों पर नियंत्रण रखना सरल हो सकता है, परन्तु व्यवहार से सम्बन्धित परिस्थितियों पर पूर्ण नियंत्रण रखना प्रायः अत्यंत कठिन अथवा असम्भव होता है, जिसके कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम त्रुटिपूर्ण भी हो सकते हैं।

(ii) प्रयोग चाहे कितनी ही सावधानी से क्यों न किया जाए; उसमें कुछ न कुछ कृत्रिमता अवश्य ही आ जाती है, जिसके कारण परिणामों की विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है।

(iii) कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनका निर्माण करना या तो असम्भव होता है अथवा अवांछनीय होता है। जैसे, बालकों में क्रोध, भय, डर आदि उत्पन्न करने के लिए परिस्थितियों का निर्माण करना अवांछनीय ही होगा।

(iv) इस विधि में व्यक्ति को नियंत्रित परिस्थितियों में कार्य करना होता है। इसलिए उसमें प्रयोग के प्रति किसी प्रकार की कोई रुचि नहीं होती है। यही कारण है कि इस विधि में प्रयोगकर्ता को प्रयोज्यों का सहयोग प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

(v) नियंत्रित परिस्थितियों में व्यक्ति का व्यवहार अस्वाभाविक तथा आडम्बरपूर्ण हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है जिसके कारण व्यक्ति की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

(vi) व्यक्ति को न केवल बाह्य कारक वरन् उसकी आन्तरिक दशाएं भी प्रभावित करती हैं। प्रयोगकर्ता बाह्य कारकों पर तो नियन्त्रण कर सकता है, परंतु आन्तरिक दशाओं पर नियन्त्रण करना उसके लिए सम्भव नहीं होता है।

(vii) पशुओं पर किए गए प्रयोगों से प्राप्त परिणाम सदैव ही मनुष्यों के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं।

2.3.4 सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सर्वेक्षण विधि एक आधुनिक तथा पर्याप्त प्रचलित विधि है। इस विधि में व्यक्तियों के प्रतिदर्श से प्रदत्तों को संकलित करके उनके आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है, इसलिए इसे सांख्यिकीय विधि (Statistical Method) भी कहा जाता है। इस विधि से प्राप्त सूचनाओं, सिद्धान्तों तथा नियमों को लगभग सभी व्यक्तियो के लिए उपयुक्त माना जाता है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस बिधि को एक अत्यंत उपयोगी विधि स्वीकार किया जाता है। अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, परीक्षण आदि मापन उपकरणों की सहायता से संकलित प्रदत्तों का सांख्यिकीय ढंग से विश्लेषण करके परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। इस विधि से प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता

संकलित प्रदत्तों की विश्वसनीयता पर निर्भर करती है। यदि प्रतिदर्श अपने समग्र का ठीक ढंग से प्रतिनिधित्व कर रहा होता है एवं समंकों का संकलन वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध ढंग से किया जाता है तो इस विधि से प्राप्त परिणामों की परिशुद्धता बढ़ जाती है।

वांछित सूचना एकत्रित करते हुए सर्वेक्षण विधि में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा प्रायः निम्नलिखित दो प्रकार के सर्वेक्षण उपकरणों/तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

1. प्रश्नावली (Questionnaire)

2. साक्षात्कार (Interview

सर्वेक्षण विधि की विशेषताएं (Characteristics of Survey Method)

इस विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(i) यह विधि एक वैज्ञानिक विधि है जिसके कारण इस विधि से प्राप्त सूचनाएं प्रामाणिक स्वीकार की जाती हैं।

(ii) इस विधि में प्रतिदर्श से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर समग्र के सम्बन्ध में निष्कर्ष ज्ञात किए जाने के कारण कम समय, श्रम व लागत से अध्ययन सम्भव है।

(iii) सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग में विभिन्न चरों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का गहन अध्ययन किया जा सकता है।

सर्वेक्षण विधि की सीमाएं(Limitations of Survey Method)

इस विधि की निम्नलिखित सीमाएं हैं -

(i) इस विधि की विश्वसनीयता प्रयुक्त किए गए प्रतिदर्श तथा उससे प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर करती है। अतः यदि प्रतिदर्श सम्पूर्ण जनसंख्या का उचित प्रतिनिधित्व नहीं करता अथवा उससे प्राप्त सूचनाएं असत्य होती हैं तो इस विधि से प्राप्त परिणाम अविश्वसनीय हो जाते हैं।

(ii) यह विधि समूहगत विशेषताओं का अध्ययन करती है। इस विधि से व्यक्तिगत विशेषताओं के सम्बंध में निष्कर्ष प्राप्त नहीं होते हैं।

सर्वेक्षण विधि में कुछ दोष होने के बाबजूद आधुनिक समय में मनोवैज्ञानिकों के द्वारा अपने अध्ययनों में इस विधि का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है।

2.3.5 जीवन इतिहास विधि (Case-History Method)

कभी -कभी मनोवैज्ञानिकों को किसी व्यक्ति विशेष, वंश विशेष अथवा वर्ग विशेष की विलक्षणता तथा समस्याओं की जानना होता है तब मनोज्ञानिक प्रायः जीवन इतिहास विधि का प्रयोग करते हैं।

जिस व्यक्ति की विलक्षणता का मनोवैज्ञानिक अथवा शैक्षिक अध्ययन किया जाता है वह कोई अपराधी मानसिक रोगी, झगड़ालू, प्रतिभाशाली, समाज विरोधी कार्य करने वाला, समस्यात्मक बालक आदि कुछ भी हो सकता है।

व्यक्ति की विलक्षणता का कारण उसका भौतिक परिवारिक या सामाजिक वातावरण हो सकता है। व्यक्ति अपनी पूर्वगत परिस्थितियों तया अनुमयों के फलस्वरूप विलक्षण व्यवहार करने लगता है। मनोवैज्ञानिकगण व्यक्ति के विलक्षण व्यवहार के वास्तविक कारण को जानने के लिए, उसके जीवन इतिहास का अध्ययन करते हैं। वे उस व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बहन, पड़ोसियों , सगे सम्बन्धियों, मित्रों, अध्यापको आदि से उस व्यक्ति के द्वारा विगत वर्षों में किए गए क्रियाकलापों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी एकत्रित करते हैं। कभी-कभी व्यक्ति के वंशानुक्रम, पारिवारिक व सामाजिक वातावरण, शारीरिक स्वास्थ्य, शैक्षिक, मानसिक, संवेगात्मक विकास तथा उसकी रुचियों व अनुभवों से सम्बन्धित सूचनाओं की एकत्रित करके मनोवैज्ञानिक उन कारणों की खोज करता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के व्यावहार में विलक्षणता उत्पन्न हुई है। स्पष्ट है कि जीवन इतिहास विधि का उद्देश्य उन कारणों की ज्ञात करके उनका निदान करना है जो व्यक्ति अथवा वंश अथवा वर्ग की किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने के लिए मजबूर करते हैं।

जीवन-इतिहास विधि की विशेषताएं(Characteristics of Case-History Method)

जीवन इतिहास विधि की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

i.उपचारालक परामर्श व निर्देशन की दृष्टि से यह विधि सर्वोतम है।

ii. मन्द बुद्धि व पिछड़े बालकों तथा मानसिक रोगों से ग्रस्त बालकों के अध्ययन के लिए यह विधि उपयोगी है।

iii. इस विधि में विभिन्न स्रोतों से तथा व्यापक ढंग से सूचनाएं संकलित की जाती हैं इसलिए इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष विश्वसनीय होते हैं।

जीवन-इतिहास विधि की सीमाएं (Limitations of Case-History Method)

इस विधि की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं-

(i) इस विधि का प्रयोग विशेषज्ञ ही कर सकते हैं।

(ii) इस विधि में समय, श्रम व धन अधिक लगता है, जिसके कारण यह विधि अधिक व्ययशील ही जाती है।

(iii) कभी-कभी व्यक्ति तथा उसके इष्टमित्र प्रश्नगत व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाओं को छिपाने प्रयास करते हैं, जिसके फलस्वरूप इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष गलत हो सकते हैं।

(iv) इस विधि से प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या करते समय मनोवैज्ञानिकगागों में प्रायः कुल नं मतभेद रहता है।

2.3.6 तुलनात्मक विधि(Comparative Method)

इस विधि में प्राणियों के व्यवहार से सम्बन्धित समानताओं तथा असमानताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। जैसे, पशुओं तथा मानवों के व्यवहारों की तुलना, दो प्रजातियों (Races) के व्यवहारोंकी तुलना, विभिन्न वातावरण में पाले गए बालकों की तुलना, लड़के तथा लड़कियों के व्यवहारों की तुलना आदि। दो समूहों के व्यवहारों की समानताओं तथा असमानताओं की तुलना से अनेक उपयोगी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। प्रायः विभिन्न पशुओं के ऊपर प्रयोग करके व्यवहार से सम्बन्धित सिद्धान्तों को स्थापित किया जाता है तथा फिर उन सिद्धान्तों की उपयुक्तता

मनुष्यों के ऊपर देखी जाती है। उदाहरण के लिए, सीखने के लगभग सभी सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रारम्भ में पशुओं के ऊपर प्रयोग करके किया गया था तथा बाद में मानव जाति के ऊपर इनकी उपयोगिता ज्ञात की गई। पशुओं तथा अन्य प्रजातियों के व्यवहारों से तुलना करके मानव व्यवहार को समझने का प्रयास करने के कारण ही इस विधि को तुलनात्मक विधि कहा जाता है।

तुलनात्मक विधि की विशेषताएं (Characteristics of Comparative Method)

तुलनात्मक विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

(i) जिन प्रयोगों को मनुष्यों के ऊपर नहीं किया जा सकता, उन प्रयोगों को पशुओं के ऊपर

करके सिद्धान्त प्रतिपादित करने की यह एकमात्र विधि है।

(ii) अन्य प्रजातियों के लिए पहले से उपलब्ध ज्ञान के आधार पर मानव व्यवहार को समझना सरल हो जाता है।

तुलनात्मक विधि की सीमाएं (Limitations of Comparative Method)

इस विधि की सीमाएं निम्नलिखित हैं -

(i) मनुष्य तथा पशु में स्पष्ट अंतर होने के कारण पशुओं के ऊपर बनाए गए नियमों को ययावत् मनुष्य के ऊपर प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(ii) विभिन्न प्रजातियों का शारीरिक गठन, बंशानुक्रम तथा परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः एक प्रजाति से प्राप्त ज्ञान को अन्य प्रजातियों पर प्रयुक्त करते समय पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता होती है।

2.3.7 मनो-विश्लेषणात्मक विधि (Psycho-Analytical Method)

मनो-विश्लेषणात्मक विधि का प्रतिपादन सिगमन्ड फ्रायड (Sigmund Freud) नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने किया था। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का अचेतन मन भी उसके व्यवहार को प्रभावित करता है। अचेतन वास्तव में व्यक्ति की अतृप्त अथवा दमित इच्छाओं, भावनाओं का पुंज होता है तथा यह सदैव क्रियाशील रहता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का व्यवहार अनजाने ही इन अतृप्त अथवा दनित इच्छाओं से प्रभावित होता रहता है। मनोविश्लेषण विधि के द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन करके उसकी अतृप्त इच्छाओं की जानकारी प्राप्त की जाती है जिससे इन अतृप्त इच्छाओं का परिष्कार अथवा मार्गान्तरीकरण करके व्यक्ति के व्यवहार को सुधारा जा सके। स्पष्ट है कि यह विधि असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की असामान्यता का निदान करने के लिए प्रयुक्त की जाती है। अचेतन में निहित व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओं को जानने के लिए शब्द साहचर्य, स्वप्न-विश्लेषण, मसि लक्ष्य जैसी विभिन्न प्रक्षेपीय तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक विधि की विशेषताएं (Characteristics of Psycho-Analytical Method)

इस विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं -

i-इस विधि से व्यक्ति के अचेतन तथा चेतन दोनों ही का ज्ञान प्राप्त होता है।

ii-व्यक्ति की भावना ग्रंथियों को ज्ञात करना तथा मानसिक विकारों का निदान करना इस विधि के प्रयोग से ही सम्भव है।

iii-इस विधि में व्यक्ति अपने मन की बातों को छुपा नहीं पाता है।

मनो-विश्लेषणात्मक विधि की सीमाएं(Limitations of Psycho-Analytical Method)

मनो-विश्लेषणात्मक विधि की निम्न सीमाएं हैं-

(i) इस विधि का प्रयोग केबल दक्ष मनोविश्लेषक ही कर सकते हैं।

(ii) इस विधि के प्रयोग में धन एवं समय अधिक लगता है।

(iii) इस विधि में व्यक्ति तथा मनोविश्लेषक दोनों को ही अत्यधिक धैर्य से कार्य करना होता है जोकभी-कभी असम्भव हो जाता है।

(iv) व्यक्ति के मन में छिपी अनेक बांछनीय इच्छाओं के सार्वजनिक हो जाने के कारण व्यक्ति तथा समाज इस विधि के प्रयोग करने में सहयोग नहीं देते हैं।

2.3.8 उपचारात्मक विधि (Clinical Method)

उपचारात्मक विधि का प्रयोग मुख्यतया समस्यात्मक बालकों के व्यहार सम्बन्धी मूल कारणों का पता लगाकर उन कारणों का उचित उपचार करने के लिए किया जाता है। यह विधि उपचारात्मक मनोविज्ञान के अंतर्गत आती है। उपचारात्मक मनोविज्ञान को व्यक्ति की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने वाली कला एवं तकनीक शास्त्र की संज्ञा दी जाती है।

i-इसके द्वारा समस्या ग्रस्त व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है।

ii-समस्या के निराकरण के लिए निदान तथा उपचार दोनों को समान महत्त्व दिया जाता है।

iii-उपचारात्मक विधि कला और विज्ञान दोनों ही हैं। इसका अर्थ यह लगाया जाना चाहिए कि अन्य वैज्ञानिक विधियों की तरह इसे प्रयोग में लाने के लिए उचित प्रशिक्षण और कार्यकुशलता की आवश्यकता होती है तथा एक कलाकार की अपनी कला की तरह ही इस विधि का प्रयोग प्रयोगकर्ता को आनन्द और सन्तुष्टि प्रदान कर सकता है क्योंकि इस विधि द्वारा पथभ्रष्ट और मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को सामान्य व्यक्तियों के सामान बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

उपचारात्मक विधि को सामान्यतया निदान(Diagnostic) और उपचार(Treatment) दो भागों में बांटा जा सकता है।

उपचारात्मक विधि की विशेषताएं (Characteristics of Clinical Method)

i-इस विधि में सर्वप्रथम समस्यात्मक बालक की चिकित्सकीय परिक्षण कराया जाता है।

ii- समस्यात्मक बालक के विगत वर्षो की जानकारी के द्वारा समस्या के मूल कारणों का पता लगाया जाता है।

iii-विभिन्न प्रकार की मनोवैज्ञानिक परीक्षा जैसे बुद्दी परिक्षण, उपलब्धि परिक्षण, रूचि परिक्षण, योग्यता परिक्षण आदि निदानात्मक उपायों से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

iv-निदानात्मक साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है।

v-समस्या का पता लग जाने पर उचित उपचार किया जाता है।

vi-इस विधि के द्वारा समस्याग्रस्त बालक के जीवन में सुधार लाया जा सकता है।

उपचारात्मक विधि की सीमाएं (Limitation of Clinical Method)

i-इस विधि में परिक्षण लेने वाले व्यक्ति को विशिष्ट ज्ञान होना आवश्यक है।

ii- साधारणतया सभी जगहों पर योग्य चिकत्सकों एवं परिक्षण कर्ताओं का मिलना संभव नहीं हो पाता है।

iii- समस्यात्मक बालकों की मुख्य समस्या का पता लगाना मुश्किल होता है।

iv-समस्यात्मक बालक के विगत वर्षों के जीवन का ठीक-ठीक पता लगा पाना आशान नहीं होता है।

v-समस्यात्मक बालक को सही उपचार तभी दिया जा सकता है जब समस्या की सही जानकारी मिल जाय।

2.4 सारांश

शिक्षा मनोविज्ञान की उपरोक्त वर्णित कुछ प्रमुख विधियों के अवलोकन से स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान अपने अध्ययन के लिए अनेक बिधियों का प्रयोग करता है। मनोविज्ञान की प्रारम्भिक विधियाँ अव्यवस्थित, आत्मनिष्ठ तथा पक्षपातपूर्ण थीं, परंतु कालान्तर में मनोविज्ञान ने व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ, तथा पक्षपातरहित विधियों का प्रयोग करना शुरू कर दिया जिसके परिणामस्वरूप मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए जाने वाले अध्ययन अधिक वैज्ञानिक तथा प्रामाणिक हो गए। यद्यपि मनोविज्ञान की विधियाँ भौतिक विज्ञानों के समान निरपेक्ष अथवा शत-प्रतिशत सत्य (Absolute Truth) नहीं बताती हैं फिर भी मनोविज्ञान के विकास में ये विधियाँ अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। आधुनिक समय में शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के ज्ञान का उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा के लगभग सभी क्रिया कलापों में शिक्षा मनोविज्ञान को महत्व दिया जाने लगा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बाल मनोविज्ञान (Pedagogy) तथा व्यस्क मनोविज्ञान (Andragogy) को आधार मानकर पाठ्यचर्या निर्माण एवं कर्यकलापों पर फोकस किया गया है।

प्रस्तुत इकाई में हमने शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत अंतर्दर्शन विधि का अध्ययन किया। अंतर्दर्शन विधि में व्यक्ति को अपने स्वयं के भावों को व्यक्त करना होता है व्यक्ति अपने भावों को स्पष्ट रूप से सत्य निष्ठा के साथ व्यक्त करे तभी उस व्यक्ति की सही सही जानकारी मिल पाती है अन्यथा समस्या का पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

वहिर्दर्शन विधि में अवलोकन कर्ता अथवा निरिक्षण कर्ता को व्यक्ति का अवलोकन करके उसकी समस्या से सम्बंधित जानकारी लेकर समस्या का समाधान करना होता है इस विधि में यदि व्यक्ति को पता चल जाता है कि उसका निरिक्षण किया जा रहा है तब वह सचेत हो जाता है ऐसे में समस्या की सही जानकारी मिल पाना बहुत कम संभव हो पाता है।

प्रयोगात्मक विधि को वैज्ञानिक विधि माना जाता है क्योंकि इस विधि में स्वतंत्र चर का प्रभाव आश्रित चर पर देखा जाता है और वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है।

सर्वेक्षण विधि का प्रयोग आकड़ों के आधार पर होता है । इस विधि में व्यक्तियों के प्रतिदर्श से प्रदत्तों को संकलित करके उनके आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है। यह विधि एक वैज्ञानिक विधि है जिसके कारण इस विधि से प्राप्त सूचनाएं प्रामाणिक स्वीकार की जाती हैं।

जीवन इतिहास विधि का मुख्य उद्देश्य किसी कारण का निदान करना है । इस विधि में समस्या को जानने के लिए व्यक्ति के इतिहास को जानना होता है और तथ्यों को एकत्रित किया जाता है। और ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण करके समस्या का समाधान किया जाता है ।

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

- श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश (2002) शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली कन्सैप्ट पब्लिकेशन
- शुक्ल, ओ.पी. (2002) शिक्षा मनोविज्ञान लखनऊ, भारत प्रकाशन,
- चौबे, एस.पी. तथा चौबे, ए. (2007) शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- सिंह शिरीषपाल (2010): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल.।
- मंगल एस.के.(2010). एडवांस्ड एजुकेशनल साइकोलोजी पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू देहली।
- मंगल एस.के.(2011). शिक्षा मनोविज्ञान पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू देहली।
- पाठक पी.डी.(2012). शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा ।
- गुप्ता एस.पी. (2014).उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद ।

2.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा मनोविज्ञान की अंतर्दर्शन विधि को विस्तार पूर्वक लिखिए ।
2. शिक्षा मनोविज्ञान की प्रयोगात्मक विधि को स्पष्ट कीजिए ।
3. शिक्षा मनोविज्ञान की विधियों में आपको कौन सी विधि उपयुक्त लगी कारण सहित लिखिए ।
4. शिक्षा मनोविज्ञान की मनोविश्लेशाणात्मक विधि को समझाइए ।
5. शिक्षा मनोविज्ञान की सर्वेक्षण एवं तुलनात्मक विधि को स्पष्ट कीजिए ।

Unit-3 Educational Psychology meaning and scope –major schools of Educational Psychology (शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ और क्षेत्र-शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख विद्यालय)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ

3.3.1 शैक्षिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं

3.3.2 शैक्षिक मनोविज्ञान की प्रकृति

3.3.3 शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

3.4 शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख विद्यालय

3.5 शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान की उपयोगिता

3.6 शैक्षिक मनोविज्ञान की सीमाएं

3.7 सारांश

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना –

शैक्षिक मनोविज्ञान शिक्षा एवं मनोविज्ञान के संबंधों को समझने का विषय है। शैक्षिक मनोविज्ञान को शिक्षा के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। शिक्षा एवं शैक्षिक संस्थानों का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में आपेक्षित परिवर्तन लाना एवं उनका सर्वांगीर्ण विकास करना है। वास्तव में सीखना व्यवहार में परिवर्तन ही है। विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षकों को शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है जिससे कि शिक्षक, शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्दांतों एवं तथ्यों को अपने शिक्षण में कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सकें। शिक्षा मनोविज्ञान विद्यार्थियों की रुचियों, अभिरुचियों, क्षमताओं, योग्यताओं, आवश्यकताओं, अभिवृतियों, अभिप्रेरणाओं तथा उनकी आदतों को समझने में सहायक होता है। शिक्षक इस प्रकार विद्यार्थियों की मनोदशा को समझते हुए उनमे सुधार एवं उत्पन्न समस्याओं का समाधान करता है। शिक्षा का सीधा सम्बन्ध व्यवहार के परिमार्जन से होता है, मानव व्यवहार के परिमार्जन के लिए मानव व्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में शिक्षा मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय का रूप ले चुका है। सभी शिक्षाशास्त्री शिक्षा एवं मनोविज्ञान में घनिष्ट सम्बन्ध मानते हैं। मनोविज्ञान के बिना शिक्षण-प्रक्रिया सुचारू रूप से न तो चल सकती है और न ही सफल हो सकती है। इसी मान्यता के फलस्वरूप शिक्षा मनोविज्ञान का जन्म हुआ।

3.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- शैक्षिक मनोविज्ञान के अर्थ को समझ पायेंगे।
- शैक्षिक मनोविज्ञान को परिभाषित कर सकेंगे।
- शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र को समझ पायेंगे।
- शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख विद्यालयों/स्कूलों को जान पाएंगे।
- शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान की उपयोगिता को समझ पायेंगे।

- शैक्षिक मनोविज्ञान के महत्त्व को जान पायेंगे।

3.3.1 शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ

मनोविज्ञान का जन्म तो प्राचीन काल में ही हो गया था जब मानव सभ्यता के क्रमिक विकास ने मनुष्य को विचारशील बनाया तथा भाषा के विकास के साथ ही विचारों का आदान-प्रदान आरम्भ हुआ। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मनोविज्ञान के अनेकों पहलुओं का समावेश किया गया है। इसके साथ ही भगवत गीता में श्रीकृष्ण के उपदेशों में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान की अवधारणा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वेद, उपनिषद, बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य के अध्ययन से भी मन, आत्मा, चेतन, अहं, आदि तत्वों की चर्चा की गई है। सोलहवीं सदी के आस-पास मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र का ही अंग माना जाता रहा है। सोलहवीं सदी के अंत में मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय के रूप में हमारे सामने आया।

मनोविज्ञान विषय दिन-प्रतिदिन तेजी से लोकप्रिय होता जा रहा है। भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में इस विषय का अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या प्रत्येक वर्ष तेजी से बढ़ रही है।

मनोविज्ञान की वह शाखा जो शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर चिंतन करती है, शिक्षा मनोविज्ञान कहलाती है। शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षा का मनोविज्ञान के रूप में अध्ययन करती है। मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के द्वारा मानव व्यवहार में आये परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है।

शैक्षिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की कई शाखाओं में से एक है जो मुख्य रूप से शिक्षा की समस्याओं, प्रक्रियाओं और उत्पादों से निपटती है। यह शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के ज्ञान को लागू करने का एक प्रयास है। यहाँ हम मानव व्यवहार, विशेष रूप से शिक्षार्थी के अपने शैक्षिक वातावरण के संबंध में व्यवहार का अध्ययन करने का प्रयास करते हैं। दूसरे शब्दों में, शैक्षिक मनोविज्ञान को मनोविज्ञान की उस शाखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो शिक्षार्थी के व्यवहार का उसकी शैक्षिक आवश्यकताओं और उसके पर्यावरण के संबंध में अध्ययन करती है। शैक्षिक मनोविज्ञान को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों और विद्वानों द्वारा परिभाषित किया गया है।

3.3.2 शैक्षिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं

स्किनर के अनुसार-

"शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षण एवं सीखने से सम्बन्धित है।"

क्रो एवं क्रो के अनुसार -

'शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक के सीखने सम्बन्धी अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।"

नॉल व अन्य के अनुसार-

"शिक्षा मनोविज्ञान मुख्य रूप से शिक्षा की सामाजिक प्रक्रिया से परिवर्तित या निर्देशित होने वाले मानव-व्यवहार के अध्ययन से सम्बन्धित है।"

एलिस क्रो- के अनुसार-

"शिक्षा मनोविज्ञान, वैज्ञानिक विधि से प्राप्त किए जाने वाले मानव-प्रतिक्रियाओं के उन सिद्धान्तों के प्रयोग को प्रस्तुत करता है, जो शिक्षण और अधिगम को प्रभावित करते हैं।"

सॉरे व टेलफोर्ड के अनुसार-

"शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य सम्बन्ध सीखने से है। यह मनोविज्ञान का वह अंग है, जो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से विशेष रूप से सम्बन्धित है।"

3.3.2 शैक्षिक मनोविज्ञान की प्रकृति (Nature of Education Psychology)

1. शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का ही एक अंग है वर्तमान में शिक्षा मनोविज्ञान का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है।

2. शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान विषय की व्यवहारात्मक शाखाओं में से एक है। मनोविज्ञान के सिद्धान्त, नियम एवं विधियों का प्रयोग करके यह विद्यार्थियों के अनुभवों और व्यवहार का अध्ययन करने में सहायक होता है।
3. मनोविज्ञान में जीवधारियों के जीवन की समस्त क्रियाओं से सम्बन्धित व्यवहार का अध्ययन होता है जबकि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक पृष्ठभूमि में विद्यार्थी के व्यवहार का अध्ययन करने तक ही अपने आपको सीमित रखता है।
4. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा क्यों और शिक्षा क्या जैसे प्रश्नों का उत्तर देने में अपने आपको असमर्थ पाता है। ये प्रश्न शिक्षा दर्शन द्वारा सुलझाए जाते हैं। शिक्षा मनोविज्ञान तो विद्यार्थियों को सतोषजनक ढंग से उचित शिक्षा देने के लिए उचित जानकारी, कौशल और तकनीकी परामर्श देने का प्रयत्न करता है।
5. शिक्षा मनोविज्ञान की गिनती कलात्मक विषयों में की जाती है अथवा विज्ञान विषयों में यह निर्णय करने में कोई भूल नहीं की जानी चाहिये और शिक्षा मनोविज्ञान को सनी दृष्टि से विज्ञान ही माना जाना चाहिए। इस प्रकार की मान्यता के पीछे इसकी प्रकृति और इसका स्वरूप ही है जो सभी तरह से विज्ञानमय (Scientific) ही नजर आता है। यह ऐसा क्यों है? यह सिद्ध करने के लिए हमें पहले यह जानने का प्रयत्न करना होगा कि वे ऐसी कौन सी बातें या विशेषतायें हैं जिनके विद्यमान होने पर किसी विषय को विज्ञान का दर्जा दिया जा सकता है। निम्नांकित हैं -

   i. तथ्यों का एक समूह है जिसे सार्वभौमिक कानूनों और सिद्धांतों के माध्यम से समर्थित किया जा सकता है;

   ii. सत्य की खोज पर जोर देता है;

   iii. सुनी-सुनाई बातों, रूढ़ियों या अंधविश्वासों पर विश्वास नहीं करता;

   iv. कारण और प्रभाव संबंधों में विश्वास करता है:

   v. वस्तुनिष्ठ जांच, व्यवस्थित और नियंत्रित अवलोकन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की पद्धति को अपनाता है;

vi. देखे गए परिणामों या अनुमानित घटनाओं के सामान्यीकरण, सत्यापन और संशोधन के लिए खड़ा है;

vii. भविष्य के विकास की भविष्यवाणी करने में मदद करता है, और एक लागू पहलू होने से अपने सिद्धांत को व्यवहार में बदलने में सक्षम है।

3.3.3 शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

शैक्षिक मनोविज्ञान मुख्यत: शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण प्रक्रिया का अध्ययन करता है। शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में वे सभी ज्ञान तथा प्रविधियां सम्मिलित हैं जो सीखने की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से समझने और निर्देशित करने से सम्बन्ध रखती हैं। शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को सीमित करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि मनोविज्ञान का यह क्षेत्र तीव्र गति से विकासमान है। नित नये अनुसंधानों के माध्यम से शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र विकसित हो रहा है। आर्चर का कथन इस की पुष्टि करता है। **आर्चर** ने कहा कि - यह बात उल्लेखनीय है कि जब हम शिक्षा मनोविज्ञान की नयी पाठ्य-पुस्तक खोलते हैं, तब हम यह नहीं जानते कि उसकी विषय सामग्री सम्भवतः क्या होंगी।'' वर्तमान में शैक्षिक मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्रको शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर विभाजित किया है।

1. **वंशानुक्रम (Heredity)**

वंशानुक्रम के अध्ययन से किसी व्यक्ति के जन्मजात योग्यताओं का पता चलता है उसके पूर्वजों के जीवन का विश्लेषण करने पर उसके शारीरिक एवं मानसिक स्थिति के बारे में संभावनाएं व्यक्त की जा सकती हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि किसी बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष में वंशानुक्रम का में विशेष प्रभाव पड़ता है। शारीरिक विकास में तो वंशानुक्रम का अध्ययन करना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

2. **वृद्दि एवं विकास (Growth and Development)**

शैक्षिक मनोविज्ञान बालक के गर्भधान के समय से लेकर मृत्यु से पूर्व तक के विकास का अध्ययन करता है जैसे कि, मानव जीवन का आरम्भ किस प्रकार होता है? और जैसे-जैसे उसकी शारीरिक वृद्दि होती है तो उसका विकास विभिन्न अवस्थाओं में किस गति से हो रहा है? शैशावस्था से प्रौढावस्था तक आने में उसकी शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों का अध्ययन शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत किया जाता है।

3. **व्यक्तित्व (Personality)**

व्यक्तित्व अपने प्रति और दूसरों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार का एक समग्र चित्र है। व्यक्ति के पास शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से जो कुछ भी होता है वही उसका व्यक्तित्व होता है। और शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के अन्दर इन सभी चीजों को समझने का प्रयास करता है।

4. **व्यक्तिगत भिन्नता(Individual Difference)**

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किसी न किसी रूप में भिन्न होता है चाहे वह शारीरिक, मानसिक, बौद्दिक, लैंगिक, या रूप- रंग आदि में कहीं न कहीं भिन्नता पायी जाती है शिक्षा मनोविजज्ञान व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन करके बालक के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5. **अधिगम प्रक्रिया(Learning Process)**

वैक्तिक भिन्नता को समझने के पश्चात विद्यार्थियों को शिक्षक के द्वारा सीखने के अनुभव प्रदान किये जाते हैं, सीखना क्या है? और किस प्रकार सीखा जाता है यह शैक्षिक मनोविज्ञान के द्वारा ही तय किया जाता है साथ ही इसमें कुछ महत्वपूर्ण बिंदु जैसे सीखने के प्रमुख नियम एवं सिद्दांत,स्मृति तथा विस्मृति, प्रत्यक्षीकरण, संप्रत्यय निर्माण, सोचने एवं विचारने की प्रक्रिया, समस्या समाधान एवं प्रशिक्षण आदि सम्मलित है।

6. **शिक्षण विधियाँ (Teaching Method)**

शैक्षिक मनोविज्ञान विद्यार्थियों की वैक्तिक भिन्नता को जानकर उनकी रुचियों को पहचान कर उसी के अनुसार शिक्षण बिधियों का प्रयोग करने की बात करता है जिसे बाल्केंद्रित शिक्षा कहा जाता है अर्थात विद्यार्थियों की रुचियों, अभिरुचियों एवं वैक्तिक भिन्नता का ध्यान रखकर शिक्षण विधियाँ तैयार की जाती हैं और शैक्षिक मनोविज्ञान इसका अवसर प्रदान करता है।

7. **पाठ्यक्रम निर्माण(Curriculum Development)**

शैक्षिक मनोविज्ञान विद्यार्थियों की रुचियों, आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों को जानने का अवसर प्रदान करता है जो कि पाठ्यक्रम निर्माण करने में सहायक होता है। पाठ्यक्रम निर्माता विद्यार्थियों की रुचियों के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं।

8. विद्यार्थी एवं शिक्षक (Student and Teacher)

शिक्षण प्रक्रिया में विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है । एक दूसरे के बिना दोनों ही अधूरे हैं शिक्षा मनोविज्ञान विद्यार्थी की मनोदशा को समझने का अवसर शिक्षक को देता है और शिक्षक विद्यार्थी की समस्याओं को समझकर उचित समाधान करने का निर्णय लेता है ।

9. निर्देशन एवं परामर्श (Guidance and Counselling)

शैक्षिक मनोविज्ञान का एक क्षेत्र निर्देशन एवं परामर्श भी है विद्यार्थियों को वर्तमान एवं भविष्य के लिए तैयार करने हेतु उन्हें निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों से जोड़ा जाता है । निर्देशन एवं परामर्श के माध्यम से विद्यार्थियों का मार्गदर्शन तो होता ही है साथ ही वे अपनी भावी योजन बनाने में भी सफल हो जाते हैं ।

3.4 शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख विद्यालय

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान के दर्शनशास्त्र से अलग होने की प्रक्रिया में मनोविज्ञान के कई सम्प्रदाय सामने आए। मनोविज्ञान के सम्प्रदाय से तात्पर्य मनोवैज्ञानिकों के ‘‘किसी ऐसे समूह से है जो मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए एक समान विचारधारा तथा विधियों का अनुसरण करते हैं। संरचनावाद, कार्यवाद, व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद तथा मनोविश्लेषणवाद कुछ ऐसे ही प्रमुख मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय रहे हैं। मनोविज्ञान के इन सम्प्रदायों ने व्यवहार के अध्ययन सम्बंधी विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रभावित किया है। आगे मनोविज्ञान के कुछ प्रमुख सम्प्रदायों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

i. संरचनावाद (Functionalism)–

मनोविज्ञान के संरचनावाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियन वुण्ट नामक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे। इन्होंने सन् 1879 में मन का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन करके उद्देश्य से लिपजिंग में विश्व की प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित करके मनोविज्ञान को एक स्वतंत्र विज्ञान का दर्जा दिलाया। वुण्ट ने प्रारम्भ मे संवेदना के ऊपर अध्ययन किये। उनके अध्ययनों के उपरान्त यूरोप तथा अमेरिका में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाएं खुली। वुण्ट तथा उसके

सहयोगियों ने अन्तदर्शन विधि का प्रयोग करके प्रयोगशालाओं में अध्ययन किये। वुण्ट तथा उनके अनुयायियों को संरचनावादी कहा जाता है । इसके अनुसार जटिल मानसिक अनुभव वास्तव में संरचनाएं होती हैं जो अनेक सरल मानसिक स्थितियों से मिलकर बनी होती हैं। ऐसा लगता है कि संरचनावादी रसायनशास्त्र में रासायनिक यौगिकों को रासायनिक तत्वों में विभक्त करके अध्ययन करने की प्रक्रिया से प्रभावित थे। उनका विचार था कि जटिल मानसिक अनुभवों को संरचनाओं को खोजकर मनोविज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है। एडवर्ड, बेडफोर्ड तथा विचनर जैसे मनोवैज्ञानिक वुण्ट के प्रमुख सहयोगी थे।

आधुनिक समय में संरचनावाद की अत्यंत सीमित उपयोगिता है। प्रक्रिया के स्थान पर केवल संरचना पर ध्यान देना सम्भवतः संरचनावाद की सबसे बड़ी कमी है। अन्तर्दर्शन विधि में वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैधता की कमी के कारण संरचनावादियों के निष्कर्षों की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं हो पाती है।

ii. प्रकार्यवाद :

मनोविज्ञान के प्रकार्यवाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियम जेम्स (William James) थे। जैम्स, डार्विन (Darwin) के विकासवाद सिद्धान्त (Theory of evolution) से प्रभावित थे तथा उन्होंने मन के अध्ययन मे जीव विज्ञान की प्रवृत्ति को अपनाया। इनका मानना था कि व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजन करने में मानसिक अनुभवों का उपयोग करता है। वस्तुतः प्रकार्यवादियों को मुख्य बल अधिगम प्रक्रि्रया तक केन्द्रित था। जॉन डीवी (John Dewey) नामक प्रसिद्ध अमरीकन दार्शनिक तथा शिक्षाशास्त्री प्रकार्यवादी सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक थे। जैम्स रोलैन्ड एन्जिल (James Roland Engil), जे.एन. कैटिल (J.N. Cattell) ई.एल. थार्नडाइक (E.L. Thorndike) तथा आर.एस. बुडवर्थ (R.S. Woodworth) जैसे विचारकों ने प्रकार्यवादी विचारधारा को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस सम्प्रदाय में पाठ्यक्रम की विषयवस्तु शिक्षण विधियाँ तथा मापन तथा मूल्यांकन प्रक्रिया की कार्यपरकता पर अधिक बल दिया। प्रश्नावली, अनुसूची तथा मानसिक परीक्षण जैसे वस्तुनिष्ठ उपकरण प्रकार्यवाद की ही देन हैं।

iii.व्यवहारवाद Behaviorism:

बीसवीं शताब्दी के दूसरे एवं तीसरे दशक में मनोविज्ञान के व्यवहारवादी सम्प्रदाय का विकास हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों के एक समूह ने मनोविज्ञान कों व्यवहार के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया। जोहन बी. वाटसन (John B. Watson, 1878-1956) इस समूह के प्रवर्तक थे। व्यवहार की विचारधारा को मानने के कारण इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को व्यवहारवादी कहा जाता है। व्यवहारवादियों ने क्लार्क हल (Clark Hull) एडवर्ड टालमैन (Edward Tolman) बी.एफ. स्क्रिन (B.F. Skinner) जैसे मनोवैज्ञानिकों पर अमिट छाप छोड़ी। व्यवहारवादियों ने वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम की भूमिका को पूर्णरूपेण नकारते हुए केवल वातावरण के महत्त्व को स्वीकार किया।

अधिगम अभिप्रेरणा तथा पुनर्बलन पर जोर देना व्यवहारवादियों की एक प्रमुख विशेषता थी। शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में व्यवहारवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा।

iv.समग्रवाद Gestaltism

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी में मनोविज्ञान के समग्रवाद नामक सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। गेस्टाल्ट (Gestalt) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार (pattern) अथवा व्यवस्थित समग्र (Organized Whole) है। मैक्स वरधीमर (Max Wertheimer, 1880-1943) कुर्ट कोफ्का (Kurt Kafka, 1886-1941) कुछ प्रमुख गेस्टाल्टवादी थे। इनके अनुसार अनुभव तथा व्यवहार को अलग-अलग हिस्सों में करके अध्ययन नहीं किया जा सकता। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अवयवों की तुलना में सम्पर्क अनुभव अधिक महत्त्व पूर्ण होता है। इन्होंने सीखने में अन्तर्दृष्टि (Insight) की भूमिका पर अधिक जोर दिया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार प्राणी किसी भी वस्तु या परिस्थिति को समग्र रूप में देखता है न कि इसमें सम्मिलित तत्वों के समूह के रूप में। यही कारण है कि किसी समस्या के समाधान के समय अन्तर्दृष्टि की प्रमुख भूमिका रहती है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार समस्या को सग्रम रूप में देखेते समय उसके विभिन्न अंगों के बीच के अनोखे सम्बन्धों एवं अन्तर्क्रियाओं को पहचानना ही अन्तर्दृष्टि है। उनके अनुसार यह अन्तर्दृष्टि ही समस्या का तत्काल समाधान प्रस्तुत करती है।

अन्तदृष्टि के अभाव मे जीवधारी समस्या का समाधान करने में असफल रहता है। गेस्टाल्टवादी सीखने के उद्देश्यों तथा अभिप्रेरणा पर विशेष जोर देते हैं। व्यवस्थित पाठ्यक्रम निर्माण अन्तर्विषयी अभिगम, शिक्षा के उद्देश्यों तथा अभिप्रेरणा पर बल गेस्टाल्टवाद की देन हैं।

v.मनोविश्लेषणवाद Psychoanalysis:

मनोविज्ञान के अन्य सम्प्रदायों से मनोविश्लेषणवाद का प्रारम्भ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud, 1856-1939) इसके जनक थे। इन्होंने अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं (Unconscious mental processes) पर जोर देते हुए कहा कि द्वन्द्वों (**conflicts**) तथा मानसिक व्यतिक्रम (**Mental Disorder**) के अधिकांश मुख्य कारण अचेतन में छिपे रहते हैं। अचेतन के अध्ययन के लिए फ्रायड ने मनोविश्लेषण की एक नई प्रविधि का अविष्कार किया जो मुख्यतः मुक्त साहचर्य वाले विचार प्रवाह (**Freely associated stream of thoughts**) तथा स्वप्न विश्लेषण (**Dream analysis**) पर आधारित है। काफी लम्बे समय तक मनोविश्लेषणवाद का बोलबाला, रहा एवं इस दिशा में अत्यन्त महत्त्व पूर्ण अध्ययन किये गये । अल्फ्रेड एडलर तथा कार्ल जुंग ने कुछ संशोधनों के साथ परम्परागत मनोविश्लेषणवाद के विचारों को आगे बढ़ाने में विशेष योगदान किया। मनोचिकित्सा से अधिक सम्बन्धित होने के कारण मनोविश्लेषणवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष योग्दान नहीं दिया। मनोविश्लेषणवाद बच्चों के विकास की अवस्थाओं को समझने में महत्त्व पूर्ण ज्ञान प्रस्तुत करता है।

vi.मानवतावादी Humanistic:

वर्तमान समय में मनोविज्ञान के अध्ययन में मानवतावादी दृष्टिकोण (**Humanistic View**) तथा संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (**Cognitive view**) पर अधिक जोर दिया जाता है। मॉस्लों, रोजर्स, आलपोर्ट आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने पर जोर दिया। मानवतावादी विचारधारा में मानव को यन्त्रवत नहीं माना जाता हैं वरन उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने वाले तथा वातावरण के साथ अनुकूलन करने में समर्थ जीवधारी के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस विचारधारा में व्यक्तित्व के महत्त्व को स्वीकार करते हुए स्वतंन्त्र इच्छा,

वैयक्तिक विभिन्नता एवं व्यक्तिगत मूल्यों के अस्तित्व पर जोर दिया जाता है। मनोविज्ञान का संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (**Cognitive view**) वातावरण के साथ अनुकूलन में संज्ञानात्मक योग्यताओं तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन पर जोर देता है। एडवर्ड टालमैन (Edward Tolman) तथा जीन प्याजे (**Jean Piaget**) जैसे संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा इस दिशा में अत्यन्त महत्त्व पूर्ण कार्य किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1- मनोविश्लेषण वाद के जनक कौन हैं ?

2- गेस्टाल्ड किस भाषा का शब्द है ?

3- व्यवहारवाद के प्रवर्तक कौन थे ?

4- प्रकार्यवाद के प्रवर्तक कौन हैं ?

5- शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र कौन कौन से हैं ?

3.5 शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान की उपयोगिता

बालक शिक्षण प्रक्रिया का महत्त्व पूर्ण अंग है क्योंकि उसी के लिए यह सब शैक्षिक व्यवस्थाएं की जाती है। अतः शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों को अपने स्वयं के बारे में जानकारी प्रदान करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षा मनोविज्ञान बालकों को अपने बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता हैं। विशेष रूप से किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों का बोध कराने की त्रुटि रहित विधियों का विकास मनोविज्ञान के माध्यम से किया जा चुका है। इस प्रकरण से सम्बन्धित जानकारी छात्रों की आयु वर्गों के अनुसार पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जा चुकी हैं तथा की जा रही है। विशेष रूप से कामशिक्षा से सम्बन्धित जानकारी शरीर में होने वाले संवेगात्मक, शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों के रूप में जनसंख्या शिक्षा, एड्स (Aids) तथा पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित तथा शिक्षा के नये तथा उपयोगी पाठ्यक्रमों की जानकारी आजकल विद्यालयों में दी जाने लगी है।

i.शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रयोग किये बिना सफल शिक्षण किया जाना सम्भव नहीं है। शिक्षण विधियाँ बालकों की आयु, बौद्धिक स्तर, उनके सामाजिक परिवेश के अनुकूल हो, यह शिक्षा मनोविज्ञान समझता है।

ii.बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं- जैसे-शैशवावस्था (0-3 वर्ष/पूर्व बाल्य काल 3-6 वर्ष) उत्तर बाल्यकाल (6-12 वर्ष), किशोरावस्था (12-18 वर्ष) प्रौढ़ावस्था (18 या 60 वर्ष), वृद्धावस्था (60 वर्ष से अधिक) में अधिगमकर्त्ताओं के लिए अलग-अलग शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। इस कार्य को विधिपूर्वक पूरा करने के लिए, प्रयोग आधारित शिक्षण विधियाँ अलग-अलग हैं मोंटेसरी, किण्डरगार्टन, अभिक्रमित-स्वाध्याय, दलशिक्षण, प्रयोगशाला विधि, कार्यशाला विधि, सुकराती विधि, प्रोजेक्ट पद्धत्ति, आदि में से किस का प्रयोग किस आयु वर्ग के लिए किया जाए, यह हमें शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है।

iii.बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं से प्रत्येक बच्चे को जाना होता है। प्रत्येक आयु वर्ग में बच्चे के व्यवहार में शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक परिर्वतन आते हैं। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक अभिभावक तथा अध्यापक इन परिवर्तनों के बारे में जाने। इन परिवर्तनों के बारे में जाने बिना अध्यापक तथा अभिभावक बच्चों के विकास में सहयोगी नहीं हो सकते बल्कि कई बार वे अवरोध पैदा कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप बच्चों में-मूत्र असंयम, क्रोधावेश, तुनकमिजाजी, अंगूठा चूसना, नकारात्मकता, रोनाधोना, झूठ बोलना, डरपोकपन, धैर्यहीनता, चोरी करना, दांतों से नाखून काटना, वामहस्तता, शर्मीलापन आदि संवेगात्मक समस्याएं आ जाती हैं। इन समस्याओं को पनपने न देना शिक्षा मनोविज्ञान की विधियों को प्रयोग करने से सम्भव है इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए मनोविज्ञान उपचार की विधियाँ बताता है। जो कि शिक्षक तथा अभिभावक के द्वारा अपनाये जा सकते है।

iv.किशोरावस्था को **'स्टेनले हाल'**ने संघर्ष, तूफान, दबाव और तनाव का काल कहा है। इस आयुवर्ग में बालक का जीवन नाजुक दौर से गुजरता है। यह आयुवर्ग जीवन निर्माण का महत्त्व पूर्ण हिस्सा है। इस आयुवर्ग में यदि किशोरों के साथ मनोविज्ञान द्वारा बताये गये सिद्धांन्तों का पालन नहीं किया जाता तो बच्चे के विकास में बाधा पड़ती है। यदि अध्यापक तथा अभिभावक ठीक ढंग से व्यवहार नहीं करते तो किशोर समाज के लिए कंटक भी बन

जाते है। वर्तमान काल में किशोरों में पनपती अनुशासनहीनता तथा विद्रोह तथा असामाजिककार्यों में लिप्त होने का यह महत्त्व पूर्ण कारक हैं। अतः किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान प्रत्येक गृहस्थ तथा अध्यापक को होना चाहिए। असफलता का भय, आत्मविश्वास की कमी के कारण आता है। आत्मविश्वास में वृद्धि करने का आधार सफलताएं हैं। मनोविज्ञान हमें बच्चों को सफलताओं का भान कराने की दिशा देता है।

v.मनोविज्ञान बच्चों को दण्ड न देने की दिशा देता है। क्योंकि दण्ड से बच्चे बिगड़ते हैं। जबकि पुरस्कार से बच्चे सुधरते हैं।

vi.बच्चों में निहित अच्छाइयों की खोज करें, उनकी अच्छाइयों का सम्मान करें, ऐसा करने पर बुराइयां अपने आप छूट जाती है। यह मत शिक्षा मनोविज्ञान का है।

vii.मनोविज्ञान कहता है कि कभी भी बच्चे को निषेधात्मक आदेश नहीं देने चाहिए। (यह न करो, वह न करो आदि) बल्कि सुझावात्मक सुझाव देने चाहिए। यह करना अच्छा है, इस तरह से अपनी बात कहनी चाहिए आदि।

viii.बच्चे को स्वावलम्बन की शिक्षा दे। परिवार, विद्यालय आदि के लिए कर्तव्य का बोध भी करायें।

ix.बच्चों के शारीरिक दोषों का निराकरण कराना अध्यापकों का दायित्व है।

x.बच्चों में वैयक्तिक विभिन्नताएं होती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से बच्चे की बुद्धिलब्धि, अभिरुचि, अभियोग्यताओं के परीक्षण से वैयक्तिक विभिन्नताओं से परिचित होकर उनके अनुकूल शिक्षण विधियों, विषयों का चयन किया जाना चाहिए।

xi.मूल्यांकन करना अत्यन्त महत्त्व पूर्ण इसलिए है क्योंकि इससे विदित होता है कि अध्यापक अपने शिक्षण में कितना सफल हुआ। स्किनर ने लिखा है कि शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान, शिक्षक, के रूप में अपनी स्वयं की कुशलता का मूल्यांकन करने में सहायक होता है।

xii.शिक्षा मनोविज्ञान विद्यालय तथा कक्षा में अनुशासन बनाये रखने में सहायक होता है।

xiii.बच्चों के संर्वागीण विकास में शिक्षा मनोविज्ञान सहायक होता है।

xiv.मनोविज्ञान के सिद्धान्तां पर आधारित दृश्यश्रव्य सामग्री शिक्षण को सुखद, सरल, सरस तथा उत्प्रेरणा प्रदान करती है, विषय की ओर अधिगमकर्ता का ध्यानकर्षण करती है। आनन्ददायक अनुभूति प्रदान करती है। अधिगमकर्ता को सक्रिय करती है, अध्यापन के समय की बचत करती है, अध्यापक के कार्य को सरल बनाती है, अधिक समय में पूरी होने वाली क्रियाओं को कम समय में पूरी करने में सहायक होती है। चीनी कहावत है मैं सुनता हूँ-भूल जाता हूँ, देखता हूँ- याद रहता है। करता हूँ- सीख जाता हूँ। इसी लिए आजकल शिक्षण में अधिगम सहायक सामग्रियों अर्थात दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह सभी साधन शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसंधानों पर आधारित हैं।

xv.विकलांग बच्चों के शिक्षण के लिए अध्यापकों को नई शिक्षण विधियों से परिचित कराने में शिक्षा मनोविज्ञान का महत्त्व पूर्ण सहयोग है।

xvi.शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों के समाजिक व्यवहार को संशोधित करने में सहयोग प्रदान करता

xvii.योग्य अध्यापक बनने के लिए उसकी रुचि, मनोवृत्ति, अभ्यास एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। शिक्षा मनोविज्ञान तो केवल उसे सूचना एवं ज्ञान प्रदान, करेगा, उसकी योग्यता में वृद्धि, उसके अपने अनुभव इत्यादि पर निर्भर होगी। अतएव शिक्षा मनोविज्ञान की एक महत्त्व पूर्ण सीमा यह है कि शिक्षा की प्रकृति ऐसी है कि उसमें ज्ञान, सूचना, तथ्यों के संकलन के अतिरिक्त भी अन्य बातों की आवश्यकता है।

xviii.शिक्षा मनोविज्ञान की दूसरी सीमा इसके वैज्ञानिक रूप के कारण है। विज्ञान से तथ्य तो प्रकाश में आते हैं, किन्तु उसके द्वारा अन्तिम निर्णय नहीं लिये जा सकते हैं। जैसे, विज्ञान द्वारा अणु शक्ति के उत्पादन इत्यादि का ज्ञान तो प्राप्त हो जाता हैं, किन्तु इस शक्ति का प्रयोग कैसे हो, इसका निर्णय विज्ञान से न मिलकर समाजशास्त्रों एवं मानव कल्याण से सम्बन्धित विषयों द्वारा प्राप्त होता है। शिक्षा मनोविज्ञान से भी हमें केवल तथ्यों का पता चलता है। उनके प्रयोग के निर्णय के सम्बन्ध में बहुत सी अन्य बातों का पता ज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है।

3.6 शैक्षिक मनोविज्ञान की सीमाएं

योग्य अध्यापक बनने के लिए उसकी रुचि, मनोवृत्ति, अभ्यास एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। शिक्षा मनोविज्ञान तो केवल उसे सूचना एवं ज्ञान प्रदान, करेगा, उसकी योग्यता में वृद्धि, उसके अपने अनुभव इत्यादि पर निर्भर होगी। अतएव शिक्षा मनोविज्ञान की एक महत्त्व पूर्ण सीमा यह है कि शिक्षा की प्रकृति ऐसी है कि उसमें ज्ञान, सूचना, तथ्यों के संकलन के अतिरिक्त भी अन्य बातों की आवश्यकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की दूसरी सीमा इसके वैज्ञानिक रूप के कारण है। विज्ञान से तथ्य तो प्रकाश में आते हैं, किन्तु उसके द्वारा अन्तिम निर्णय नहीं लिये जा सकते हैं। जैसे, विज्ञान द्वारा अणु शक्ति के उत्पादन इत्यादि का ज्ञान तो प्राप्त हो जाता हैं, किन्तु इस शक्ति का प्रयोग कैसे हो, इसका निर्णय विज्ञान से न मिलकर समाजशास्त्रों एवं मानव कल्याण से सम्बन्धित विषयों द्वारा प्राप्त होता है। शिक्षा मनोविज्ञान से भी हमें केवल तथ्यों का पता चलता है। उनके प्रयोग के निर्णय के सम्बन्ध में बहुत सी अन्य बातों का पता ज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है। शिक्षा-मनोविज्ञान हमें यह तो बता सकता है कि किस प्रकार का वातावरण किस प्रकार की शिक्षा के लिए उत्तम है, किन्तु वर्तमान स्थिति में वह वातावरण कैसे उत्पन्न किया जा सकता है अथवा उसका निर्माण करना कितना सम्भव है, इसका निर्णय मनोविज्ञान के क्षेत्र से बाहर ही समझा जा सकता है।

हम कह सकते हैं कि किसी समस्या को सुलझाने में विज्ञान अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है और जो तथ्य विज्ञान द्वारा संकलित किये जाते हैं, वे अनेक दशाओं में समस्या-समाधान में मूल होते हैं, फिर भी सम्पूर्ण तथ्य मिलकर भी समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेने की आवश्यकता को नहीं समाप्त कर सकते ।

शिक्षा मनोविज्ञान की तीसरी सीमा इसकी अपनी प्रकृति के कारण है । मनोविज्ञान एक विज्ञान का रूप लिये हुए तो है किन्तु अन्य विज्ञानों से इस बात में भिन्न है इसके तथ्यों को नियमबद्ध क्रमबद्ध रूप में रखना, जैसा कि अन्य विज्ञानों में होता है, अब तक सम्भव नहीं हो पाया है।

भौतिक विज्ञान या रसायनशास्त्र अथवा अन्य प्रकृति-विज्ञान तथ्यों के झुण्ड के झुण्ड को कुछ नियमों, सिद्धान्तों या सामान्यीकरण के रूप में रख देते हैं। एक वैज्ञानिक को इन नियमों इत्यादि को ही स्मरण रखना होता है। और वह इस विज्ञान सम्बन्धी जटिल से जटिल समस्या को सुलझा लेता है, किन्तु एक मनोवैज्ञानिक को तथ्यों के झुण्डों में से अपने

समस्या सम्बन्धी तथ्यों को निकालना होगा। यहीं नहीं इन तथ्यों को प्रयोग समस्या-के समाधान में जैसे उसे प्राप्त हुए है। वैसे ही नहीं, वरन् इनमें स्थान एवं समय या वातावरण के अनुसार परिवर्तन लाकर करना होगा।

एक उदाहरण से उपर्युक्त बात स्पष्ट हो जायेगी। इंजीनियर को भवन कानिर्माण करना है। वह भवन-निर्माण सम्बन्धी नियमों का अध्ययन कर भवन की इमारत खड़ी करा दे। नींव की गहराई, चूने, सीमेण्ट, ईंट तथा अन्य उपयोगी सामग्रियों जो भवन को मजबूती प्रदान करते हैं, इसका उसे ज्ञान होगा और वह नियमानुसार भवन बनावा देगा। किन्तु अध्यापक, जिसे चरित्र निर्माण कराना है, कोई भी ऐसे नियमों पर अपना कार्यक्र्रम आधारित नहीं कर सकता, जो चरित्र निर्माण सम्बन्धी पूर्णरूप से निर्धारित हों। चरित्र-निर्माण के लिए उसे वंशानुक्रम, वातावरण, आदतों इत्यादि सम्बन्धी अध्ययनों का अवलोकन करना होगा, फिर देखना होगा कि जिस स्थिति में इनके विद्यार्थी हैं, उनके किस प्रकार से इन अध्ययनों की सहायता लेकर चरित्र-निर्माण का कार्यक्रम प्रारम्भ किया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा-मनोविज्ञान की तीन महत्त्व पूर्ण सीमाएं हैं-

i.शिक्षा मनोविज्ञान का प्रयोग शिक्षण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सीमित रूप से ही किया जा सकता है। शिक्षण की प्रकृति के अनुसार अनुभव, रुचि मनोवृत्ति इत्यादि, शिक्षक के लिए उतने ही आवश्यक है जितना कि मनोविज्ञान का ज्ञान।

ii.शिक्षा मनोविज्ञान विज्ञान की इस सीमा से सीमित है कि तथ्यों की सत्यता की जांच अथवा नये तथ्यों का पता लगाना-निर्णय करने में केवल सहायक होते हैं, न कि निर्णय को अन्तिम रूप देने में।

iii.शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की सीमा से सीमित है ।

3.7 सारांश

शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान मानव व्यवहार को जानने एवं व्यवहार में परिवर्तन लाने में सहायक होता है । शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को विद्यार्थियों में वैक्तिक भिन्नता को जानने एवं उसका निवारण करने में सहायता करता है । शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक होता है जो व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता करता है । वास्तव

में सीखना व्यवहार में परिवर्तन ही है और यदि किसी व्यक्ति के व्यव्हार में सकारात्मक परिवर्तन आ रहा है तो यह कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति सकारात्मक बातें सीख रहा है यहाँ पर यह स्पष्ट रूप से समझना चाहिए कि व्यव्हार में नकारात्मक परिवर्तन भी सीखना ही है परन्तु शिक्षक विद्यार्थियों के व्यव्हार में सदैव वांछित एवं सकारात्मक परिवर्तन चाहता है। यह सब शैक्षिक मनोविज्ञान से सम्बंधित क्षेत्र है। क्योंकि शैक्षिक मनोविज्ञान शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण प्रक्रिया का अध्ययन करता है। इसी कारण शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता और बढ़ जाती है। शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता के साथ- साथ कुछ सीमाएं भी हैं क्योंकि शैक्षिक मनोविज्ञान , मनोविज्ञान का ही एक अंग है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- सिगमंड फ्रायड

2- जर्मन भाषा का

3- जे. बी. वाटसन

4- विलियम जेम्स

5- शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण प्रक्रिया

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- https://hi.wikipedia.org/wiki
- https://education.wsu.edu/graduate/edpsych/overview/
- मंगल एस.के.(2010). एडवांस्ड एजुकेशनल साइकोलोजी पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू देहली।
- मंगल एस.के.(2011). शिक्षा मनोविज्ञान पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू देहली।
- पाठक पी.डी.(2012). शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
- गुप्ता एस.पी. (2014).उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख विद्यालयों का वर्णन कीजिए।
2. शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ लिखिए एवं इसके क्षेत्र एवं प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
3. शैक्षिक मनोविज्ञान का एक शिक्षक के लिए क्या महत्त्व है विवेचना कीजिए।
4. शैक्षिक मनोविज्ञान की उपयोगिता एवं सीमाओं को लिखिए।
5. शैक्षिक मनोविज्ञान की वर्तमान में प्रासंगिकता को स्पष्ट कीजिए।

UNIT-4 Human growth and development (मानव वृद्दि एवं विकास)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 वृद्दि एवं विकास का अर्थ

4.4 वृद्दि एवं विकास के सिद्दांत

4.5 विकास की अवस्थाएं

4.6 वृद्दि तथा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

4.7 सारांश

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य के जन्म लेते ही उसमें शारीरिक वृद्दि एवं मानसिक विकास होना आरम्भ होने लगता है, यह वृद्दि एवं विकास उसके माता-पिता एवं वातावरण पर निर्भर करता है। बच्चों की शारीरिक बनावट उनके अनुवंशकी पर निर्भर करती है जबकि मानसिक विकास कुछ सीमा तक आसपास के वातावरण पर भी निर्भर करता है। मनुष्य में वृद्दि एवं विकास सतत चलने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो बालक को असहाय शिशु से आत्मनिर्भर प्रौढ़ बनाती है। वृद्दि तथा विकास की यह प्रक्रिया माता के गर्भ से आरम्भ हो जाती है और जीवन पर्यंत चलते रहती है। गर्भाधान से आरम्भ हुई यह यात्रा शैशावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था तक निरंतर किसी न किसी रूप में चलती रहती है। आयु के साथ वृद्दि एवं विकास न हो पाने के कारण बालकों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में सामान्य बच्चों की तुलना में

अंतर दिखाई देता है जिस कारण एक साथ जन्मे बच्चों में किसी न किसी रूप में अंतर हो सकता है। और जिन बच्चों में वृद्दि तथा विकास की दर सामान्य अथवा सामान्य से अधिक होती है वे विकास के क्रम में आगे बढ़ जाते हैं। बच्चों में वैक्तिक भिन्नता भी असमान वृद्दि एवं विकास के कारण होती है। यही कारण है कि पाठ्यचर्या निर्धारण करते समय बालक की अवस्था एवं आयु का ध्यान रखा जाता है, शैक्षिक मनोविज्ञान हमें इन सब बातों का ज्ञान प्रदान करता है और हम शैक्षिक मनोविज्ञान की सहायता से उनके अधिगम क्षमता का आंकलन कर पाते हैं और सही उपचार भी दे सकते हैं।

4.2 उद्देश्य

- मानव वृद्दि एवं विकास के प्रत्यय को समझ पायेंगे।
- मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर समझ सकेंगे।
- मानव वृद्दि एवं विकास के सिद्दांतों को समझ पायेंगे
- विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को रेखांकित कर सकेंगे।
- मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।
- वृद्दि एवं विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को समझ पायेंगे।

4.3 वृद्दि एवं विकास का अर्थ

वृद्दि एवं विकास शब्द सामान्य रूप से समानार्थी प्रतीत होते हैं और आगे बढ़ने की ओर संकेत करते हैं परन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि देखें इनमें अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वृद्दि शब्द का सामान्य रूप से प्रयोग कोशीय वृद्दि के लिए किया जाता है जबकि विकास शब्द का प्रयोग शारीरिक वृद्दि के परिणामस्वरूप शरीर के समस्त अंगों में आये परिवर्तनों के संगठन से है। स्पष्ट है कि विकास में वृद्दि का समावेश सदैव ही रहता है। इस प्रकार वृद्दि एवं विकास दोनों शब्दों का प्रयोग बालक में आयु बढ़ने के साथ साथ होने वाले परिवर्तनों के लिए किया जाता है। वृद्दि शब्द परिमाण समबन्धी

परिवर्तनों के लिए उपयोग किया जाता है जबकि विकास ऐसे सभी परिवर्तनों के लिए किया जाता है जिससे बालक की कार्यकुशलता, कार्यक्षमता और व्यवहार में प्रगति दिखाई देती है। वृद्दि विकास प्रक्रिया का एक चरण है जबकि विकास व्यक्ति में होने वाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता है।

वृद्दि की प्रक्रिया बालक के परिपक्वता ग्रहण करने के साथ ही समाप्त हो जाती है जबकि विकास एक सतत प्रक्रिया है विकास आजीवन चलते रहता है। शारीरिक वृद्दि के साथ विकास हो यह आवश्यक नहीं है इसी प्रकार परिपक्वता आने पर शारीरिक वृद्दि रुक जाती है जबकि विकास निरंतर चलता रहता है।

4.4 वृद्दि एवं विकास के सिद्दांत

जैसा कि हम जान चुके हैं कि वृद्दि तथा विकास के दो आधार हैं वंशानुक्रम (Heredity)और वातावरण (Environment) इन दोनों आधारों की परस्पर अंत:क्रिया के परिणामत: मनुष्य का शारीरिक, मानसिक सामाजिक , संवेगात्मक एवं नैतिक विकास संभव हो पाता है। इसके साथ ही वृद्दि और विकास के दो प्रमुख कारण परिपक्वता तथा अधिगम हैं। वृद्दि तथा विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा सिद्द अनेकों सिद्दांतों का प्रतिपादन किया गया है जिनमे से कुछ प्रमुख निम्लिखित हैं-

(i) फ्रायड का मनोलैंगिक विकास सिद्धान्त (Fraud's Theory of Psycho-Sexual Development)

(ii) प्याजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त (Piaget's Theory of Cognitive Development)

(iii) इरीकसन का मनो-सामाजिक विकास सिद्धान्त (Erickson's Theory of Psycho-Social Development)

(iv) चोमस्की का भाषा विकास सिद्धान्त (Chomsky's Theory of Language Development)

(v) कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त (Cohlberg's Theory of Moral Development)

उपरोक्त सिद्दांत विकास प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करते हैं। इनका अध्ययन आप आगे की ईकाइयों में करेंगे।

4.5 विकास की अवस्थाएं

मनुष्य के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में बाँटा गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि गर्भकाल और परिपक्वता के बीच को प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई पड़ने लगती है। विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है। आप इस इकाई में गर्भाधान से मृत्यु तक की विकासात्मक अवस्थाओं का निम्नवन अध्ययन करेंगे-

	विकास की अवस्था	जीवन अवधि
1	गर्भकालीन अवस्था या गर्भावस्था	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2	शिशुकाल या शैशवावस्था	जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था
3.	बाल्यकाल य बाल्यावस्था a) पूर्व- बाल्यावस्था b) उत्तर - बाल्यावस्था	3 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक 4 वर्ष से 6 वर्ष तक 7 वर्ष से 12 वर्ष तक
4	किशोरावस्था	13 से 19 वर्ष तक
5.	प्रौढ़ावस्था	20 से 40 वर्ष तक
6.	मध्यावस्था	41 से 60 वर्ष तक
7.	वृद्धावस्था- जीवन की अंतिम अवस्था होती है	इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद

गर्भावस्था

यह अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म तक की अवस्था है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इसमें विकास की गति अधिक तीव्र होती है। किन्तु जो परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न

होते हैं वे विशेष रूप से शारीरिक होते हैं। समस्त शरीर-रचना, भार, आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था की घटनायें होती हैं।

सम्पूर्ण गर्भकालीन विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। गर्भाधान से लेकर दो सप्ताह की अवस्था को बाल्यावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में प्राणी अंडे के आकार का होता है। इस अंडे में भीतर तो कोष्ठ-विभाजन की क्रिया होती रहती है परन्तु ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव गर्भाशय में तैरता रहता है जिसके कारण इसे कोई विशेष पोषाहार नहीं मिल पाता। परन्तु दस दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से सट जाता है और माता के शरीर पर भोजन के लिए आश्रित हो जाता है। तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे महीने के अन्त तक गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था होती है जिसे भ्रूणावस्था कहा जाता है। इस अवस्था के जीव को भ्रूण कहते हैं। विकास की गति बहुत तीव्र होने के कारण इस अवस्था में भ्रूण के भीतर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। शरीर के प्रायः सभी मुख्य अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे महीने के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा उसका भार लगभग दो ग्राम हो जाता है। परन्तु भ्रूण का स्वरूप वैसा नहीं होता जैसा नवजात शिशु का होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपाव में बहुत बड़ा होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। कान भी सिर से काफी नीचे स्थित होते हैं नाक में भी केवल एक ही छिद्र होता है और माथे की चौड़ाई आवश्यकता से अधिक होती है। भ्रूण का निर्माण तीन परतों से होता है। बाहरी परत को एक्टोडर्म, बीच वाली परत को मेसोडर्म और आन्तरिक परत को एण्डोडर्म कहा जाता है। इन्हीं तीन परतों से शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत से त्वचा, नाखून, दाँत, बाल तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है। इनमें से मस्तिष्क का विकास तो बड़ी तेजी से होता है। चार सप्ताह की अवस्था में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को पहिचाना जा सकता है। बीच की परत से त्वचा की भीतरी परत तथा मांस-पेशियों का निर्माण होता है। इसी प्रकार आन्तरिक परत से फेफड़े, यकृत, पाचन क्रिया से सम्बन्धित अंग तथा विभिन्न ग्रन्थियाँ बनती है।

गर्भकालीन विकास की तीसरी और अन्तिम अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कही जाती है। यह तीसरे महीने के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक की अवस्था होती है। इस अवस्था को निर्माण की अवस्था नहीं बल्कि विकास की अवस्था समझना चाहिए, क्योंकि भ्रूणावस्था में जिन-जिन अंगों का निर्माण हो गया रहता है उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के आकार तथा भार में वृद्धि होती रहती है। पाँच महीने में इसका भार दस औंस तथा लम्बाई दस इंच होती है। आठवें महीने में शिशु वजन में पाँच पौंड का हो जाता है और लम्बाई अट्ठारह इंच तक हो जाती है। जन्म के समय शिशु का भार सात-साढ़े-सात पौंड तथा लम्बाई बीस इंच होती है। इस अवस्था में हृदय, फेफड़े, नाड़ी, मण्डल कार्य भी करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि सातवें महीने में ही बच्चा पैदा हो जाय तो वह जीवित रह सकने योग्य होगा।

शैशावस्था

जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था को शैशव की अवस्था कहा जाता है। इस आयु के बालक को नवजात शिशु भी कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चलता है कि इस अवस्था में बालक के भीतर कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। जन्म लेने के बाद जिस नये वातावरण में बालक अपने को पाता है उसे समझना और उसमें अपने को समायोजित करना उसके लिये आवश्यक होता है। अतः इस अवस्था में समायोजन की प्रक्रिया के अतिरिक्त बालक के भीतर किसी विशेष मानसिक या शारीरिक विकास के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते।

बाल्यावस्था

व्यापक अर्थ में बाल्यावस्था गर्भकाल से परिपक्वता तक के जीवन-प्रसार को कहा जाता है। परन्तु जब हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हैं तो 'बाल्यावस्था' का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही होता है। उस सन्दर्भ में बाल्यावस्था अन्य अवस्थाओं की भाँति विकास की एक विशेष अवस्था समझी जाती है जिसमें कुछ प्रमुख मानसिक और शारीरिक विशेषताएँ आविर्भूत होती हैं।

बाल्यावस्था चार से बारह वर्ष की अवस्था होती है। निरन्तर वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण इस अवस्था में बालक उससे भली-भाँति परिचित हो जाता है और उस पर यथासम्भव नियन्त्रण करने लगता है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए वह नित्य प्रयास करता रहता है। इस प्रकार का समायोजन स्थापित करना ही बाल्यावस्था की प्रमुख समस्या होती है और इस प्रक्रिया में उसकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर कार्य करती है। समूह-प्रवृत्ति इस अवस्था की एक दूसरी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक के भीतर सामाजिक भावनाओं का विकास प्रारम्भ होता है और घर के भीतर की सीमित वातावरण से ऊबकर वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है।

सामूहिक परिस्थितियों में पढ़कर बालक में अनुकरण, खेल, सहानुभूति तथा निर्देशग्राहकता का विकास होने लगता है। उसकी अधिकांश नैतिकता समूह द्वारा ही नियंत्रित और निर्देशित होती है। परन्तु अभी उससे उच्च नैतिक आचरण और आदर्श नैतिक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ तक बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास का प्रश्न है, बालक के भीतर सहयोग, सहानुभूति और नेवृत्व की भावनाओं के साथ ही अवज्ञा, स्पर्धा, आक्रामकता तथा द्वन्द्व आदि का विकास शीघ्रता से होने लगता है। यह सारी बातें बालक के सामाजिक समायोजन तथा उसके मस्तिष्क के उचित विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में पड़कर वह आत्मनिर्भर होना सीखता है। परन्तु द्वन्द्व और आक्रामकता के विकास के बावजूद भी किशोरावस्था की तुलना में बाल्यावस्था स्थिरता और शांति की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में बालक घर के भीतर के संकुचित वातावरण से निकलकर पाठशाला और मित्रमण्डली में समय व्यतीत करता है। अतः उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं को भलीभाँति समझने का अवसर मिलता है। वह कठारताओं और अभावों को चुपचाप सहन कर लेता है, किशोरों की भाँति क्रांतिकारी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करता।

बाल्यावस्था को दो भागों में विभक्त किया गया है:-

1. पूर्व-बाल्यावस्था - 4 से 6 वर्ष तक
2. उत्तर- बाल्यावस्था - 7 से 12 वर्ष

पूर्व बाल्यावस्था की विशेषताएँ

इसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में बच्चों में महत्त्व पूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, अवगमात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास, तथा सांवेगिक विकास होते देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राक्-टोली अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

1. **बाल्यावस्था एक समस्या अवस्था होती है-** इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चे एक विशिष्ट व्यक्तित्व विकसित करते हैं और स्वतंत्र रूप से कोई कार्य करने पर अधिक बल डालते हैं। इसके अलावा इस उम्र के बच्चे अधिक जिद्दी, झक्की, विरोधात्मक, निषेधवादक होते हैं। इन व्यवहारात्मक समस्याओं के कारण अधिकतर माता-पिता इस अवस्था को 'समस्या अवस्था' कहते हैं।
2. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की अभिरूचि खिलौनों में अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करते हैं। बुरनर (1975), हेरोन (1971) एवं काज, (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि इस अवस्था में बच्चों में खिलौनों से खेलने की अभिरूचि अधिकतम होती है और जब बच्चे स्कूल अवस्था में प्रवेश करने लगते हैं अर्थात वे 6 साल का होने को होते हैं तो उनकी यह अभिरूचि समाप्त हो जाती है।
3. **पूर्व बाल्यावस्था को शिक्षकों द्वारा तैयारी का समय बताया गया है-**इस अवस्था को शिक्षकों ने प्राक्स्कूली अवस्था कहा है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चों को किसी स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए दाखिला नहीं कराया जाता है। लेकिन, कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें प्राक्स्कूल कहा जाता है जिनमें बच्चों को रखकर कुछ अनौपचारिक ढंग से या खेल के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। नर्सरी स्कूल ऐसे स्कूलों के अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन, कुछ बच्चे ऐसे नर्सरी स्कूल में न जाकर माता-पिता से घर पर ही कुछ शिक्षा पाते हैं। शिक्षकों का कहना है कि चाहे बच्चे किसी नर्सरी स्कूल में अनौपचारिक शिक्षा पा रहे हों या घर में माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, वे अपने-आपको इस ढंग से तैयार करते हैं कि स्कूल अवस्था प्रारंभ होने पर उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो।

4. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में उत्सुकता अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चों में अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, चाहे वे जीवित हों या अजीवित, के बारे में जानने की उत्सुकता काफी अधिक रहती है। वे हमेशा यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनके वातावरण में उपस्थित ये सब वस्तुएँ किस प्रकार की है, वे कैसे कार्य करती हैं, वे कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं आदि-आदि। शायद यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व बाल्यावस्था को अन्वेषणात्मक अवस्था कहा है।
5. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है-**इस अवस्था के बच्चों में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य वयस्कों के व्यवहारों तथा उनके बोलने-चालने के तौर-तरीकों का नकल उतारने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चेरी तथा लेविस (1991) का मत है कि इस अवस्था के जिन बच्चों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है उन बच्चों में किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में आने पर सुझाव ग्रहणशीलता का शीलगुण तेजी से विकसित होता है।

उत्तर बाल्यावस्था की विशेषताएँ

उत्तर बाल्यावस्था 7 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक की होती है तथा बालकों में 7 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक की होती है। यह वह अवस्था होती है जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं। इस अवस्था को माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिखाई गई विशेषताओं के आधार पर कई तरह के नाम भी दिए गए हैं। जैसे माता-पिता द्वारा इस अवस्था को उत्पाती अवस्था कहा गया है (क्योंकि अक्सर बच्चे माता-पिता की बात न मानकर अपने साथियों की बात अधिक मानते हैं), शिक्षकों ने इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना प्रारंभ कर देते हैं) मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को गिरोह अवस्था या ''गैंग एज'' कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण होता है)। इस अवस्था में भी बच्चों में महत्त्व पूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है जिनका ज्ञान होने से शिक्षक आसानी से बालकों का मार्गदर्शन कर पाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **माता-पिता द्वारा एक उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है-**इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं और उन पर अपने संगी-साथियों का गहरा प्रभाव पड़ना भी प्रारंभ हो जाता है। वे माता-पिता की बात को कम महत्त्व देते हैं जिसके कारण उन्हें डाँट- फटकार भी मिलती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते हैं जिससे माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही काफी परेशान रहते हैं।
2. **बच्चों में लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है-**उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में आपस में लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह बात वहाँ पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है जहाँ परिवार में भाई-बहनों की संख्या अधिक होती है। छोटी-छोटी बात को लेकर एक-दूसरे पर आरोप थोपते हैं, गाली-गलौच करते हैं और शारीरिक रूप से आघात करने में भी पीछे नहीं रहते।
3. **शिक्षकों द्वारा उत्तर बाल्यावस्था को प्रारंभिक स्कूली अवस्था कहा जाता है-**शिक्षकों ने इस बात पर बल डाला है कि यह वह अवस्था होती है, जिसमें छात्र उन चीजों को सीखते हैं जिनसे उन्हें वयस्क जिंदगी में सफल समायोजन करने में मद्द मिलती है। इस अवस्था में छात्र पाठ्यक्रम से संबद्ध कौशल तथा पाठ्यक्रम कौशल दोनों को ही सीखकर अपना भविष्य उज्जवल करने की नींव डालते हैं। कुछ शिक्षकों ने इस अवस्था को नाजुक अवस्था भी कहा है, क्योंकि इस उम्र में उपलब्धि-प्रेरक की भी नींव पड़ती है। बालकों में उच्च उपलब्धि-प्रेरणा, निम्न उपलब्धि-प्रेरणा, या साधारण उपलब्धि-प्रेरणा की आदत बनती है। एक बार जिस प्रकार की आदत बन जाती है, वही आदत किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में भी बनी रहती है। कागन (1977) तथा ह्राईटमैन (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस बात की पुष्टि की है कि उत्तर अवस्था में दिखाए गए उपलब्धि-स्तर तथा वयस्कता में प्राप्त किए गए उपलब्धि-स्तर में अधिक सह-संबंध पाया जाता है जो अपने-आपमें इस बात का द्योतक है कि उत्तर बाल्यावस्था का उपलब्धि-स्तर बहुत हद तक वयस्क के उपलब्धि-स्तर का एक तरह का निर्धारक होता है।
4. **बच्चा अपनी ही उम्र के साथियों के समूह द्वारा स्वीकृति पाने के लिए काफी लालायित रहता है-**इस अवस्था की एक विशेषता यह भी बताई गई है कि इस उम्र के बच्चे अपने साथियों के समूह में इतना अधिक खो जाते हैं कि उनके बोलने-चालने का ढंग, कपड़ा पहनने का ढंग, खाने-पीने की चीजों की पसंद आदि सभी

इस समूह के अनुकूल हो जाता है। बच्चे ऐसे तौर-तरीकों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि इस ढंग का तौर-तरीका उनके परिवार तथा स्कूल के तौर-तरीकों से परस्पर विरोधी हैं।

5. **बच्चों में सर्जनात्मक क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव होता है-**

इस उम्र के बच्चों में अपनी शक्ति तथा बुद्धि को नई चीजों में लगाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे अक्सर नए ढंग की चित्रकारी तथा शिल्पकारी करते पाए जाते हैं और उससे उनमें एक तरह से सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे सुसमैन (1988) का मत है कि हालाँकि इस ढंग की सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का बीज प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही बो दिया जाता है, इसका पूर्ण विकास तब तक नहीं होता है जब तक कि बच्चे की उम्र 10-12 साल की नहीं हो जाती है।

पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

पूर्व बाल्यावस्थाके विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

i. चलना सीखना

ii. ठोस आहार लेना सीखना

iii. बोलना सीखना

iv. मल-मूत्र त्याग करना सीखना

v. यौन अंतरों तथा यौन शालीनता को सीखना

vi. शारीरिक संतुलन बनाए रखना सीखना

vii. सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के सरलतम संप्रत्यय को सीखना

viii. अपने-आपको माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के साथ सांवेगिक रूप से संबंधित करना सीखना

ix. सही तथा गलत के बीच विभेद करना सीखना तथा अपने में एक विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य-

i. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशल को सीखना।

1. अपने-आपके प्रति एक हितकर मनोवृत्ति विकसित करना।
2. अपनी ही उम्र के साथियों के साथ् मिलना-जुलना सीखना।
3. उपयुक्त पुरूषोचित तथा स्त्रियोचित यौन भूमिकाओं को सीखना।
4. पढ़ना, लिखना तथा गिनती करना से संबंधित मौलिक कौशल विकसित करना।
5. दिन-प्रतिदिन की सुचारू जिंदगी के लिए आवश्यक संप्रत्ययों को सीखना।
6. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखना।
7. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करना।
8. सामाजिक समूहों एवं संस्थानों के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना।

किशोरावस्था बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है। सम्पूर्ण बाल-विकास में इस अवस्था का बहुत ही महत्त्व समझा जाता है। यह अवस्था प्रायः तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है। इसके बाद परिपक्वता का प्रारम्भ होता है। इस अवस्था की अनेक विशेषतायें होती हैं जिनमें दो प्रमुख हैं- सामाजिकता और कामुकता। इन्हीं से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था कई दृष्टियों से शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल से भरी होती है। इसे शैशव की पुनरावृत्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में बाल्यावस्था की स्थिरता और शांति नहीं दिखलाई पड़ती। स्वभाव से भावुक होने के कारण किशोर बालक न तो अपना शारीरिक और न ही मानसिक समायोजन उचित रूप से स्थापित कर पाता है।

किशोरावस्था विकास की अत्यन्त महत्त्व पूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्त्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है।प्रथम यह युवावस्था की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्त्व पूर्ण मानी जाती है। इस अवस्था में बालक में अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं तथा विभिन्न विशेषताएं परिपक्वता तक पहुँच जाती है। किशोरावस्था के लिए अंग्रेजी का शब्द किशोरावस्था वह

अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है।किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में विकास की गति अत्यधिक तीव्र होती है।

किशोरावस्था अत्यंत संक्रमणकाल की अवधि होती है। इस अवस्था में किशोर स्वयं को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अनुभव करता है जिस कारण वह न तो बालक और न ही प्रौढ़ की तरह व्यवहार कर पाता है फलतः वह अपने व्यवहार को निश्चित करने में कठिनाई का अनुभव करता है। किशोरावस्था में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक,संवेगात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन एवं विकास दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों के कारण उनकी रुचियों, इच्छाओं आदि भी परिवर्तित हो जाती हैं। इन्हीं सब कारणों किशोरावस्था का जीवन के विकास कालों में काफी महत्त्व है।

किशोरावस्था में किशोरों में अपने मित्र समूह के प्रति मैत्री भाव की प्रधानता होती है। पूर्व बाल्यावस्था तक यह भावना बालक की बालक के प्रति तथा बालिकाओं की बालिकाओं के प्रति ही होती थी, परन्तु उत्तर बाल्यावस्था से परस्पर विपरीत लिंग के लिये आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और वे एक दूसरे के सामने स्वयं को सर्वोत्तम रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

किशोरावस्था कामुकता के जागरण, संवेगात्मक अस्थिरता, विकसित सामाजिकता, कल्पना-बाहुल्य तथा समस्या-बाहुल्य की अवस्था मानी जाती है। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति और जोश से भर जाते हैं और संसार की प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक नया अर्थ दिखलायी पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किशोरावस्था में प्रविष्ट होकर बालक एक नया जीवन ग्रहण करता है।

किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य-

1. दोनों यौन की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं एक परिपक्व संबंध कायम करना।
2. उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना।

3. माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतंत्रता कायम करना।
4. किसी व्यवसाय का चयन करना तथा उसके लिए अपने-आपको तैयार करना।
5. जीवन की प्रतियोगिताओं के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशलताओं को सीखना।
6. पारिवारिक जीवन तथा शादी के लिए अपने-आपको तैयार करना।
7. सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करना।
8. आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना।

किशोरावस्था की विशेषताएं

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्त्व पूर्ण अवस्था बताया है और अधिकतर शिक्षक इस बात से सहमत है कि उन्हें अपने शिक्षण कार्यो में सबसे अधिक चुनौती इस अवस्था के शिक्षार्थियों से प्राप्त होती है। किशोरावस्था 13 साल की उम्र से प्रारंभ होकर 19 साल तक की होती है और इस तरह से इस अवधि में तरूणावस्था या प्राक्किशोरावस्था, प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही सम्मिलित हो जाते हैं। इस किशोरावस्था में भी किशोरों में महत्त्व पूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित है-

1. **किशोरावस्था एक महत्त्व पूर्ण अवस्था है-** किशोरावस्था को हर तरह से एक महत्त्व पूर्ण अवस्था माना गया है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालीन प्रभाव दोनों की देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्अ रूप से उभरकर सामने आते हैं। अपने तीव्र शारीरिक विकास के कारण ही इस अवस्था में किशोर अपने-आपको वयस्क से किसी तरह से कम नहीं समझता तथा जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है, तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने-आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, मूल्य तथा अभिरूचि विकसित करने में सक्षम हो पाता है।

2. **परिवर्ती अवस्था होती है-**किशोरावस्था सचमुच में बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों को बाल्यावस्था की आदतों का परित्याग करके उसकी जगह नई आदतों, जो अधिक परिपक्व तथा सामाजिक होती है, को सीखना होता है। इस दिशा में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग में उचित दिशानिर्देश प्रदान कर उन्हें एक परिपक्व तथा सामाजिक मनोवृत्ति कायम करने में मद्द करते हैं जो किशोरों को एक स्वस्थ समयोजन में काफी सहायक सिद्ध होती है।
3. **किशोरावस्था में एक अस्पष्ट वैयक्तिक स्थिति होती है-**इस अवस्था में किशोरों की वैयक्तिक स्थिति अस्पष्अ होती है और उसे स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली सामाजिक भूमिका के बारे में संभ्रांति होती है। सचमुच एक किशोर अपने-आपको न तो बच्चा समझता है और न ही पूर्ण वयस्क। जब वह एक बच्चा के समान व्यवहार करता है तो उसे तुरन्त कहा जाता है कि उसे ठीक ढंग से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह अब बच्चा नहीं रह गया है। जब वह वयस्क के रूप में व्यवहार करता है तो उससे कहा जाता है कि वह अपनी उम्र से आगे बढ़कर नहीं व्यवहार करे, क्योंकि यह अच्छा नहीं लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि किशोरों में अपने द्वारा की जाने वाली वैयक्तिक भूमिका के बारे में संभ्रांति मौजूद रहती है। इरिक्सन (1964) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?''
4. **किशोरावस्था एक समस्या उम्र होती है-**ऐसे तो हर अवस्था की अपनी समस्याएँ होती है, परन्तु किशोरावस्था की समस्या लड़कों तथा लड़कियों, दोनों के लिए ही अधिक गंभीर होती है। इसके मुख्य दो कारण बताए गए है। पहला, उससे पिछली अवस्था यानी बाल्यावस्था में बालकों की समस्याओं का समाधान अंशतः शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा कर दिया जाता था। अतः, वे समस्याओं के समाधान के तरीकों से अनभिज्ञ होते हैं। फलतः, वे किशोरावस्था की अधिकतर समस्याओं का समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाते। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि किशोर प्रायः अपनी समस्या का समाधान करने का भरपूर प्रयास करते हैं जिसमें प्रायः उन्हें असफलता ही हाथ लगती है, क्योंकि सचमुच इन समस्याओं का सही ढंग से समाधान करने

की क्षमता तो उनमें होती नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति समस्या से घिरा रहता है।

5. **किशोरावस्था विशिष्टता की खोज का समय होता है-**किशोरावस्था में किशोरों में अपने साथियों के समूह से थोड़ी विशिष्ट एवं अलग पदवी बनाए रखने की प्रवृत्ति देखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण वे अपने साथियों से भिन्न ढंग का ड्रेस पहनने तथा नए ढंग के साइकिल या स्कूटर आदि का प्रयोग करने पर अधिक बल डालते हैं। इसे इरिक्सन (1964) ने 'अहम पहचान की समस्या' कहा है।
6. **अवास्तविकताओं का समय -**किशोरावस्था में अक्सर व्यक्ति ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ करता है जिनका वास्तविकता से कम मतलब होता है। वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में वैसा ही सोचते है जैसा कि वे सोचना पसंद करते हैं न कि जैसी वास्तविकता होती है। इस तरह की अवास्तविक आकांक्षाओं से किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है। रसियन (1975) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि किशोरों में जितनी ही अधिक अवास्तविक आकांक्षाएँ होती हैं, उतनी ही उनमें अधिक कुंठा तथा क्रोध, विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक होती है जब वे यह समझते हैं कि वे उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाए जिस पर वे पहुँचना चाहते थे।

7. **वयस्कावस्था की दहलीज होती है-**किशोरावस्था एक तरह से वयस्कावस्था की दहलीज होती है क्योंकि इस अवस्था के समाप्त होते-होते, अर्थात 19 साल की अवस्था में किशोरों के मन में यह बात बैठ जाती है कि अब वे वयस्क हो गए हैं और उन्हें अब वयस्कता से संबंधित व्यवहार करने चाहिए। शायद यही कारण है कि वे इस उम्र में धूम्रपान, मंदिरापान, औषधि सेवन, यौन क्रियाओं आदि में स्वतंत्र रूप से भाग लेने लगते हैं।

प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था का प्रसार 20 से 40 वर्ष तक समझा जाता है। इस अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। व्यक्ति इसी अवस्था में बड़ी-बड़ी उपलब्धियों की ओर दत्तचित्त होता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकने में सफल हो। अन्य अवस्थाओं

की भाँति प्रौढ़ावस्था में भी समायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन तथा व्यवसाय के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें अपने बाल्यकाल में माँ-बाप का अनावश्यक संरक्षण मिला होता है वे इस अवस्था में जल्दी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते और फलस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक समायोजन ठीक न होने से प्रायः कुछ समाजों में तलाक की घटनाएँ देखने को मिलती है। व्यक्ति को अपने व्यवसाय में सफल और संतुष्ट होने के लिए उसकी उपलब्धियाँ ही नहीं वरन् समुचित समायोजन की क्षमता भी आवश्यक होती हैं।

मध्यावस्था

मध्यावस्था 41 से 60 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं मध्यावस्था के प्रारम्भ में ही सामान्य स्त्री-पुरूषों के भीतर संतान उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त सी हो जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति के भीतर ह्रास से लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति की रूचियाँ भी बदलने लगती हैं वह पहले से अधिक गंभीर और यथार्थवादी हो जाता है और उसकी धार्मिक निष्ठाओं में भी दृढ़ता आने लगती है। धनार्ज्रन के प्रति भी व्यक्ति अब प्रायः कम उत्सुक देखा जाता है। इस अवस्था में एक सामान्य कोटि का व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रतिष्ठा का अधिक इच्छुक हो जाता है। जहाँ तक समायोजन का प्रश्न है, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपने व्यवसाय से प्रायः संतुष्ट हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी उसकी मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ हो जाती है। परन्तु उसे अपने पुत्र-पुत्रियों के विचारों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना जरूरी हो जाता है। जिन व्यक्तियों का समायोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ अच्छा होता है उन्हें मध्यावस्था और वृद्धावस्था में अभूतपूर्व मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद समझा जाता है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास इस अवस्था में बड़ी ही तीव्र गति से होता है। शारीरिक शक्ति, कार्य क्षमता तथ प्रतिक्रिया की

गति में काफी मंदता आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही घोर मानसिक परिवर्तन भी इस अवस्था में घटित होते हैं। वृद्धजनों की रूचियों और मनोवृत्तियों में महत्त्व पूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का भी बड़ी तेजी से लोप होने लगता है वृद्धजनों की रूचियाँ संख्या में घटकर कम हो जाती हैं और उनके लिए उच्चकोटि की उपलब्धियाँ असंभव हो जाती हैं। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मंदता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्नस्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है और फलस्वरूप अनेक वृद्धजन बालकालीन आचरण का प्रदर्शन करने लगते हैं। वृद्धावस्था में व्यक्ति का सामाजिक सम्पर्क घट जाता है और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाता। व्यावसायिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद वृद्ध व्यक्ति ऐसा समझने लगता है मानो वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। अनेक वृद्धजनों के मत में यह धारणा कर लेती है कि समाज और परिवार में अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अतः बुढ़ापे में एक प्रकार की उदासीनता का भाव विकसित होने लगता है। परन्तु जिन वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति जितनी उत्तम होती है और अपने को समाज और परिवार के लिए जितना अधिक उपयोगी समझते हैं उन्हें उतनी ही अधिक प्रसन्नता और मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

विकास के स्वरूप तथा विकास की उपर्युक्त प्रमुख अवस्थाओं का समुचित ज्ञान होना तीन दृष्टियों से आवश्यक है। विकासात्मक अवस्थाओं का ज्ञान होने से हमें यह पता रहता हैं कि बालक के भीतर विभिन्न आयु-स्तर पर किस प्रकार के परिवर्तन दिखलाई पड़ेंगे। साथ ही हम यह भी जान पाते हैं कि कोई शारीरिक अथवा मानसिक गुण किस अवस्था में पहुँचकर परिपक्व होगा। अतः हम उसके समुचित विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं ताकि उस गुण-विशेष का विकास सुन्दर से सुन्दर ढंग से हो सके। विकास के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं के ज्ञान का एक दूसरा लाभ यह है कि इस ज्ञान के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किस बालक का विकास सामान्य ढंग से चल रहा है और किस बालक का विकास सामान्य ढंग से। ऐसा निश्चित करना इसलिये सम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी बालकों के विकास की प्रणाली समान ही होती है। यदि किसी बालक का विकास सामान्य ढंग से नहीं चलता तो उस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जा सकती है । अन्त में, बालकों को विभिन्न प्रकार का निर्देशन देना भी तभी

सम्भव हो पाता है जब हमें उनके विकास की विशेषताओं की जानकारी हो। किसी अवस्था-विशेष में पहुँच कर बालक के भीतर जिन शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का उदय एवं विकास होता है उन्हीं को दृष्अि में रखते हुए उन्हें व्यक्तिगत, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन दिया जा सकता है। अतः बालकों के पालन-पोषण, उन्हें समझने तथा उन्हें निर्देशन देने की दृष्टियों से विकास तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का समुचित ज्ञान प्रत्येक माता-पिता, संरक्षक और शिक्षक के लिए श्रेयस्कर होता है।

4.6 वृद्दि तथा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- वंशानुक्रम
- वातावरण
- पारिवारिक स्थिति
- गर्भावस्था में माता का भोजन
- जन्म के समय माता का स्वास्थ्य
- जन्म के बाद माता एवं शिशु की देखभाल
- शारीरिक दोष
- विश्राम तथा निद्रा
- खेलकूद
- प्रेम तथा सहानुभूति
- एकल शिशु

4.7 सारांश

वृद्दि एवं विकास शब्द आपस में समानार्थी लगते हैं परन्तु इनमें व्यापक अंतर पाया जाता हैं एक और जहाँ वृद्दि का समबन्ध आकर के बढ़ने से है वहीं विकास का अर्थ मस्तिष्क एवं ज्ञानेन्द्रियों का कुशलता पूर्वक सञ्चालन से है। बालक के जन्म लेते ही उसमें शारीरिक रूप से वृद्दि होने लगती है बच्चे का शरीर सर से पाँव की और बढ़ता रहता है और उसके भार में भी लगातार वृद्दि होते रहती है शरीर में उपस्थित हड्डियों की लमाबाई एवं भार में वृद्दि होते रहती है जो आयु के एक पढाव पर रुक जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वृद्दि जीवन भर नहीं होती है जबकि विकास का क्रम जीवन के अंतिम दिन तक चलता रहता है। एक और जहाँ वृद्दि में परिमाणात्मक बदलाव देखा जा सकता है वहीं दूसरी ओर विकास में गुणात्मक बदलाव देखा जा सकता है। बालक अपने माता पिता से आनुवंशिकी से बहुत कुछ ले कर जन्म लेता है जो उसके शरीर के आकार और मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है यही कारण है कि किसी बच्चे के भविष्य की तस्वीर उसके माता पिता की वर्तमान शारीरिक स्थिति के अनुरूप बनायी जा सकती है कि वह बच्चा भविष्य में किस प्रकार दिखाई देगा। आनुवंशिकी के अतिरिक्त वातावरण भी एक आधार है जो वृद्दि एवं विकास में अहम् भूमिका अदा करता है। कुछ कारक भी हैं जो वृद्दि एवं विकास को प्रभावित करते हैं जो आप प्रस्तुत इकाई में पढ़ चुके हैं।

4.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- https://hi.wikipedia.org/wiki
- मंगल एस.के.(2010). एडवांस्ड एजुकेशनल साइकोलोजी पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू देहली।
- मंगल एस.के.(2011). शिक्षा मनोविज्ञान पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू देहली।
- पाठक पी.डी.(2012). शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
- गुप्ता एस.पी. (2014).उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1-मानव वृद्दि एवं विकास में अंतर स्पष्ट कीजिए। वृद्दि एवं विकास के सिद्दांतों का वर्णन कीजिए।

2- विकास की अवस्थाओं को विस्तार पूर्वक समझाइए।

3-वृद्दि एवं विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए।

4- किशोरावस्था को परिभाषित करते हुए इस अवस्था में बालकों में होने वाले परिवर्तनों को विस्तार पूर्वक लिखिए ।

5- मानव विकास की कौन सि अवस्था आपको रुचिकर लगती है कारण सहित विस्तार पूर्वक लिखिए।

इकाई–5 मानव विकास की अवस्थायें
Stages of Human Development

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मानव विकास की अवस्थाएं
5.4 अवस्था विशेष की विशेषताएं
5.5 अवस्था विशेष के विकासात्मक कार्य
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्न
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने मानव विकास एवं वृद्धि का अध्ययन किया तथा मानव विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के संबन्ध में जानकारी प्राप्त की।

प्रस्तुत इकाई में आप मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं एवं उस अवस्था विशेष में सम्पादित विकासात्मक कार्यो का अध्ययन कर सकेंगे।इस इकाई के अध्ययन से आपको मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं को जानने-समझने तथा उनकी विशेषताओं एवं विकासात्मक कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त करने की पर्याप्त सामग्री मिल पायेगी।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1. मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर समझ सकेंगे।
2. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को रेखांकित कर सकेंगे।
3. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।

5.3 मानव विकास की अवस्थायें

मनुष्य के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में बाँटा गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि गर्भकाल और परिपक्वता के बीच की प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई पड़ने लगती है। विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है गर्भाधान से मृत्यु तक का विकासात्मक अवस्थाओं को निम्नलिखित आठ भागों में बाँटा जा सकता है-

	विकास की अवस्था	**जीवन अवधि**
1	गर्भकालीन अवस्था या गर्भावस्था	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2	शिशुकाल या शैशवावस्था	जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था
3.	बाल्यकाल या बाल्यावस्था c) पूर्व- बाल्यावस्था d) उत्तर - बाल्यावस्था	5 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक 6 वर्ष से 6 वर्ष तक 7 वर्ष से 12 वर्ष तक
4	किशोरावस्था	13 से 19 वर्ष तक
5.	युवावस्था	20 से 25 वर्ष तक
6.	प्रौढ़ावस्था	26 से 60 वर्ष तक
7.	वृद्धावस्था- जीवन की अंतिम अवस्था होती है	इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद

गर्भकालीन अवस्था

यह अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म के पहले की अवस्था है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इसमें विकास की गति अधिक तीव्र होती है। किन्तु जो परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं वे विशेष रूप से शारीरिक होते हैं। समस्त शरीर-रचना, भार, आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था की घटनायें होती हैं।

सम्पूर्ण गर्भकालीन विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। गर्भाधान से लेकर दो सप्ताह की अवस्था, इस अवस्था में प्राणी अंडे के आकार का होता है। इस अंडे में भीतर तो कोष्ठ-विभाजन की क्रिया होती रहती है परन्तु ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव गर्भाशय में तैरता रहता है जिसके कारण इसे कोई विशेष पोषाहार नहीं मिल पाता। परन्तु दस दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से सट जाता है और माता के शरीर पर भोजन के लिए आश्रित हो जाता है। तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे महीने के अन्त तक गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था होती है जिसे भ्रूणावस्था कहा जाता है। इस अवस्था के जीव को भ्रूण कहते हैं। विकास की गति बहुत तीव्र होने के कारण इस अवस्था में भ्रूण के भीतर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। शरीर के प्रायः सभी मुख्य अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे महीने के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा उसका भार लगभग दो ग्राम हो जाता है। परन्तु भ्रूण का स्वरूप वैसा नहीं होता जैसा नवजात शिशु का होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपाव में बहुत बड़ा होता है। इस

अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। कान भी सिर से काफी नीचे स्थित होते हैं नाक में भी केवल एक ही छिद्र होता है और माथे की चौड़ाई आवश्यकता से अधिक होती है। भ्रूण का निर्माण तीन परतों से होता है। बाहरी परत को एक्टोडर्म, बीच वाली परत को मेसोडर्म और आन्तरिक परत को एण्डोडर्म कहा जाता है। इन्हीं तीन परतों से शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत से त्वचा, नाखून, दाँत, बाल तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है। इनमें से मस्तिष्क का विकास तो बड़ी तेजी से होता है। चार सप्ताह की अवस्था में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को पहिचाना जा सकता है। बीच की परत से त्वचा की भीतरी परत तथा मांस-पेशियों का निर्माण होता है। इसी प्रकार आन्तरिक परत से फेफड़े, यकृत, पाचन क्रिया से सम्बन्धित अंग तथा विभिन्न ग्रन्थियाँ बनती है।

गर्भकालीन विकास की तीसरी और अन्तिम अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कही जाती है। यह तीसरे महीने के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक की अवस्था होती है। इस अवस्था को निर्माण की अवस्था नहीं बल्कि विकास की अवस्था समझना चाहिए, क्योंकि भ्रूणावस्था में जिन-जिन अंगों का निर्माण हो गया होता है उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के आकार तथा भार में वृद्धि होती रहती है। पाँच महीने में इसका भार दस औंस तथा लम्बाई दस इंच होती है। आठवें महीने में शिशु वजन में पाँच पौंड का हो जाता है और लम्बाई अट्ठारह इंच तक हो जाती है। जन्म के समय शिशु का भार सात-साढ़े-सात पौंड तथा लम्बाई बीस इंच होती है। इस अवस्था में हृदय, फेफड़े, नाड़ी, मण्डल कार्य भी करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि सातवें महीने में ही बच्चा पैदा हो जाय तो वह जीवित रह सकने योग्य होगा।

शैशवावस्था

जन्म से लेकर तीन वर्षो की अवस्था को शैशव की अवस्था कहा जाता है। इस आयु के बालक को नवजात शिशु भी कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चलता है कि इस अवस्था में बालक के भीतर कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। जन्म लेने के बाद जिस नये वातावरण में बालक अपने को पाता है उसे समझना और उसमें अपने को समायोजित करना उसके लिये आवश्यक होता है। अतः इस अवस्था में समायोजन की प्रक्रिया के अतिरिक्त बालक के भीतर किसी विशेष मानसिक या शारीरिक विकास के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते।

बाल्यावस्था

जैसा पहले अध्याय में बताया जा चुका है, विकासात्मक मनोविज्ञान में 'बाल्यावस्था' का प्रयोग प्रायः उसके व्यापक अर्थ में किया जाता है। व्यापक अर्थ में बाल्यावस्था गर्भकाल से परिपक्वता तक के जीवन-प्रसार को कहा जाता है। परन्तु जब हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हैं तो 'बाल्यावस्था' का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही होता है। उस सन्दर्भ में बाल्यावस्था अन्य अवस्थाओं की भाँति विकास की एक विशेष अवस्था समझी जाती है जिसमें कुछ प्रमुख मानसिक और शारीरिक विशेषताएँ आविर्भूत होती हैं।

अपने संकुचित अर्थ में बाल्यावस्था तीन से बारह वर्ष की अवस्था होती है। परंतु अध्ययन की सुविधा के लिए इस लम्बी अवस्था को पूर्व-बाल्यावस्था सात से बारह वर्ष तक मानी जाती है। निरन्तर वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण इस अवस्था में बालक उससे भली-भाँति परिचित हो जाता है और उस पर यथासम्भव नियन्त्रण करने लगता है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए वह नित्य प्रयास करता रहता है। इस प्रकार का समायोजन स्थापित करना ही बाल्यावस्था की प्रमुख समस्या होती है और इस प्रक्रिया में उसकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर

कार्य करती है। समूह-प्रवृत्ति इस अवस्था की एक दूसरी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक के भीतर सामाजिक भावनाओं का विकास प्रारम्भ होता है और घर के भीतर की सीमित वातावरण से ऊबकर वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है।

सामूहिक परिस्थितियों में पढ़कर बालक में अनुकरण, खेल, सहानुभूति तथा निर्देशग्राहकता का विकास होने लगता है। उसकी अधिकांश नैतिकता समूह द्वारा ही नियंत्रित और निर्देशित होती है। परन्तु अभी उससे उच्च नैतिक आचरण और आदर्श नैतिक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ तक बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास का प्रश्न है, बालक के भीतर सहयोग, सहानुभूति और नेवृत्व की भावनाओं के साथ ही अवज्ञा, स्पर्धा, आक्रामकता तथा द्वन्द्व आदि का विकास शीघ्रता से होने लगता है। यह सारी बातें बालक के सामाजिक समायोजन तथा उसके मस्तिष्क के उचित विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में पड़कर वह आत्मनिर्भर होना सीखता है। परन्तु द्वन्द्व और आक्रामकता के विकास के बावजूद भी किशोरावस्था की तुलना में बाल्यावस्था स्थिरता और शांति की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में बालक घर के भीतर के संकुचित वातावरण से निकलकर पाठशाला और मित्रमण्डली में समय व्यतीत करता है। अतः उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं को भली- भाँति समझने का अवसर मिलता है। वह कठोरताओं और अभावों को चुपचाप सहन कर लेता है, किशोरों की भाँति क्रांतिकारी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करता।

वयःसन्धि

वयःसन्धि वास्तव में बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने वाली अवस्था मानी गयी है। यद्यपि इस अवस्था का विस्तार बहुत छोटा होता है फिर भी इसका कुछ भाग बाल्यावस्था में और कुछ किशोरावस्था में पड़ जाता है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता काम-शक्ति का प्रथम उदय और तत्संबंधी इन्द्रियों की परिपक्वता मानी जाती है। चूँकि यौन-भिन्नता और व्यक्तिगत भिन्नता के कारण काम-शक्ति का प्रथम उदय और जनेन्द्रिय की परिपक्वता भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग आयु में पायी जाती है, इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वयःसन्धि किस वर्ष से शुरू होती है। बालिकाओं में यह अवस्था सामान्यतः ग्यारह से तेरह वर्षो के बीच शुरू होती है। बालकों में इसके एक वर्ष बाद। इस अवस्था में होने वाले यौन-सम्बन्धी विकासों के कारण बालक अपने संवेगात्मक और सामाजिक नियन्त्रण को प्रायः खो बैठता है। अन्य शारीरिक और मानसिक विकासों की गति इस अवस्था में बड़ी तीव्र होती है।

किशोरावस्था

किशोरावस्था बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है। सम्पूर्ण बाल-विकास में इस अवस्था का बहुत ही महत्व समझा जाता है। इस अवस्था का सविस्तार उल्लेख एक अलग अध्याय में किया गया है। अतः यहाँ केवल दो शब्दों में इसका संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। यह अवस्था प्रायः तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है। इसके बाद परिपक्वता का प्रारम्भ होता है।

किशोरावस्था जीवन की सुनहली अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था की अनेक विशेषतायें होती हैं जिनमें दो प्रमुख हैं- सामाजिकता और कामुकता। इन्हीं से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था कई दृष्टियों से शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल से भरी होती है। इसे शैशव की पुनरावृत्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में बाल्यावस्था की स्थिरता और शांति नहीं दिखलाई पड़ती। स्वभाव से भावुक होने के कारण किशोर बालक

न तो अपना शारीरिकऔर न ही मानसिक समायोजन उचित रूप से स्थापित कर पाता है। अतः शिशु की ही भाँति उसे वातावरण के साथ अपना नवीन समायोजन प्रारम्भ करना पड़ता है।

किशोरावस्था कामुकता के जागरण, संवेगात्मक अस्थिरता, विकसित सामाजिकता, कल्पना-बाहुल्य तथा समस्या-बाहुल्य की अवस्था मानी जाती है। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति और जोश से भर जाते हैं और संसार की प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक नया अर्थ दिखलायी पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किशोरावस्था में प्रविष्ट होकर बालक एक नया जीवन ग्रहण करता है। परन्तु सत्य यह है कि किशोर बालक-बालिकाओं की इन अद्भुत उमंगों के पीछे उनकी यौन-परिपक्वता कार्य करती है। कामेच्छा जाग्रत हो जाने के कारण किशोरों को यह अवस्था बड़ी प्रिय और आनन्दमयी लगने लगती है। इसीलिए कोई किशोरावस्था को अपने जीवन की सुनहली अवस्था कहकर पुकारता है और कोई उसे अपने जीवन का बसन्त समझता है।

युवावस्था

सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में विगत 50-60 वर्षों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अवधि में वृद्धि हुई है। इन दोनों के मध्य की अवस्था को 'युवावस्था' का नाम दिया गया है। 20 वर्ष से 25-26 वर्ष तक की इस अवस्था में अयक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करने अथवा रोजगार के अवसरों की तलाश में रहता है। इस वर्ग के व्यक्तियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। वर्तमान में भारतवर्ष में पुरुषों के लिए इस अवस्था के औसत आयु 26 वर्ष तथा महिलाओं की औसत आयु 22 वर्ष है। रोजगार के अवसर त्वरित गति से सभी के लिए उपलब्ध नहीं है। सम्यक रोजगार प्राप्त होने अथवा विवाह हो जाने तक के 20 से 25-26 वर्ष के व्यक्ति 'युवावस्था'के अंतर्गत समझे जाते हैं।

प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था का प्रसार 26 से 40 वर्ष तक समझा जाता है। इस अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। व्यक्ति इसी अवस्था में बड़ी-बड़ी उपलब्धियों की ओर दत्तचित्त होता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकने में सफल हो। अन्य अवस्थाओं की भाँति प्रौढ़ावस्था में भी समायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन तथा व्यवसाय के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें अपने बाल्यकाल में माँ-बाप का अनावश्यक संरक्षण मिला होता है वे इस अवस्था में जल्दी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते और फलस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक समायोजन ठीक न होने से प्रायः कुछ समाजों में तलाक की घटनाएँ देखने को मिलती है। व्यक्ति को अपने व्यवसाय में सफल और संतुष्ट होने के लिए उसकी उपलब्धियाँ ही नहीं वरन् समुचित समायोजन की क्षमता भी आवश्यक होती हैं।

मध्यावस्था

मध्यावस्था 41 से 60 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं मध्यावस्था के प्रारम्भ में ही सामान्य स्त्री-पुरूषों के भीतर संतान उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त सी हो जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति के भीतर ह्रास से लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति की रूचियाँ भी बदलने लगती हैं वह पहले से अधिक गंभीर और यथार्थवादी हो जाता है और उसकी धार्मिक निष्ठाओं में भी दृढ़ता आने

लगती है। धनाज्रन के प्रति भी व्यक्ति अब प्रायः कम उत्सुक देखा जाता है। इस अवस्था में एक सामान्य कोटि का व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रतिष्ठा का अधिक इच्छुक हो जाता है। जहाँ तक समायोजन का प्रश्न है, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपने व्यवसाय से प्रायः संतुष्ट हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी उसकी मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ हो जाती है। परन्तु उसे अपने पुत्र-पुत्रियों के विचारों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना जरूरी हो जाता है। जिन व्यक्तियों का समायोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ अच्छा होता है उन्हें मध्यावस्था और वृद्धावस्था में अभूतपूर्व मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद समझा जाता है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास इस अवस्था में बड़ी ही तीव्र गति से होता है। शारीरिक शक्ति, कार्य क्षमता तथ प्रतिक्रिया की गति में काफी मंदता आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही घोर मानसिक परिवर्तन भी इस अवस्था में घटित होते हैं। वृद्धजनों की रूचियों और मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का भी बड़ी तेजी से लोप होने लगता है वृद्धजनों की रूचियाँ संख्या में घटकर कम हो जाती हैं और उनके लिए उच्चकोटि की उपलब्धियाँ असंभव हो जाती हैं। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मंदता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्नस्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है और फलस्वरूप अनेक वृद्धजन बालकालीन आचरण का प्रदर्शन करने लगते हैं। वृद्धावस्था में व्यक्ति का का सामाजिक सम्पर्क घट जाता है और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाता। व्यावसायिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद वृद्ध व्यक्ति ऐसा समझने लगता है मानो वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। अनेक वृद्धजनों के मत में यह धारणा कर लेती है कि समाज और परिवार में अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अतः बुढ़ापे में एक प्रकार की उदासीनता का भाव विकसित होने लगता है। परन्तु जिन वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति जितनी उत्तम होती है और अपने को समाज और परिवार के लिए जितना अधिक उपयोगी समझते हैं उन्हें उतनी ही अधिक प्रसन्नता और मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

विकास के स्वरूप तथा विकास की उपर्युक्त प्रमुख अवस्थाओं का समुचित ज्ञान होना तीन दृष्टियों से आवश्यक है। विकासात्मक अवस्थाओं का ज्ञान होने से हमें यह पता रहता हैं कि बालक के भीतर विभिन्न आयु-स्तर पर किस प्रकार के परिवर्तन दिखलाई पड़ेंगे। साथ ही हम यह भी जान पाते हैं कि कोई शारीरिक अथवा मानसिक गुण किस अवस्था में पहुँचकर परिपक्व होगा। अतः हम उसके समुचित विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं ताकि उस गुण-विशेष का विकास सुन्दर से सुन्दर ढंग से हो सके। विकास के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं के ज्ञान का एक दूसरा लाभ यह है कि इस ज्ञान के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किस बालक का विकास सामान्य ढंग से चल रहा है और किस बालक का विकास सामान्य ढंग से। ऐसा निश्चित करना इसलिये सम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी बालकों के विकास की प्रणाली समान ही होती है। यदि किसी बालक का विकास सामान्य ढंग से नहीं चलता तो उस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जा सकती है। अन्त में, बालकों को विभिन्न प्रकार का निर्देशन देना भी तभी सम्भव हो पाता है जब हमें उनके विकास की विशेषताओं की जानकारी हो। किसी अवस्था-विशेष में पहुँच कर बालक के भीतर जिन शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का उदय एवं विकास होता है उन्हीं को दृष्अि में रखते हुए उन्हें व्यक्तिगत, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन दिया जा सकता है। अतः बालकों के पालन-पोषण, उन्हें समझने

तथा उन्हें निर्देशन देने की दृष्टियों से विकास तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का वमुचित ज्ञान प्रत्येक माता-पिता, संरक्षक और शिक्षक के लिए श्रेयस्कर होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. जन्म से लेकर तीन वर्षों की अवस्था को ____________ कहा जाता है।
2. मानव विकास की वह अवस्था जो 12-13 वर्ष से लेकर 19-20 वर्ष तक रहती है.................. कहताली है। (बाल्यावस्था,युवावस्था,किशोरावस्था)
3. ____________ वास्तव में बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने वाली अवस्था मानी गयी है।
4. ____________ बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है।
5. 20 वर्ष से 25-26 वर्ष तक की इस अवस्था को कहा ____________ जाता है।
6. ____________ का प्रसार 26 से 40 वर्ष तक समझा जाता है।
7. प्रौढ़ावस्था अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। (सत्य/असत्य)
8. ____________ जीवन की अंतिम अवस्था होती है।

5.4 अवस्था विशेष की विशेषताएं

यदि हम विकासात्मक अवस्थाओं को शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में देख तो पाते है कि बाल्यावस्था और किशोरावस्था का शिक्षा ग्रहण करने का ख्याल से विशेष महत्व है। इन दोनों ही अवस्थाओं को पुनः पूर्व एवं उत्तर अवस्था के उपभागों में बाँटा गया है। इस प्रकार शिक्षा के दृष्टिकोण से ये अवस्थाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहाँ इन विकासात्मक अवस्थाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

पूर्व बाल्यावस्था

इसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, अवगमात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास, तथा सांवेगिक विकास होते देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राक्-टोली अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

1. **बाल्यावस्था एक समस्या अवस्था होती है-**इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चे एक विशिष्ट व्यक्तित्व विकसित करते हैं और स्वतंत्र रूप से कोई कार्य करने पर अधिक बल डालते हैं। इसके अलावा इस उम्र के बच्चे अधिक जिद्दी, झक्की, विरोधात्मक, निषेधवादक तथा बेकहा होते हैं। इन व्यवहारात्मक समस्याओं के कारण अधिकतर माता-पिता इस अवस्था को 'समस्या अवस्था' कहते हैं।
2. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की अभिरूचि खिलौनों में अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करते हैं। बुरनर (1975), हेरोन (1971) एवं काज, (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि इस अवस्था में बच्चों में खिलौनों से खेलने की अभिरूचि अधिकतम होती है

और जब बच्चे स्कूल अवस्था में प्रवेश करने लगते हैं अर्थात वे 6 साल का होने को होते हैं तो उनकी यह अभिरूचि समाप्त हो जाती है।

3. **पूर्व बाल्यावस्था को शिक्षकों द्वारा तैयारी का समय बताया गया है-**इस अवस्था को शिक्षकों ने प्राक्स्कूली अवस्था कहा है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चों को किसी स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए दाखिला नहीं कराया जाता है। लेकिन, कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें प्राक्स्कूल कहा जाता है जिनमें बच्चों को रखकर कुछ अनौपचारिक ढंग से या खेल के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। नर्सरी स्कूल ऐसे स्कूलों के अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन, कुछ बच्चे ऐसे नर्सरी स्कूल में न जाकर माता-पिता से घर पर ही कुछ शिक्षा पाते हैं। शिक्षकों का कहना है कि चाहे बच्चे किसी नर्सरी स्कूल में अनौपचारिक शिक्षा पा रहे हों या घर में माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, वे अपने-आपको इस ढंग से तैयार करते हैं कि स्कूल अवस्था प्रारंभ होने पर उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो।
4. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में उत्सुकता अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चों में अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, चाहे वे जीवित हों या अजीवित, के बारे में जानने की उत्सुकता काफी अधिक रहती है। वे हमेशा यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनके वातावरण में उपस्थित ये सब वस्तुएँ किस प्रकार की है, वे कैसे कार्य करती हैं, वे कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं आदि-आदि। शायद यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व बाल्यावस्था को अन्वेषणात्मक अवस्था कहा है।
5. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है-**इस अवस्था के बच्चों में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य वयस्कों के व्यवहारों तथा उनके बोलने-चालने के तौर-तरीकों का नकल उतारने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चेरी तथा लेविस (1991) का मत है कि इस अवस्था के जिन बच्चों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है उन बच्चों में किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में आने पर सुझाव ग्रहणशीलता का शीलगुण तेजी से विकसित होता है।

उत्तर बाल्यावस्था

उत्तर बाल्यावस्था 7 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक की होती है तथा बालकों में 7 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक की होती है। यह वह अवस्था होती है जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं। इस अवस्था को माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिखाई गई विशेषताओं के आधार पर कई तरह के नाम भी दिए गए हैं। जैसे माता-पिता द्वारा इस अवस्था को उत्पाती अवस्था कहा गया है (क्योंकि अक्सर बच्चे माता-पिता की बात न मानकर अपने साथियों की बात अधिक मानते हैं), शिक्षकों ने इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना प्रारंभ कर देते हैं) मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को गिरोह अवस्था या ''गैंग एज'' कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है)। इस अवस्था में भी बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है जिनका ज्ञान होने से शिक्षक आसानी से बालकों का मार्गदर्शन कर पाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **उत्तर बाल्यावस्था को माता-पिता द्वारा एक उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है-**इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं और उन पर अपने संगी-साथियों का गहरा प्रभाव पड़ना भी प्रारंभ हो जाता है। वे माता-पिता की बात को कम महत्व देते हैं जिसके कारण उन्हें डाँट-फटकार भी मिलती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते हैं जिससे माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही काफी परेशान रहते हैं।
2. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है**-उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में आपस में लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह बात वहाँ पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है जहाँ परिवार में भाई-बहनों की संख्या अधिक होती है। छोटी-छोटी बात को लेकर एक-दूसरे पर आरोप थोपते हैं, गाली-गलौच करते हैं और शारीरिक रूप से आघात करने में भी पीछे नहीं रहते।
3. **शिक्षकों द्वारा उत्तर बाल्यावस्था को प्रारंभिक स्कूली अवस्था कहा जाता है-**शिक्षकों ने इस बात पर बल डाला है कि यह वह अवस्था होती है, जिसमें छात्र उन चीजों को सीखते हैं जिनसे उन्हें वयस्क जिंदगी में सफल समायोजन करने में मद्द मिलती है। इस अवस्था में छात्र पाठ्यक्रम से संबद्ध कौशल तथा पाठ्यक्रम कौशल दोनों को ही सीखकर अपना भविष्य उज्जवल करने की नींव डालते हैं। कुछ शिक्षकों ने इस अवस्था को नाज़ुक अवस्था भी कहा है, क्योंकि इस उम्र में उपलब्धि-प्रेरक की भी नींव पड़ती है। बालकों में उच्च उपलब्धि-प्रेरणा, निम्न उपलब्धि-प्रेरणा, या साधारण उपलब्धि-प्रेरणा की आदत बनती है। एक बार जिस प्रकार की आदत बन जाती है, वही आदत किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में भी बनी रहती है। कागन (1977) तथा ह्वाईटमैन (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस बात की पुष्टि की है कि उत्तर अवस्था में दिखाए गए उपलब्धि-स्तर तथा वयस्कता में प्राप्त किए गए उपलब्धि-स्तर में अधिक सह-संबंध पाया जाता है जो अपने-आपमें इस बात का द्योतक है कि उत्तर बाल्यावस्था का उपलब्धि-स्तर बहुत हद तक वयस्क के उपलब्धि-स्तर का एक तरह का निर्धारक होता है।
4. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चा अपनी ही उम्र के साथियों के समूह द्वारा स्वीकृति पाने के लिए काफी लालायित रहता है-**इस अवस्था की एक विशेषता यह भी बताई गई है कि इस उम्र के बच्चे अपने साथियों के समूह में इतना अधिक खो जाते हैं कि उनके बोलने-चालने का ढंग, कपड़ा पहनने का ढंग, खाने-पीने की चीजों की पसंद आदि सभी इस समूह के अनुकूल हो जाता है। बच्चे ऐसे तौर-तरीकों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि इस ढंग का तौर-तरीका उनके परिवार तथा स्कूल के तौर-तरीकों से परस्पर विरोधी हैं।
5. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में सर्जनात्मक क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव होता है-**इस उम्र के बच्चों में अपनी शक्ति तथा बुद्धि को नई चीजों में लगाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे अक्सर नए ढंग की चित्रकारी तथा शिल्पकारी करते पाए जाते हैं और उससे उनमें एक तरह से सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे सुसमैन (1988) का मत है कि हालाँकि इस ढंग की सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का बीज प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही बो दिया जाता है, इसका पूर्ण विकास तब तक नहीं होता है जब तक कि बच्चे की उम्र 10-12 साल की नहीं हो जाती है।

किशोरावस्था

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्वपूर्ण अवस्था बताया है और अधिकतर शिक्षक इस बात से सहमत है कि उन्हें अपने शिक्षण कार्यो में सबसे अधिक चुनौती इस अवस्था के शिक्षार्थियों से प्राप्त होती है। किशोरावस्था 13 साल की उम्र से प्रारंभ होकर 19-20 साल तक की होती है और इस तरह से इस अवधि में तरूणावस्था या प्राक्किशोरावस्था, प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही सम्मिलित हो जाते हैं। इस किशोरावस्था में भी किशोरों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित है-

1. **किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण अवस्थाहै**-किशोरावस्था को हर तरह से एक महत्वपूर्ण अवस्था माना गया है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालीन प्रभाव दोनों की देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्अ रूप से उभरकर सामने आते हैं। अपने तीव्र शारीरिक विकास के कारण ही इस अवस्था में किशोर अपने-आपको वयस्क से किसी तरह से कम नहीं समझता तथा जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है, तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने-आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, मूल्य तथा अभिरूचि विकसित करने में सक्षम हो पाता है।
2. **किशोरावस्था एक परिवर्ती अवस्था होती है**-किशोरावस्था सचमुच में बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों को बाल्यावस्था की आदतों का परित्याग करके उसकी जगह नई आदतों, जो अधिक परिपक्व तथा सामाजिक होती है, को सीखना होता है। इस दिशा में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग में उचित दिशानिर्देश प्रदान कर उन्हें एक परिपक्व तथा सामाजिक मनोवृत्ति कायम करने में मद्द करते हैं जो किशोरों को एक स्वस्थ समयोजन में काफी सहायक सिद्ध होती है।
3. **किशोरावस्था में एक अस्पष्ट वैयक्तिक स्थिति होती है**-इस अवस्था में किशोरों की वैयक्तिक स्थिति अस्पष्अ होती है और उसे स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली सामाजिक भूमिका के बारे में संभ्रांति होती है। सचमुच एक किशोर अपने-आपको न तो बच्चा समझता है और न ही पूर्ण वयस्क। जब वह एक बच्चा के समान व्यवहार करता है तो उसे तुरन्त कहा जाता है कि उसे ठीक ढंग से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह अब बच्चा नहीं रह गया है। जब वह वयस्क के रूप में व्यवहार करता है तो उससे कहा जाता है कि वह अपनी उम्र से आगे बढ़कर नहीं व्यवहार करे, क्योंकि यह अच्छा नहीं लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि किशोरों में अपने द्वारा की जाने वाली वैयक्तिक भूमिका के बारे में संभ्रांति मौजूद रहती है। इरिक्सन (1964) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ‘‘जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?’’
4. **किशोरावस्था एक समस्या उम्र होती है**-ऐसे तो हर अवस्था की अपनी समस्याएँ होती है, परन्तु किशोरावस्था की समस्या लड़कों तथा लड़कियों, दोनों के लिए ही अधिक गंभीर होती है। इसके मुख्य दो कारण बताए गए है। पहला, उससे पिछली अवस्था यानी बाल्यावस्था में बालकों की समस्याओं का समाधान अंशतः शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा कर दिया जाता था। अतः, वे समस्याओं के समाधान के तरीकों से

अनभिज्ञ होते हैं। फलतः, वे किशोरावस्था की अधिकतर समस्याओं का समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाते। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि किशोर प्रायः अपनी समस्या का समाधान करने का भरपूर प्रयास करते हैं जिसमें प्रायः उन्हें असफलता ही हाथ लगती है, क्योंकि सचमुच इन समस्याओं का सही ढंग से समाधान करने की क्षमता तो उनमें होती नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति समस्या से घिरा रहता है।

5. **किशोरावस्था विशिष्टता की खोज का समय होता है-**किशोरावस्था में किशोरों में अपने साथियों के समूह से थोड़ी विशिष्ट एवं अलग पदवी बनाए रखने की प्रवृत्ति देखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण वे अपने साथियों से भिन्न ढंग का ड्रेस पहनने तथा नए ढंग के साइकिल या स्कूटर आदि का प्रयोग करने पर अधिक बल डालते हैं। इसे इरिक्सन (1964) ने 'अहम पहचान की समस्या' कहा है।
6. **किशोरावस्था अवास्तविकताओं का समय होता है-**किशोरावस्था में अक्सर व्यक्ति ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ करता है जिनका वास्तविकता से कम मतलब होता है। वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में वैसा ही सोचते है जैसा कि वे सोचना पसंद करते हैं न कि जैसी वास्तविकता होती है। इस तरह की अवास्तविक आकांक्षाओं से किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है। रसियन (1975) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि किशोरों में जितनी ही अधिक अवास्तविक आकांक्षाएँ होती हैं, उतनी ही उनमें अधिक कुंठा तथा क्रोध, विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक होती है जब वे यह समझते हैं कि वे उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाए जिस पर वे पहुँचना चाहते थे।
7. **किशोरावस्था वयस्कावस्था की दहलीज होती है-**किशोरावस्था एक तरह से वयस्कावस्था की दहलीज होती है क्योंकि इस अवस्था के समाप्त होते-होते, अर्थात 18-19 साल की अवस्था में किशोरों के मन में यह बात बैठ जाती है कि अब वे वयस्क हो गए हैं और उन्हें अब वयस्कता से संबंधित व्यवहार करने चाहिए। शायद यही कारण है कि वे इस उम्र में धूम्रपान, मंदिरापान, औषधि सेवन, यौन क्रियाओं आदि में स्वतंत्र रूप से भाग लेने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9. पूर्व बाल्यावस्थाइसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। (सत्य/ असत्य)
10. किस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसन्द करते हैं?
    क. पूर्व बाल्यावस्था
    ख. उत्तर बाल्यावस्था
    ग. पूर्व किशोरावस्था
    घ. उत्तर किशोरावस्था
11. मानव विकास की किस अवस्था को माता-पिता द्वारा एक ''उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है?
    क. पूर्व बाल्यावस्था
    ख. उत्तर बाल्यावस्था

ग. पूर्व किशोरावस्था

घ. उत्तर किशोरावस्था

12. ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?'' यह टिप्पणी किसकी है?

5.5 अवस्था विशेष के विकासात्मक कार्य

प्रत्येक समाज में बच्चा एक विशेष उम्र में एक खास तरह के व्यवहार तथा कौशल को तेजी से सीखता है। यही कारण है कि शिक्षक, माता-पिता तथा समाज के अन्य लोग बच्चों से उनकी उम्र के अनुसार विशेष तरह की सामाजिक उम्मीदें बनाकर रखते हैं। वे लोग उम्मीद करते हैं कि बच्चे जिस उम्र के हो गए है उस उम्र की सारी अनुक्रियाएँ उन्हें करनी चाहिए। इस तरह की सामाजिक प्रत्याशा को हेबिगहर्स्ट (1972) ने विकासात्मक कार्य कहा है। हेबिगहर्स्ट (1972) के अनुसार विकासात्मक कार्य को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, ''विकासात्मक कार्य वह कार्य या पाठ है जो व्यक्ति की जिंदगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में संबंधित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और परवर्ती कार्यो को करने में उसे आनंद आता है, परंतु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और परवर्ती कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।'' शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के अनुसार विकासात्मक कार्य से निम्नांकित तीन तरह के उद्देश्यों की पूर्ति होती है-

1. विकासात्मक कार्य से शिक्षकों तथा अभिभावकों को यह जानने में सुविधा होती है कि एक खास उम्र पर बालक क्या सीख सकते है और क्या नहीं।
2. विकासात्मक कार्य बालकों को उन व्यवहारों को सीखने में एक प्रेरणा का काम करता है जिसे सामाजिक समूह उसे सीखने के लिए उम्मीद करता है।
3. विकासात्मक कार्य शिक्षकों तथा माता-पिता को यह बताता है कि उन्हें अपने बच्चों से निकट भविष्य तथा सुदूर भविष्य में क्या उम्मीद करनी चाहिए। अतः, विकासात्मक कार्य शिक्षकों तथा अभिभावकों को अपने बच्चों को इस ढंग से तैयार करने की प्रेरणा देते हैं ताकि वे भविष्य की नई चुनौतियों का सामना कर सके।

हेबिगहर्स्ट (1972) ने पूर्व बाल्यावस्था उत्तर बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था के लिए विकासात्मक कार्य तैयार कर रखा है जिससे शिक्षकों तथा अभिभावकों को बालकों के मार्गदर्शन में काफी सहायता मिली है तथा शिक्षा जगत में इसके परिणाम काफी अच्छे देखने को मिले हैं। इन विकासात्मक कार्यो का वर्णन अवस्था विशेष हेतु निम्नांकित है-

पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

विद्यालय जाने से पूर्व की अवस्था यानी 10 वर्ष से पहले की अवस्था के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. चलना सीखना

2. ठोस आहार लेना सीखना
3. बोलना सीखना
4. मल-मूत्र त्याग करना सीखना
5. यौन अंतरों तथा यौन शालीनता को सीखना
6. शारीरिक संतुलन बनाए रखना सीखना
7. सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के सरलतम संप्रत्यय को सीखना
8. अपने-आपको माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के साथ सांवेगिक रूप से संबंधित करना सीखना
9. सही तथा गलत के बीच विभेद करना सीखना तथा अपने में एक विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

विद्यालय जाने की अवस्था, यानी 5-6 साल की अवस्था से लेकर प्राक्-किशोरावस्था, यानी, 11-12 साल की अवस्था तक के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशल को सीखना।
2. अपने-आपके प्रति एक हितकर मनोवृत्ति विकसित करना।
3. अपनी ही उम्र के साथियों के साथ् मिलना-जुलना सीखना।
4. उपयुक्त पुरूषोचित तथा स्त्रियोचित यौन भूमिकाओं को सीखना।
5. पढ़ना, लिखना तथा गिनती करना से संबंधित मौलिक कौशल विकसित करना।
6. दिन-प्रतिदिन की सुचारू जिंदगी के लिए आवश्यक संप्रत्ययों को सीखना।
7. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखना।
8. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करना।
9. सामाजिक समूहों एवं संस्थानों के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना।

किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

किशोरावस्था की तीनों अवस्थाओं (प्राक्-किशोरावस्था, पूर्व किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था) यानी, 12-13 साल से लेकर 19-20 साल की अवधि तक के विकसात्मक कार्य निम्नलिखित हैं-

1. दोनों यौन की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं एक परिपक्व संबंध कायम करना।
2. उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना।
3. माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतंत्रता कायम करना।
4. किसी व्यवसाय का चयन करना तथा उसके लिए अपने-आपको तैयार करना।
5. जीवन की प्रतियोगिताओं के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशलताओं को सीखना।
6. पारिवारिक जीवन तथा शादी के लिए अपने-आपको तैयार करना।
7. सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करना।
8. आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना।

अभ्यास प्रश्न

13. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखनाउत्तर बाल्यावस्था काविकासात्मक कार्य है। (सत्य/असत्य)
14. ''उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएं सीखना'' एक विकासात्मक कार्य है-
    - क. बाल्यावस्था
    - ख. किशोरावस्था की
    - ग. वयस्कावस्था की
    - घ. इनमें से किसी की नहीं

5.6 सारांश

मानव विकास की निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं- गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था। शैक्षिक दृष्टिकोण से बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था का विशेष महत्व है क्योंकि इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति को आगामी जीवन के लिए आवश्यक व्यवहारों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

मानव विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं होती है तथा अवस्था विशेष के अपने विकासात्मक कार्य होते हैं।

5.7 शब्दावली

1. **गिरोह अवस्था:** उत्तर बाल्यावस्था जो 5-6 वर्ष से लेकर 10-12 वर्ष तक रहती है तथा जिसमें बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।
2. **विकासात्मक कार्य:** विकासात्मक कार्य वह कार्य है जो व्यक्ति की जिन्दगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में सम्बन्धित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और बाद के कार्यो को करने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, परन्तु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और बाद के कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।

5.8 अभ्यास-प्रश्नों के उत्तर

1. शैशवावस्था
2. किशोरावस्था
3. वयःसन्धि
4. युवावस्था
5. किशोरावस्था
6. प्रौढ़ावस्था
7. सत्य
8. वृद्धावस्था

9. सत्य
10. कपूर्व बाल्यावस्था
11. ख उत्तर बाल्यावस्था
12. इरिक्सन की
13. सत्य
14. ख किशोरावस्था की

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
2. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो मेरठ
3. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्ररहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
4. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
5. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
6. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
2. विकासात्मक कार्य से आप क्या समझते हैं? पूर्व एवं उत्तर बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यो का की व्याख्या कीजिए।
3. किशोरावस्था की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए तथा इस अवस्था के विकासात्मक कार्यो को रेखांकित कीजिए।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए -
    i. बाल्यावस्था की विशेषताएं
    ii. किशोरावस्था

इकाई- 6 शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास

Infancy with respect to Physical, Mental, Emotional and Social Development

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 शैशवावस्था

6.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

6.5 शैशवावस्था में मानसिक विकासशैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

6.6 शैशवावस्था में सामाजिक विकास

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्न

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

जन्म के समय बालक (शिशु) शारीरिक और मानसिक रुप से विकसित नहीं होता। वह एक मनोशारीरिक प्राणी के रुप में जन्म लेता है। धीरे-धीरे विकास के फलस्वरुप उसकी मानसिक और शारीरिक शक्ति का प्रस्फुटन होता है। बाल विकास की इस प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकों ने चार सोपानों में विभाजित किया है-

शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढावस्था। प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषतएं होती हैं जो कि उसा अवस्था विशेष में परिलक्षित होतीं हैं। इस इकाई में आप मानव विकास की शैशवावस्था का अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- शैशवावस्था के बारे में जान पायेंगे।
- शैशवावस्था में मानसिक विकास के बारे में समझ सकेंगे।
- शैशवावस्था में शारीरिक विकास की व्याख्या सकेंगे।

- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास का वर्णन कर सकेंगे।
- शैशवावस्था में सामाजिक विकास के बारे में जान पायेंगे।
- शैशवावस्था में शिशु के विकास का अध्ययन करने के पश्चात माता-पिता की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

6.3 शैशवावस्था (Infancy)

सामान्यतः शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम 6 वर्ष शैशवावस्था कहलाते हैं। शिशु को अंग्रेजी भाषा में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है। अतः इन्फैन्ट का शाब्दिक अर्थ है बोलने में अक्षम अतः इन्फैन्ट शब्द का प्रयोग शिशु की उस अवस्था तक के लिये किया जाता है जब वे सार्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ करते हैं। सामान्यतः तीन वर्ष की आयु तक का बालक शब्दों का सार्थक प्रयोग करना शुरु कर देता है। इसलिये तकनीकी दृष्टि से शून्य से तीन वर्ष की आयु की अवधि को शैशवावस्था कहते हैं। शैशवावस्था बालक का निर्माण काल है तथा शिशु जन्म के पश्चात मानव निर्माण की प्रथम अवस्था है **न्यूमैन (J. Newman)** के शब्दों में-

‘‘पांच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिये बड़ी ग्रहणशील होती है।’’

फ्रायड- मनुष्य को जो कुछ भी बनाना होता है वह प्रथम चार पाँच वर्षों के बन जाता है। सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह अवस्था ही वह आधार है जिस पर बालक का भविष्य या उसके जीवन का निर्माण होता है।

शैशवावस्था (जन्म से 6 वर्ष तक) में विकास का तात्पर्य यह है कि यह सामान्य बच्चों के औसत विकास से है। सामान्य का अर्थ यह भी है कि वंशानुक्रम से प्राप्त शक्तियों के आधार पर भी वह सामान्य होते हैं जिनका पर्यावरण भी सामान्य होता है। शिक्षा की दृष्टि से बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास का अधिक महत्व होता है। इसीलिये प्रस्तुत भाग में शैशवावस्था के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास पर ही प्रकाश डालेंगे।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है यह प्रक्रिया मानव के जन्म से प्रारम्भ होती है और मृत्यु पर्याप्त चलती रहती है। जन्म के समय बच्चे के शरीर की बनावट, बड़े बच्चे से भिन्न होती है, पहले दो सप्ताह का बच्चा नवजात शिशु कहलाता है। नवजात शिशु की त्वचा लाल, सिकुडी हुयी तथा खुरदरी होती है। शिशु 18 से 22 घंटे रोता है। भूख लगने पर उठ जाता है एवं पेट भरने पर फिर सो जाता है।

वैलन्टाइन ने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।
वाटसन ने कहा है ‘‘शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।’’

6.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

आकार एवं वजन (Size and Weight)- शिशु जब इस संसार में आता है उस समय बालक का भार 7.15 और बालिका का भार 7.13 पौंड होता है कभी-कभी उसका भार 5 से 8 पौंड तक तथा सिर का वजन पूर्ण शरीर के वजन का 22 प्रतिशत होता है। पहले 6 माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष के अन्त में तिगुना हो जाता है। दूसरे वर्ष में शिशु का भार केवल 1/2 पौंड प्रति माह के हिसाब से बढता है एंव पांचवें वर्ष के अन्त में 38 से 43 पौंड के बीच में होता है।

हावर्ड विश्व विद्यालय के एक 12 वर्षीय अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जन्म से दो वर्ष की आयु तक बालक का विकास तीव्र गति से होता है। 2 वर्ष के बाद की वृद्धि निम्न प्रकार से पायी गयी है।

तालिका - वजन (Weight) पौंड में

वर्ष	बालक	बालिका
2.5	34.5	35.34
3	36.75	40.5
3.5	39	43.5
4	41.5	46.75
4.5	44	48.75
5	48.25	51.25
5.5	53	54.25
6	56.5	61.25

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिका की औसत भार (किग्रा0 में)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	3.2	5.7	6.9	7.4	8.4	10.1	11.8	13.5	14.8	16.3
बालिका	3.0	5.6	6.2	6.6	7.8	9.6	11.2	12.9	14.5	16.0

लम्बाई (Length) - जन्म के समय एवं सम्पूर्ण शैशवावस्था में बालक की लम्बाई बालिका से अधिक होती है। जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग 20.5 इंच एवं बालिका की 20.3 इंच होती है। अगले 3 या 4 सालों में बालिकाओं की लम्बाई बालको से अधिक होती है। उसके बाद बालको की लम्बाई बालिकाओं से आगे निकलने लगती है। पहले वर्ष में शिशु की लम्बाई

हावर्ड विश्व विद्यालय के एक 12 वर्षीय अध्ययन के अनुसार - लगभग 10 इंच एवं दूसरे वर्ष में 4 या 5 इंच बढती है। तीसरे चौथे एवं पांचवे वर्ष में उसकी लम्बाई कम बढती है।

तालिका

ऊँचाई इंच में

वर्ष	बालक	बालिका
2.5	38	38
3	39.5	39.75
3.5	41	41.5
4	42.75	43
4.5	44.25	44.75
5	45.5	45.5
5.5	47.25	46.75

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिका की औसत लम्बाई (से0मी0) में

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	51.5	62.7	64.9	69.5	73.9	81.6	88.8	96.0	102.1	108.5
बालिका	51.0	60.9	64.4	66.7	72.5	80.1	87.2	94.5	101.4	107.4

सिर एवं मस्तिष्क (Head and Brain) - जब बालक जन्म लेता है तब शिशु के मस्तिष्क की माप 350 ग्राम अर्थात पूरे शरीर का 1/4 होती है। शैशवकाल में शिशु का मस्तिष्क तीव्र गति से विकसित होता है तथा पहले दो वर्षों में ही यह तीन गुना हो जाता है। 6 वर्ष की आयु में मस्तिष्क का वजन 1260 ग्राम हो जाता है। जो कि प्रौढ़ व्यक्ति के मस्तिष्क के भार का 90 प्रतिशत तक होता है। स्पष्ट है कि शैशवावस्था में मस्तिष्क का विकास तीव्र गति से होता है।

हड्डियाँ (Bones) - शरीर संरचना वास्तव में हड्डियों का ढाँचा होता है। नवजात शिशु में हडिड्यों की संख्या लगभग 270 होती है। शिशु की हड्डियाँ छोटी कोमल (Soft) लचीली (Pliable) होती हैं। उनकी हड्डियों का दृढीकरण तथा अस्थीकरण Ossification कैलिशयम Calcium, फासफोरस Phosphorus तथा अन्य खनिज वस्तुओं Minerals salts के सहयोग से होता है। बालकों की तुलना में बालिकाओं में अस्थिकरण अधिक शीध्र होता है।

दाँत (Teeth) - जन्म के समय शिशु के दाँत नहीं होते हैं लगभग छठें या सातवें महीने में अस्थायी दूध के दाँत (Deciduous teeth) निकलने लगते हैं सबसे पहले नीचे के अगले दाँत निकलते हैं। एक वर्ष की आयु तक दूध के

सभी दाँत निकल जाते हैं इसके पश्चात ये दाँत गिरने लगते हैं तथा पांचवे या छठें वर्ष की आयु में शिशु के स्थायी दाँत निकलने शुरु हो जाते हैं।

माँस पेशियाँ (Muscles) - नवजात शिशु की मांसपेशियों का भार उनके शरीर के कुल भार का लगभग 23 प्रतिशत होता है। मांसपेशियों के प्रतिशत भार में धीरे-धीरे बढोत्तरी होती जाती है।

अन्य अंग (Other Organs) - शिशु की भुजाओं एवं टांगों का विकास भी तीव्र गति से होता है प्रथम दो वर्षों में भुजायें दो गुनी तथा टाँगे लगभग डेढ़ गुनी हो जाती है। जन्म के समय शिशु के हदय की धडकन अनियमित होती है कभी तेज होती है तो कभी धीमी होती है जैसे- जैसे हृदय बड़ा होता है। वैसे-वैसे हृदय की धड़कन में स्थिरता आती है। प्रथम माह में शिशु के हृदय की गति प्रति एक मिनट में 140 लगभग बार धडकता है तथा 6 वर्ष की आयु में यह घटकर लगभग 100 हो जाती है। शिशु के शरीर के ऊपरी भाग का लगभग पूर्ण विकास 6 वर्ष की आयु तक हो जाता है। टाँगों एवं भुजाओं का विकास अति तीव्र गति से होता है। शिशु के यौन-सम्बन्धी अंगो का विकास मन्द गति से होता है।

6.5 शैशवावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Infancy)

सोरेनसन (Sorenson) (P 31-32 के शब्दों में जैसे-जैसे शिशु प्रति दिन प्रतिमास, प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी शक्तियों में परिवर्तन होता जाता है। ये परिवर्तन निम्न है-

1. प्रथम सप्ताह **(First Week)** अर्थात उत्पत्ति के समय- बालक जब इस संसार में अवतीर्ण होता है तो वह कुछ मौलिक प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है। जॉन लॉक John Locke का मत है - नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है जिस पर अनुभव लिखता है। फिर भी शिशु जन्म के समय से कुछ जानता है जैसे- छीकना, हिचकी लेना, दूध पीना, हाथ पैर हिलाना, आराम न मिलने पर रोना, भूख की प्रवृत्ति, सर्दी लगने पर कँपकपाहट एवं गर्मी लगने पर गर्मी का अनुभव करता है। रोशनी की चमक तथा तेज स्वर (आवाज) सुनकर चौंकना। जन्म के दो चार घंटे बाद पीड़ा संवेदना का अनुभव करता है तथा 24 घंटे में ही दूध एवं पानी के स्वाद को समझने लगता है।
2. द्वितीय सप्ताह **(Second Week)** - जब शिशु 9-10 दिन का हो जाता है तो वह रोशनी से नही घबराता उसकी ओर देख सकता है। चमकीली एवं बडे आकार की बस्तुओ को ध्यान से देखता है एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय प्रकाश का अनुसरण करता है।
3. पहला महीना **(First Month)**- शिशु कष्ट या भूख का अनुभव होने पर विभिन्न प्रकार से चिल्लाता है और हाथ में दी जानी वाली वस्तु के पकड़ने की चेष्टा करता है।
4. दूसरा महीना **(Second Month)** - इस अवस्था में शिशु एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाने वाली वस्तु को ध्यान पूर्वक सुनता है आवाज सुनने के लिये सिर घुमता है। वस्तुओं को अधिक ध्यान से देखता हैं उसके पास गाना गाय जो तो ध्यान पूर्वक सुनता है अपनी माँ को देखकर कभी हँसता है तो कभी खुश होता है सब स्वरों की ध्वनियाँ उत्पन्न करता है।

5. चतुर्थ महीना **(Fourth Month)**- चार महीने की अवस्था में शिशु चीजों को पकड़ने लगता है। खोये हुये खिलौनों को खोजता है खिलौनों आदि को ध्यान से परखता है। क्रोध भी करने लगता है एवं हँसने भी लगता है। शिशु सब व्यंजनों की ध्वनियाँ करता है।
6. पंचम महीना **(Fifth Month)** – पाँच महीने की अवस्था में शिशु अपनी माँ को भली प्रकार पहचान लेता है। एवं चीजों को पकड़ने के लिये हाथ आगे बढाता है।
7. छठा महीना **(Sixth Month)** - शिशु सुनी हुयी आवाज का अनुकरण करता है। अपना नाम समझने लगता है, शिशु को सहारा देकर वह बैठने लगता है। वस्तुओं को लेकर अपने मुख के पास ले जाने का प्रयास करता है। कुछ संकेतों को भी समझने लगता है। प्रेम और क्रोध में अन्तर जान लेता है। अपने एवं पराये में अन्तर समझने लगता है।
8. सप्तम् महीना **(Seven Month)** - सात महीने की अवस्था में शिशु मुख से अनेक प्रकार की आवाजें निकालने पर प्रसन्न होता है एवं अपने खिलौने भी पहचाने का प्रयत्न करता है।
9. अष्ठम महीना **(Eight Month)**- इस आयु में शिशु खिलौने को लेने पर पुनः लेने के लिये रोने लगता है। अनेकों खिलौनों के बीच अपनी पसन्द का खिलौना छाँटने का प्रयास करता है। दूसरे बच्चों के साथ खेलने में आनन्द लेता है।
10. नवम् महीना **(Nine Month)** - नौ महीने का होने पर बालक अपने आप बैठने लगता है।
11. दशम महीना **(Ten Month)** - शिशु विभिन्न प्रकार की आवाजों और दूसरे शिशु की गतियों का अनुकरण करता है। शिशु घंटी की आवाज सुनकर उसका अनुसरण करता है एवं ढकी हुयी वस्तुओं को खोलने लगता है तथा अपना खिलौना छिन जाने पर विरोध करता है।
12. प्रथम वर्ष **(First Year)**- शिशु छोटे-छोटे शब्दों को (चार शब्द) को बोलने लगता है दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं का अनुकरण करता है। दर्पण में अपना मुँह देखने लगता है। एक वर्ष की आयु में चलने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है।
13. द्वितीय वर्ष **(Second Year)** - दो वर्ष की आयु में शिशु छोटे-छोटे वाक्यों का उच्चारण करने लगता है या दो शब्दों के वाक्यों का प्रयोग करता है वर्ष के अन्त तक उसके पास 100 से 200 तक शब्दों का भण्डार हो जाता है। चित्र में कुछ पूछने पर वह हाथ रखकर बता देता है तथा इस अवस्था में वह चॉकलेट या टॉफी आदि पर लिपटा कागज खोलने का प्रयास करता है या खोलता है। शिशु का भाषा विकास, सरल प्रश्न करना, समस्याओं को समझना, विकास का प्रमुख साधन ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। परिवेश के प्रत्येक पदार्थ को देखता है एवं जानने का प्रयास करता है।
14. तृतीय वर्ष **(Third Year)**- इस अवस्था में वह पूछने पर अपना नाम बता देता है। हाथ कान, मुख आदि अंगो को पूछने पर हाथ रखकर बता देता है। सीधी या लम्बी रेखा देखकर वैसी ही रेखा खींचने का प्रयत्न करता है। तीन अंको की संख्या दोहराने लगता है एवं छोटे-छोटे वाक्यों को दोहराने लगता है तथा आमतौर पर क्या? क्यों? और कैसे? से प्रश्न आरम्भ करता है। गुडएनफ व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है। वर्ट ने 1938 में एक अध्ययन किया तथा बताया कि 3 वर्ष का शिशु 4 से 5 मिनट तक तथा 4 वर्ष का शिशु 5-6 मिनट तक अपना ध्यान किसी वस्तु पर केन्द्रित कर सकता है।

15. चतुर्थ वर्ष **(Fourth Year)** - छोटी एवं बड़ी रेखाओं में अन्तर जान जाता है। अक्षर लिखना आरम्भ कर देता है। वस्तुओं को क्रम से रखता है। लगभग 12 छोटे-छोटे शब्दों के वाक्यों को दोहराने लगता है। चतुर्भुज की नकल करने लगता है शिशु को ठण्ड, नींद, भूख लगने का अन्तर पूछा जाय तो बता सकता है।
16. पंचम वर्ष **(Fifth Year)**- पाँच वर्ष की अवस्था में शिशु टोपी, खिलौने, गेंद आदि शब्दों की परिभाषा करने लगता है, नीले, पीले, हरे लाल आदि रंगों का अन्तर बता सकता है, हल्की एवं भारी वस्तुओं में अन्तर बता सकता है। अपना नाम लिखने लगता है। संयुक्त एवं जटिल वाक्य बोलने लगता है, 10-11 शब्दों के वाक्यों को स्मरण कर सकता है। विभिन्न वस्तुओं को क्रमानुसार गिन सकता है, छोटी-छोटी आज्ञाओं को मानने लगता है एवं वजन के अन्तर को समझने लगता है।
17. षष्ठम वर्ष **(Sixth Year)**- शिशु गिनती याद कर लेता है सरल प्रश्नों के उत्तर दे देता है तथा चित्र दिखाने पर उसके लुप्त भागों को दिखाता है शरीर के विभिन्न अंगों के नमा बता देता हैं। छोटी-छोटी सुनी कहानी सुनाने का प्रयास करता है। स्मरण शक्ति, विकसित होने लगती है। जिज्ञासा भी उत्पन्न होने लगती है।

अभ्यास प्रश्न

1. Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है________________ ।
2. पहले दो सप्ताह का बच्चा________________ कहलाता है।
3. जब बालक जन्म लेता है तब उसके मस्तिष्क का माप___________ होता है।
4. नवजात शिशु में हडिड्यों की संख्या लगभग ___________होती है।
5. ''पांच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिये बड़ी ग्रहणशील होती है।'' यह किसका कथन है?
6. किसने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learning) माना है।
7. _________ ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

6.6 शैशवावस्था में सांवेगिक विकास Emotional Development in Infancy

Bridges (ब्रिजेज) के अनुसार- शिशु में जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और 2 वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है।

- शिशु जन्म के समय से ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है, बच्चे का रोना, चिल्लाना तथा हाथ पैर पटकना आदि शिशु के संवेगात्मक व्यवहार को परिलक्षित करते हैं।
- शिशु के संवेगात्मक व्यवहार में अत्यधिक अस्थिरता होती है उसका संवेग कुछ ही समय के लिये रहता है और फिर समाप्त हो जाता है इच्छापूर्ति में बाधा उत्पन्न होने पर उसमें संवेगात्मक उत्तेजना होती है तथा इच्छा पूर्ण होने पर उसकी उत्तेजना समाप्त हो जाती है। उदारहणार्थ रोता हुआ शिशु खिलौने, दूध, मिठाई या आपनी पसन्द

की वस्तु पाकर तुरंत रोना बन्द कर हंसना शुरु कर देता है तथा आयु बढने के साथ-साथ उसकी संवेगात्मक व्यवहार के स्थिरता आ जाती है।

- शिशु की संवेगात्मक अभिव्यक्ति धीरे-धीरे परिवर्तित होती जाती है। आयु बढने के साथ ऋणात्मक संवेगों की तीव्रता में कमी आती है जबकि घनात्मक संवेगों की तीव्रता में बढोत्तरी होती है उदाहरणार्थ दो या तीन माह का शिशु भूख लगने पर तब तक रोता है जब तक उसको दूध (खाना) नहीं मिल जाता है 4 या 5 वर्ष का शिशु इस प्रकार का व्यवहार नहीं करता है।
- प्रारम्भ में शिशु के संवेग अस्पष्ट होते हैं परन्तु धीरे-धीरे उसके संवेगों में स्पष्टता आने लगती है उसके संवेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है। उदाहरणार्थ- शिशु आरम्भ में खुश होने पर मुस्कराता है कुछ समय बाद वह अपनी प्रसन्नता को हँसकर विभिन्न प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करके या बोलकर व्यक्त करता है।
- लगभग दो वर्ष की आयु तक शिशु में सभी संवेगों का विकास हो जाता है - गेसेल ने अपने अध्ययन में पाया कि 5 सप्ताह के शिशु की भूख, क्रोध एवं कष्ट का चिल्लाहट में अन्तर हो जाता है तथा उसकी माँ उसका अर्थ समझने लगती है।
- मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस अवस्था में कुछ विशेष संवेगों का विकास होता है जो मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित होते हैं इस समय शिशु की प्रेम भावना काम प्रवृत्ति पर आधारित होती है। शिशु का अपने अंगों से प्रेम करना, इस प्रवृत्ति को द्योतक है। फ्रायड के अनुसार इस प्रकार के आत्मप्रेम को नारसीसिज्म कहते हैं। इस समय भावना ग्रन्थियों का भी विकास होता है जब शिशु 4 या 5 वर्ष का होता है तो उसमें मातृ प्रेम या पितृ विरोधी भावना तथा पितृ प्रेम या मातृ विरोधी भावना ग्रन्थि का विकास क्रमशः बालक व बालिका में होता है।
- शिशु कुछ बातों से भयभीत होना सीख जाते हैं। जरसील्ड **(Jersild E.T.- Child Psychology)** के मतानुसार ऊँचा शोर, गिरने का डर, अप्रिय अनुभव और स्मृतियों, भयभीत, व्यक्तियों का अनुकरण आदि। किन्तु जिन बातों से शिशु डरते हैं - अंधेरा कमरा, जानवर, अपरिचित व्यक्ति, अपरिचित पदार्थ, ऊँची आवाज, ऊँचा स्थान शरीर के किसी अंग में पीडा, गिरना, ज्ञानेन्द्रिय पर चोट लगना, शिशु व्यक्ति अनुभवों से ही डरना सीखता है तथा ये व्यक्तिगत अनुभव शिशु के अलग-अलग होते हैं। शिशुओं का भय कई रूपों में प्रकट होता है जैसे रोना, चीखना, साँस का कुछ समय के लिये रूक जाना, काम करते हुये छोड देना मिमियाना, भयजन के स्थिति से दूर भाग जाना, छिप जाना आदि।
- दो से 6 वर्ष का शिशु बड़ी जल्दी क्रोध में आ जाता है क्रोध उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ है खिलौने के लिये झगड़ा, कपड़ों के लिये झगड़ा, इच्छापूर्ति में बाधा, दूसरे बालक द्वारा आक्रमण, गाली गलौज क्रोध भी कई प्रकार से प्रकट करते हैं- लोट-पोट हो जाना, शरीर कडा करना, ऊपर नीचे उछलना, लात मारना, चिल्लाना, पैर पटकना, छिप जाना आदि।

Bridges के अनुसार विभिन्न प्रकार के संवेगों के उदय होने की आयु निम्न सारणी में प्रस्तुत है।

आयु	संवेग							
जन्म के समय	उत्तेजना	-	-	-	-	-	-	-	-
3 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	-	-	-	-	-	-
6 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	-	-	-
12 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	-
18 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या
24 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या

तालिका

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

6.7 शैशवावस्था में सामाजिक विकास (Social Development in Infancy)

प्रथम माह (First Month)- प्रथम माह में शिशु साधारण आवाज एवं मनुष्य की आवाज में अन्तर नहीं जानता, किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं करता, तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। रोने एवं नेत्रों को घुमाने की प्रतिक्रिया करता है। जब शिशु को गोद में सुलाया जाता है कन्धे से लगाया जाता है नहलाया जाता है या उसके कपडे बदले जाते हैं तो वह किसी अन्य व्यक्ति की अनुभूति करता है तथा उसकी अनुभूति का साधन स्पर्श है।

द्वितीय माह (Second Month) - शिशु मनुष्य की आवाज पहचानने लगता है। दूसरे व्यक्ति को अपने पास देखकर मुस्कराता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बात या ताली बजाना या खिलौना दिखाता है। तो आवाज को सुनकर सिर घुमाता है।

तृतीय माह (Third Month)- शिशु अपनी माँ को पहचानने लगता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बात करता है या ताली बजाता है तो वह रोते-रोते चुप हो जाता है। माँ के उससे दूर जाने पर रोता है तीन मास के शिशु में सामाजिक चेतना आने लगती है।

चतुर्थ माह (Fourth Month) - चौथे माह में शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देखकर हँसता है उसे देखता है, कोई उसके साथ खेलता है तो वह हँसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है। किसी व्यक्ति की गोद पर आने के लिये हाथ उठाना प्रारम्भ करता है।

पंचम माह (Fifth Month) - पाँचवे माह शिशु प्रेम एवं क्रोध के व्यवहार में अन्तर समझने लगता है यदि कोई उसके सामने हँसता है तो वह भी हंसने लगता है तथा डाँटने पर सहम जाता है।

षष्ठम माह (Sixth Month) - परिचित एवं अपरिचित व्यक्तियों में अन्तर करने लगता है, वह अपरिचितों से डरता है परिचित व्यक्तियों को पहचान लेता है बडों के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है, वह बडों के बाल पेन कपडे, चश्मा आदि खीचने लगता है।

अष्टम् माह (Eight Month)- शिशु बोले जाने वाले शब्दों और हाव-भाव का अनुकरण करने लगता है। शिशु दूसरे बालकों की उपस्थिति आवश्यक मानता है।

नवम माह (Nineth Month)- दूसरों के शब्दों, हाव भाव तथा कार्यो का अनुकरण उसी प्रकार से करने का प्रयास करता है। अपनी ही परछाई के साथ खेलने का प्रयास करता है तथा उसे चूमने का प्रयास करता है।

प्रथम वर्ष (First year) - एक वर्ष की आयु में मना किए जाने वाले कार्य को नहीं करता है। घर के सदस्यों से हिल-मिल जाता है। मना करने पर मान जाता है। अपरिचितों के प्रति भय तथा नापसन्दगी व्यक्त करता है। एक वर्ष का शिशु

अपनी सामाजिकता का परिचय कई रुपों में देता है वह घिसटता हुआ अन्य व्यक्ति तक पहुंचता है पदार्थों को उठाता एवं पटकता है। नवीन वस्तुओं में रुचि लेता है।

द्वितीय वर्ष (Second year) - दो वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों को उनके कार्यों में कोई न कोई सहयोग देने लगता है इस प्रकार वह परिवार का सक्रिय सदस्य बन जाता है। सामुहिक खेल में खेलने लगता है।

तृतीय वर्ष **(Third year)** - तीसरे वर्ष में वह अन्य बालकों के साथ खेलने लगता है। खिलौनों के आदान-प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा वह अन्य बालकों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

चतुर्थ वर्ष **(Fourth year)** - इस समय उसका सामाजिक व्यवहार आत्म केन्द्रित हो जाता है। इस अवस्था में वह प्रायः नर्सरी कक्षा (विद्यालयों) में जाने लगता है उसके व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। वह नये-नये सामाजिक सम्बन्ध बनाता है तथा नये सामाजिक वातावरण में स्वयं को समायोजित करता है।

पंचम वर्ष **(Fifth year)**- शिशु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है वह जिस समूह का सदस्य बनता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरुप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

हरलॉक ने लिखा है (Hurluck) (P-270)- शिशु दूसरे बच्चों के सामुहिक जीवन से अनुकूलन करना, उनसे लेन-देन करना और अपने खेल के साथियों को अपनी वस्तुओं में साझीदार बनाना सीख जाता है, वह जिस समूह का सदस्य होता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमान के अनुसार अपने को बनाने की चेष्टा करता है।

षष्ठम वर्ष **(Sixth year)** - इस वर्ष में वह प्राथमिक स्कूल में जाने लगता है वहाँ उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ हो जाता है वहाँ वह नये वातावरण से अनुकूलन करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना एवं नये मित्र बनाना सीखता है। लडकियाँ गुडिया खेलती हैं, लडका अनुकरणात्मक खेल खेलते हैं। इस आयु में बच्चे लडते भी हैं तथा वह लडाई क्षणिक होती है। सामुहिक खेलों में भाग लेते हैं।

अभ्यास प्रश्न

---

8. “शिशु में जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और 2 वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है” यह कथन किसका है?
9. लगभग _________ की आयु तक शिशु में सभी संवेगों का विकास हो जाता है।
10. ________में शिशु साधारण आवाज एवं मनुष्य की आवाज में अन्तर नहीं जानता।
11. ________________की आयु में शिशु परिवार का सदस्य बन जाता है। लगता है।

6.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में शैशवावस्था में शिशु के शरीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास की प्रक्रिया एवं इस प्रक्रिया में होने वाले लक्षणों तथा परिवर्तनो का उल्लेख किया गाया है। शैशवावस्था जन्म के पश्चात की सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण अवस्था है। इस भाग में एक सामान्य शिशु की शैशवावस्था में विकास की चर्चा की गयी है। जो कि सभी क्षेत्रों में सामान्य हो। विकास निरतंर चलने वाली प्रक्रिया है। इस अवस्था में रहकर शिशु अपने जीवन के महत्वपूर्ण काल को पूर्ण करते हुये अगली अवस्था में पहुंचता है। शिशु इस अवस्था में चलने से लेकर बोलना, समझना एवं समाज के नियम कानून (प्रतिमान) के साथ आगे की यात्रा का शुभारम्भ इस अवस्था से करता है। शिशु का मुस्कराना, हँसना, विरोध करना प्रश्न पूछना, क्या? क्यो? कैसे? इस रहस्यमयी संसार के बारे में जानने के लिये उत्सुक रहता है अर्थात शिशु की जिज्ञासा।

कोई भी विकास हो, चाहे वह मानव का हो या अन्य प्राणी का निश्चित अवस्थाओं में होता है। विकास की एक अवस्था दूसरी से भिन्न होती है। मनोवैज्ञानिकों ने सुविधा के लिये मानव विकास को विभिन्न अवस्थाओं में बांटकर उनके प्रकट होने वाले परिवर्तनों एवं अभिलक्षणों को पहचान कर उनका अध्ययन किया।

वैलन्टाइन ने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।

वाटसन ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

6.9 शब्दावली

शैशवावस्था - सामान्यतः शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम 3 वर्ष शैशवावस्था कहलाते हैं।

इन्फैंट (Infant)-शिशु को अंग्रेजी भाषा में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है। अतः इन्फैन्ट का शाब्दिक अर्थ है बोलने में अक्षम अतः इन्फैन्ट शब्द का प्रयोग शिशु की उस अवस्था तक के लिये किया जाता है जब वे सार्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ करते हैं।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बोलने में अक्षम
2. नवजात शिशु
3. 270
4. 350 ग्राम
5. न्यूमैन (J. Newman) का
6. वैलन्टाइन ने
7. वाटसन
8. Bridges(ब्रिजेज) का

9. दो वर्ष
10. प्रथम माह
11. दो वर्ष

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सारस्वत, डा0 मालती - ''शिक्षा मनोविज्ञान की रूप रेखा'' आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद
2. गुप्ता, डा0 एस0पी0, आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, शरदा पुस्तक भवन 11 यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
3. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2
4. भटनागर, डा0 ए0वी, मीनाक्षी, तथा राजाराम,अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
5. पाण्डेय, डा0 राम शकल, शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
6. मुकर्जी, श्रीमती सन्ध्या, बाल मनोविज्ञान, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड़, लखनऊ।
7. पचौरी, डा0 गिरीश, शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
8. भाई, योगेन्द्रजीत - शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशस, आगरा-2

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैशवावस्था किसे कहते हैं
2. Bridges (ब्रिजेज) के अनुसार शैशवावस्था में विभिन्न प्रकार के संवेगों का उल्लेख कीजिये।
3. शैशवावस्था में भार एवं लम्बाई के बारे में लिखिये।
4. शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास का वर्णन कीजिए?
5. शैशवावस्था में विकास की प्रक्रिया के बारे में विस्तार से वर्णन कीजिये।
6. शैशवावस्था में मानसिक विकास किस प्रकार से होता है। समझाइए?

इकाई -7 बाल्यावस्था -शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं सामाजिक विकास के परिपेक्ष्य में

7.1 परिचय

7.2 इकाई के उद्देश्य

7.3 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

7.4 बाल्यावस्था में मानसिक विकास

अपनी प्रगति जानिए

7.5 बाल्यावस्था में भावात्मक विकास

7.6 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

अपनी प्रगति जानिए

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

संदर्भ सूची

7.1 परिचय

बाल्यावस्था जीवन का सुखद अवस्था है जब बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं एवं मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास के लिए बुद्धिमत्ता पूर्ण संरक्षण तथा उचित देखभाल की आवश्यकता होती है। बाल्यावस्था में अपर्याप्त देखभाल का बच्चे के विकास में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिसका परिणाम व्यक्तिगत एवं सामाजिक कुसमायोजन के रूप में दिखाई देता है। बच्चे केवल बढ़ते नहीं है । उन्हें संरक्षण एवं अच्छी परवरिश की आवश्यकता होती है। बाल्यावस्था विकास की अवस्थाएं -बाल्यावस्था को तीन भागों में बाँटा जा सकता है

- ✓ पूर्व बाल्यावस्था -2 से 6 वर्ष

- ✓ मध्य बाल्यावस्था -6 से 10 वर्ष
- ✓ उत्तर बाल्यावस्था -10 से 13 वर्ष

यह अवस्था सामान्यतया शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक रूप से अपरिपक्व अवस्था होती है। शारीरिक और मानसिक अपरिपक्वता की पूरी अवधि को बाल विकास कहा जाता है। अगर हम बाल विकास के पैटर्न को पूरी तरह से समझना चाहते हैं, तो हमें पता होना चाहिए कि पैदा होने से पहले बच्चे के साथ क्या होता है, बच्चे के जन्म से पूर्व तथा जन्म के उपरांत के समय का प्रभाव बाल्यावस्था में पड़ता है। बाल्यावस्था लगभग 2 -13 वर्ष तक चलती है। इसमें विभिन्नताएं भी पायी जाती है।

7.2 इकाई के उद्देश्य

7.3 प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप ;

- बाल्यावस्था को समझ पाएंगे
- बाल्यावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास को स्पष्ट कर सकेंगे
- बाल्यावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास में प्रभाव डालने वाले कारकों को पहचान सकेंगे
- बाल्यावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे

7.3 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास-

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास भोजन और सामान्य स्वास्थ्य पर निर्भर करता है, और सूरज की रोशनी, ताजी हवा और जलवायु , जैसे पर्यावरणीय कारक शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। शारीरिक विकास में विभिन्न कारक प्रभाव डालते है। जिनका एक -दूसरे से संबंध होता है । अर्थात एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। बाल्यावस्था में शारीरिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक इस प्रकार हैं-

भोजन- हर उम्र में, लेकिन विशेष रूप से जीवन के शुरुआती वर्षों में, बच्चे के सामान्य विकास के लिए संतुलित आहार का बहुत महत्व है। इसमें भोजन की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों शामिल हैं। पर्याप्त मात्रा में भोजन एवं उसके पोषक तत्व जैसे - कार्बोहायड्रेट,वसा,प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन की उचित मात्रा महत्वपूर्ण होती है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था में शारीरिक बृद्धि जैसे- ऊंचाई और वजन धीमी गति से होती है। शरीर के विभिन्न अंगों अधिक आनुपातिक होने लगते है। साथ ही क्रियात्मक कौशल (motor skills) जैसे - दौड़ना, कूदना, चढ़ना, फेंकना,आकार देना, बर्तनों का उपयोग करना, स्वतंत्र रूप से कपड़े पहनना तथा समन्वय और संतुलन में काफी सुधार होने लगता है।

मध्य बाल्यावस्था में स्थिर शारीरिक विकास होता है। मांसपेशियों और ताकत में वृद्धि के साथ ही क्रियात्मक कौशल जैसे -खेल, बाइकिंग, तैराकी ,सुंदर तरीके से लिखना, कला कृतियाँ बनाना ,विभिन्न शारीरिक गतिविधियों में अधिक संतुलन करने की क्षमता विकसित होने लगती है।

बाल्यावस्था के दौरान पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार की कमी विभिन्न शारीरिक दोषों जैसे -खराब दांत, आँख ,कान ,त्वचा से संबंधित रोगों एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी दोषों को बढाता है। बच्चे की उम्र के अनुसार शरीर का आकार उसकी सामान्य स्वास्थ्य स्थिति और परिपक्वता के साथ ही ताजी हवा और सूरज की रोशनी की मात्रा से भी प्रभावित होती है। जीवन के शुरुआती वर्षों में इसका अधिक प्रभाव पड़ता है । बचपन के दौरान अच्छी एवं पर्याप्त नींद उतनी ही आवश्यक है जितना कि अच्छा भोजन। अच्छी नींद तब तक संभव नहीं है जब तक कि बच्चे के पास सोने के लिए एक सुरक्षित और आरामदायक स्थान न हो जहां वह प्रकाश या शोर से बिना सो सके। बाल्यावस्था /जीवन में परिवार का विशेष महत्व है। एक अच्छा परिवार बच्चे के जीवन में और उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे –

- परिवार आत्मीयता,समझ और विचार,समुदाय में स्वीकृती तथा आर्थिक स्थिरता के माध्यम से बच्चे की जरूरतों को पूरा करता है तथा सुरक्षा देता है।
- आहार, कपड़े, नींद, आराम, खेल, चिकित्सा पर्यवेक्षण के माध्यम से, प्रारंभिक स्वस्थ देखभाल प्रदान करता है।
- पर्यवेक्षण के तहत अन्य बच्चों के साथ अनुभव के माध्यम से,व्यावसायिक मार्गदर्शन के माध्यम से, शिष्टाचार और नैतिकता में प्रशिक्षण के माध्यम से, प्रारंभिक सामाजिक प्रशिक्षण प्रदान करता है।
- खेलने के लिए स्थान और सामग्री उपलब्ध कराकर शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायता करता है। तथा साधनो के अनुरूप जीवन की योजना (planning of life) को बनाने में बच्चे की सहायता करता है। तथा उसकी भावनाओं और क्षमताओं के विकास के लिए एक मित्रतापूर्ण और उत्साहित वातावरण ,प्यार, संरक्षण और प्रोत्साहन प्रदान करता है।

7.4 बाल्यावस्था में मानसिक विकास

बाल्यावस्था में अमूर्त चिंतन (abstract thinking) शक्ति का विकास होने लगता है। मूर्त चिंतन से अमूर्त चिंतन इस अवस्था का एक अभिलक्षण है। जिसमें कल्पना तथा प्रत्यक्षीकरण क्षमता का विशेष महत्व है। कल्पना शक्ति (power

of imagination) बढ़ाने में विभिन्न मानसिक खेल ,क्रियाकलापों तथा शिक्षण गतिविधियों का प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में बच्चा शिक्षा के औपचारिक केंद्रों जैसे -पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक शिक्षा के केंद्रों प्रवेश ले लेता है तथा विभिन्न गतिविधियों में शामिल होने लगता है। वयस्कों की तुलना में बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक गतिविधि की आवश्यकता अधिक होती है और निश्चित रूप से बच्चों में खेलने की स्वाभाविक रुचि होती है। वे उछल- कूद करने तथा खुशी से झूमने की इच्छा को रोक नहीं सकते। खेल के मैदान में उनकी स्वाभाविक प्रवृति देखने को मिलती है। दिवाली, होली ,शादी या किसी अन्य समारोह से पहले उनके उमंग एवं उत्साह को आसानी से देखा जा सकता है। कुछ शारीरिक आवश्यकताएं (जैसे ऑक्सीजन, शरीर का सामान्य तापमान) आमतौर पर स्वचालित रूप से संतुष्ट होती हैं। शारीरिक भूख की संतुष्टि, विशेष रूप से अधिग्रहित स्वाद जैसे -अधिक चाय, धूम्रपान आदि , अप्रत्यक्ष रूप से मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। स्नेह से वंचित बच्चे अक्सर अधिक खाने लगते हैं, खासकर मीठी चीजें जिससे वे मोटापे के शिकार हो जाते हैं। मॉसलों के अनुसार,अन्य लोगों के साथ जुडने की भावना का अनुभव (a sense of union with other people -to belong) बाल्यावस्था की विशेष आवश्यकता होती है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास के अंतर्गत प्रतीकात्मक सोच (symbolic thinking) विकसित होने लगती है। जैसे -अन्य चीजों का प्रतिनिधित्व करने के लिए वस्तुओं का उपयोग करना, दूसरों के दृष्टिकोण को देखने में कठिनाई अनुभव करना, बेहतर स्मृति और कल्पना शक्ति का विकास , शब्द संग्रह (vocabulary) का तेजी से विस्तार के साथ ही कठिन वाक्यों की रचना।

6-12 वर्ष में तार्किक सोच (logical thinking) का विकास होने लगता है। पियाजे, ने इस अवस्था को स्थूल परिचालन चरण (concrete operational stage) कहा है । इस अवस्था में नियमों, समय और स्थान की बेहतर समझ विकसित होती है। तथा बच्चे 'सोच के बारे में सोचना' (metacognition) सीखने लगते है। भाषा के पठन (reading) और लेखन (writing) कौशलों के साथ ही गणितीय कौशलों (mathematical skills) का भी विकास होने लगता है।

अभ्यास प्रश्न -अपनी प्रगति जानिये

1. मध्य बाल्यावस्था होती है

   A. 2 से 6 वर्ष
   B. 6 से 10 वर्ष
   C. 10 से 13 वर्ष
   D. 9 से 11 वर्ष

2. बाल्यावस्था में शारीरिक विकास के लिए आवश्यक हैं

   A. भोजन
   B. पर्याप्त नीद

C. स्वच्छ वायु एवं सूर्य की रोशनी

D. सभी

7.5 बाल्यावस्था में भावात्मक विकास

शारीरिक और भावनात्मक कारकों में गहरा अंतर्संबंध होता है। भावनात्मक विकास बालक /बालिका के मानसिक और व्यक्तित्व विकास का एक प्राथमिक कारक है। शारीरिक कारक मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करते हैं और भावनात्मक कारक शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। जैसे जलवायु, भोजन, आराम, व्यायाम, तनाव और थकान और बीमारी का भौतिक वातावरण बच्चे की शारीरिक वृद्धि की दर और पैटर्न को निर्धारित करता है उसी प्रकार भावनात्मक बृद्धि जलवायु, प्रेम या इसकी कमी, अच्छा या खराब अनुशासन, पर्याप्त या अपर्याप्त बौद्धिक विकास के अनुभव, मनोवैज्ञानिक-तार्किक तनाव या संतुष्टि, और अन्य मनोवैज्ञानिक कारक, उसके बौद्धिक और मानसिक विकास की दर और पैटर्न निर्धारित करते हैं। भावनात्मक विकास सुरक्षित होने के लिए, अन्य लोगों से स्वतंत्र होना ,साहसिक कार्य करने और नया अनुभव प्राप्त करने के लिए,जानने , निर्माण करने ,बनाने और व्यक्तिगत मूल्य की भावना का अनुभव करने में भावात्मक विकास का महत्व है। बच्चे समूह का हिस्सा बनने और स्वीकृति एवं पहचान दोनों को महसूस करना चाहते है। मनुष्य खोजता है ;

- अन्य लोगों के साथ या उनकी उपस्थिति में होना।
- किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से स्वीकार किया जाना;
- दूसरों के साथ सहकारी समितियों में शामिल होना;

मूलभूत भावनात्मक आवश्यकताएं- मूलभूत आवश्यकताएँ न केवल जैविक होती हैं, बल्कि इनमें मनोभावात्मक आवश्यकताएँ भी सम्मिलित होती हैं जो समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान विकसित होती हैं । बच्चे की भावनाएं एक वयस्क से भिन्न होती हैं। तथा वे सहज होती हैं। आमतौर पर, छोटे बच्चे की भावनाएं थोड़े समय के लिए होती हैं और फिर समाप्त हो जाती हैं। बच्चे अनुभव करने के लिए व्यक्तिपरक रूप से प्रतिक्रिया करते हैं और उनकी प्रतिक्रियाएं अक्सर भावनात्मक होती हैं। बच्चे भावनाओं को छिपाने में सक्षम होते है क्योंकि बच्चे की भावनाएं सतह पर अधिक होती हैं। वाटसन, एक प्रसिद्ध व्यवहारवादी है जिनके अनुसार भावनात्मक अभिव्यक्ति के मुख्य तीन प्रकार हैं ,जो भय, क्रोध और प्रेम से संबंधित हैं। जो बच्चे अधिक बुद्धिमान होते हैं, उनके पास दुनिया की व्यापक धारणा होती है, जो उन्हें गंभीर से हास्यास्पद, दुखद से विनोदी तक भावनाओं की विविधता को समझने में सक्षम बनाती है। जो बच्चा लगातार तनावपूर्ण सामाजिक वातावरण जिसमें परिवार के भीतर दबाव और कलह तथा और अत्यधिक अनुशासनात्मक एवं दंडात्मक माहौल से आता है, वह अधिक भावुक हो जाता है। उसमें भावात्मक अस्थिरता पायी जाती है। जो बच्चा परिवार में बिगड़ा, उपेक्षित या अति-संरक्षित होता है , वह अनुचित भावनात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है। निम्नलिखित कारक बाल्यावस्था में भावनात्मकता को निर्धारित करते हैं ;

थकान- थके हुए बच्चे भावात्मक रूप से अधिक अस्थिरता को प्रदर्शित करते हैं। दिन के समय जब छोटे बच्चों के थके होने की सबसे अधिक संभावना होती है वे अस्थिर भाव प्रदर्शित करते है । दोपहर और शाम के भोजन से पहले, सोने के समय से पहले भी गुस्सा ,चिड़चिड़ापन आदि दिखाई देता है।

खराब स्वास्थ्य- अच्छा स्वास्थ्य सुखद भावनाओं में परिलक्षित होता है, जबकि खराब स्वास्थ्य, थकान की तरह, एक बच्चे को चिड़चिड़ा और गुस्सेला बनाता है। जब बच्चा बहुत बीमार होता है, तो भावनात्मक व्यवहार अपेक्षाकृत कम होते हैं, लेकिन जैसे-जैसे बच्चा स्वास्थ्य लाभ करता है, चिड़चिड़ापन की प्रवृत्ति बढ़ जाती है । उसकी देखभाल को मुश्किल बना देता है।

भावनात्मक लोगों के साथ संबंध - छोटे बच्चे अक्सर नकल करते हैं। अर्थात उस व्यवहार की नकल करते हैं जो वे दूसरों में देखते हैं। अधिक बार और अधिक पास से जब एक बच्चा ऐसे व्यक्ति के साथ जुड़ा होता है जिसकी भावनाएं अनियंत्रित होती हैं, तो संभावना है कि वह खुद भी वैसा ही व्यवहार सीख जाता है।

7.6 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

बच्चे के परिपक्व होने और बढ़ने में शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक व्यवहार के साथ ही सामाजिक व्यवहार का भी विकास होता है। बच्चे की सामाजिक गतिविधियों एवं विकास में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। ईर्ष्या, शर्म, स्नेह और सहानुभूति व्यवहार के सामाजिक और भावनात्मक रूपों के बीच अंतर्संबंध का परिणाम है। समाजीकरण क्या है? "समाजीकरण सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिबंधों के साथ व्यक्तिगत व्यवहार के लिए वैकल्पिक चैनल प्रस्तुत करने की प्रक्रिया है" यह व्यक्ति के व्यक्तित्व पर औपचारिक और अनौपचारिक सामाजिक समूहों के प्रभाव पर जोर देती है। समाजीकरण की प्रक्रिया पूर्व प्राथमिक स्तर से शुरू होकर, जीवन भर जारी रहती है। औसत वयस्क व्यक्ति समाज के कानूनी और पारंपरिक ढांचे के भीतर संतोषजनक अंतर-व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने में सक्षम होता है। बच्चे को यह व्यवहार सीखने होते है। जिसमें परिवार एवं शिक्षण संस्था का विशेष महत्व होता है। समाजीकरण जैविक और पर्यावरणीय कारकों से उत्पन्न होता है। समाजीकरण आंशिक रूप से सीखी गयी प्रतिक्रियाओं की एक श्रृंखला है। जो बच्चे के सामाजिक विकास में प्रभाव डालती है। आदत का समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। छोटे बच्चे की खेल गतिविधियाँ व्यक्तिगत जीवन से समाजीकरण की ओर एक प्रगतिशील परिवर्तन को दर्शाती हैं। दो महीने की उम्र में, शिशु को एक छोटा ब्लॉक रखने की उम्मीद की जाती है जो उसे दिया जाता है। बाद में वह ब्लॉक और अन्य सरल खिलौनों में हेरफेर करने से संतुष्टि प्राप्त करता है, लेकिन वह अकेले खेलता है। दो साल का बच्चा कमरे के अपने ही कोने में अपने खिलौनों के साथ खेलेगा, भले ही कोई और बच्चा कमरे के दूसरे हिस्से में खिलौनों के साथ खेल रहा हो। बच्चे की एकमात्र जागरूकता उस खिलौने को लेने का उसका प्रयास है जिसके साथ दूसरा खेल रहा है। इस व्यवहार के परिणामस्वरूप खिलौने को लेने के लिए दो बच्चों के बीच रस्साकशी हो सकती है। धीरे-धीरे, 'आप' के विपरीत 'मैं' की अवधारणा बच्चे के लिए पहले की तुलना में अधिक अर्थ रखती है। वह धीरे -धीरे समझौते करना सीखता है। और यह भी स्वीकार करने लगता है कि जो मेरा है वह मेरा है लेकिन जो तुम्हारा है वह तुम्हारा है। जैसे-जैसे बच्चा तीसरे वर्ष में पहुंचता है, उसे पता चलता है कि जो मेरा है वह तुम्हारा भी है। यह इंगित

करता है कि बच्चा समाजीकरण की राह पर सही बढ़ रहा है। सामाजिक विकास का अर्थ होता है, अर्जन या सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार व्यवहार करने की क्षमता। । बालक के सामाजिक विकास के दो पहलू हैं-

- ✓ अपने समाज के विशेष तरीकों को सीखना
- ✓ उत्तरोत्तर अपने सामाजिक क्षितिज का विस्तार करना

बालक अपने समूह में अधिक से अधिक लोगों को शामिल करने के लिए, जिसमें वह 'घर' जैसा महसूस करे उसके लिए 'त्याग' करने को तैयार रहता है। वह स्थानीय समुदाय का नागरिक बन जाता है और लोगों के साथ मिलना-जुलना सीखता है। वह उन विभिन्न समूहों में शामिल होना चाहता है जो उसकी विशेष रुचि के अनुरूप होते हैं। सामाजिक अर्थों में,वह एक उच्च विकसित व्यक्ति बन जाता है। हरलॉक के अनुसार, सामाजिक विकास का अर्थ है सामाजिक संबंधों में परिपक्वता प्राप्त करना। अर्थात समूह मानकों, नैतिकता और परंपराओं के अनुरूप सीखने की प्रक्रिया और एकता, अंतर्संचार और सहयोग की भावना से प्रभावित होना। इसमें नए प्रकार के व्यवहार का विकास, रुचियों में परिवर्तन और नए प्रकार के मित्रों का चुनाव शामिल है। सामाजिक व्यक्ति वह है जो न केवल दूसरों के साथ रहना चाहता है बल्कि जो उनके साथ काम करना चाहता है। कोई भी बच्चा सामाजिक पैदा नहीं होता है। यह क्षमता केवल सभी प्रकार के व्यक्तियों के साथ रहने के अवसरों के परिणामस्वरूप प्राप्त की जा सकती है, खासकर उन वर्षों के दौरान जब समाजीकरण बच्चे के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण है। सामाजिक समूह बच्चे के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते है।

हर बच्चा, अपने अस्तित्व के लिए अन्य वयस्क लोगों पर निर्भर रहता है। निर्भरता जन्म के समय और बचपन के शुरुआती वर्षों में अधिक होती है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, वैसे -वैसे निर्भरता कम होने लगती है। जिसके लिए विभिन्न जीवन कौशल सीखने आवश्यक होते है। जिन्हें सीखकर , वह स्वतंत्र अस्तित्व की और बढ़ने लगता है। फिर भी, उसे समूह और दूसरों के साथ संपर्क की आवश्यकता होती है। बालक जिस सामाजिक समूह पर वह निर्भर रहता है, वह ज्यादातर निर्धारित करता है कि वह किस प्रकार का व्यक्ति होगा। यह प्रभाव विशेष रूप से जीवन के शुरुआती वर्षों अर्थात बाल्यावस्था में अधिक पड़ता है। उस समय बच्चे का परिवार उसके जीवन की सबसे प्रभावशाली सामाजिककरण एजेंसी है। जब वह स्कूल जाता है, तो उसके शिक्षक और उसके साथी उसके व्यक्तित्व और समाजीकरण की प्रक्रिया पर प्रभाव डालना शुरू कर देते हैं।

सहकर्मी प्रभाव शिक्षक प्रभाव से अधिक होता है। जो उसे अपने माता-पिता से स्वतंत्रता प्राप्त करने और अपने आप में एक व्यक्ति बनने में मदद करता है। अपने साथियों के साथ उनके सहयोग के माध्यम से, वह अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र रूप से सोचना सीखता है, अपने परिवार के साथ साझा नहीं किए गए दृष्टिकोणों और मूल्यों को स्वीकार करता है। और उस समूह द्वारा अनुमोदित व्यवहार के रूपों को सीखता है । जिससे वह संबंधित है। जेरशिल्ड के अनुसार, यह एक सार्थक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से वह दूसरों पर पूर्ण निर्भरता से एक ऐसे व्यक्ति में बदल जाता है जो अपने स्वयं के आयु वर्ग के साथ अपनी पकड़ बना सकता है और अपने आयु वर्ग के साथही युवाओं और वयस्कों के साथ आगे बढ़ सकता है।

बाल्यावस्था में सामाजिक विशेषताएँ -बाल्यावस्था की सामाजिक विशेषताओं को इस प्रकार समझ सकते है -

- अभिवावकों /वयस्कों पर बहुत अधिक कठोर, असहयोगी, निष्पक्ष नहीं होने का आरोप लगाना और वयस्क नियंत्रण का विरोध करना,
- अत्यधिक प्रतिस्पर्धी, स्वतंत्र और आत्म मुखर होना,
- परिवार समूहों की तुलना में सहकर्मी समूहों में रुचि रखना,
- सामाजिक होना , दूसरों के साथ काम करना और खेलना पसंद करना , लेकिन दोस्तों के लिये चयनात्मक होने लगना,
- समूह के लिए वफादारी दिखाना,
- अधिक स्थायी दोस्ती करना,
- गत्यात्मक कौशल का विकास,

\परिवार बच्चे के लिए पहला मानव संपर्क प्रदान करता है। यह उसके व्यक्तित्व को आकार देने और दृष्टिकोण को निर्धारित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। बच्चे के व्यक्तित्व का आधार परिवार में बनता हैं। परिवार का वातावरण काफी हद तक माता-पिता द्वारा निर्धारित किया जाता है। एक अच्छा परिवार बच्चे को एक अच्छी तरह से समायोजित व्यक्तित्व विकसित होने में मदद करता है। पारिवारिक कलह, परिवार के सदस्यों के बीच स्नेही संबंधों की कमी, बच्चों में रुचि की कमी, माता-पिता के बीच तनाव और अलगाव, मृत्यु या तलाक, परिवार का टूटना, बच्चों में भावनात्मक अस्थिरता और कुसमायोजन का कारण बनता है। मनोवैज्ञानिक यह भी बताते हैं कि बच्चे के विकास को प्रभावित करने वाले सभी मानवीय संबंधों में, माँ का व्यक्तित्व प्रमुख होता है। गर्भावस्था के प्रति उसके दृष्टिकोण का बहुत महत्व है। पति, कैरियर, उसके सामाजिक जीवन और विशेष रूप से बच्चे के प्रति उसके दृष्टिकोण और प्यार, मान्यता और अनुशासन का विशेष महत्व है । बचपन में मां-बच्चे का रिश्ता बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि बच्चा अपनी खुशी के लिए लगभग पूरी तरह से मां पर निर्भर होता है। बच्चे को माँ के स्नेह से बहुत आवश्यक भावनात्मक सुरक्षा प्राप्त होती है। बालक को सुदृढ़ व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिए माता-पिता की सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

अभ्यास प्रश्न -अपनी प्रगति जानिये

3. भावनात्मक अभिव्यक्ति के मुख्य प्रकार हैं

A. भय,

B. क्रोध

C. प्रेम

D. उपरोक्त सभी

4. समाजीकरण की प्रक्रिया ---------स्तर से शुरू होकर जीवन भर चलती है

A. पूर्व प्राथमिक
B. प्राथमिक
C. उच्च प्राथमिक
D. माध्यमिक

7.7 सारांश - यह अवस्था जीवन का स्वर्णिम काल होती है। बाल्यावस्था शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक रूप से अपरिपक्व अवस्था होती है। sशारीरिक और मानसिक अपरिपक्वता की पूरी अवधि को बाल विकास कहा जाता है। बच्चे के जन्म से पूर्व तथा जन्म के उपरांत के समय का प्रभाव बाल्यावस्था में पड़ता है। बच्चे के व्यक्तित्व का आधार परिवार में बनता हैं। परिवार का वातावरण काफी हद तक माता-पिता द्वारा निर्धारित किया जाता है। एक अच्छा परिवार बच्चे का एक अच्छी तरह से समायोजित व्यक्तित्व विकसित करने में मदद करता है। शारीरिक कारक मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करते हैं और भावनात्मक कारक शारीरिक एवं सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **B**
2. **D**
3. **D**
4. **A**

7.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बाल्यावस्था का विस्तृत वर्णन कीजिए.

Elaborately discuss Childhood.

2. बाल्यावस्था में शारीरिक एवं मानसिक विकास का क्या महत्व है ?स्पष्ट कीजिए.

What is importance of Physical & Mental development during Childhood? Clarify

3. बाल्यावस्था में भावात्मक एवं सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को वर्गीकृत कीजिए.

Classify factors influencing emotional & Social development in Childhood.

संदर्भ सूची

https://chatgpt.com/?utm_source=google

Hurleck, E., Child Development, McGraw-Hill Co. Inc., New York, 1950, pp. 257-60.

John Gabriel, Children Growing Up, London University Press, 1969, p. 138.

Dinkmeyer C. Don, Child Development, op. cit.

Schafer, H.R. and Emerson, P., The Development of Social Attachments in Infancy,

Tutto,Kundu (2001),Educational Psychology, Sterling Publishers, New Delhi

इकाई- 8 किशोरावस्था- शारीरिक, मानसिक, भावात्मक तथा सामाजिक विकास (Adolescence -Physical, Mental, Emotional and Social Development)

8.1 परिचय

8.2 इकाई के उद्देश्य

8.3 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

8.4 किशोरावस्था में मानसिक विकास

अपनी प्रगति जानिए

8.5 किशोरावस्था में भावात्मक विकास

8.6 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

अपनी प्रगति जानिए

8.7 सारांश

8.8 प्रश्नों के उत्तर

8.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

संदर्भ सूची

8.1 परिचय

किशोरावस्था मानव के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। सामान्यतया यह अवस्था बारह(12) से अठारह (18) वर्ष तक रहती है। परंतु किसी -किसी व्यक्ति में यह जल्दी शुरू हो सकती है तथा देर तक चल सकती है। यह अवस्था जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था है। शारीरिक,मानसिक,भावात्मक एवं सामाजिक विकास के लिए यह अत्यंत महत्व है। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक शक्तियों का विकास तीव्र गति से होता है। तथा किशोर/किशोरियों में कल्पना शक्ति तथा भावनात्मक एवं सामाजिक विकास तेजी से होने लगता है। इस अवस्था में ऊर्जा का स्तर तथा सीखने की इच्छा बेहतर होती है। किशोरावस्था में सभी प्रकार के सौंदर्य जैसे -

कलात्मक अभिव्यक्ति, रचनाशीलता के प्रति रुचि उत्पन्न होने लगती है तथा वे नये- नये एवं उच्च आदर्शों से प्रभावित होने लगते है। एक प्रकार से उनके भविष्य की पूरी रूपरेखा किशोरावस्था में बनने लगती है। इस काल में उनके अंदर असीमित ऊर्जा एवं संभावनाएं छिपी रहती है। यह काल जीवन की दिशा निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे अपने सपनों को साकार करने का प्रयास करते है। इस अवस्था में सही निर्देशन एवं परामर्श अत्यंत आवश्यक है। स्वीकृति, अवसर, प्यार, अपनत्व, सहयोग एवं प्रोत्साहन तथा सकारात्मक अनुशासन उन्हें धीरे-धीरे स्वतंत्र अस्तित्व की और बढ़ने में सहायता करता है। यह अवस्था सामान्य शारीरिक विकास के साथ ही जननांगों की परिपक्वता की अवस्था भी है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जो उनके जीवन में नये अनुभव लाती है। उनमें नई ऊर्जा और उत्साह के साथ ही कई परेशानियाँ भी आती हैं। जैसे - बालिकाओ में मासिक धर्म जिसमें उन्हें अनेक पीड़ादायक अनुभवों से गुजरते हुये नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जो उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार करता है। यह अवस्था उन्हें 'कुछ होने'(to be) के लिये प्रेरित करती है। वे जीवन में कुछ लक्ष्य निर्धारित कर अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा उसे प्राप्त करने के लिए लगा देते है या उनका झुकाव काम वासना की तरफ होने लगता है। इस अवस्था में सहयोग,प्रोत्साहन,परिश्रम तथा अनुशासन एक अच्छा इंसान बनने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते है। किशोरावस्था में शरीर के अंगों में धीरे-धीरे परिपक्वता आने लगती है। जैसे- हड्डियों में दृढ़ता, शरीर की लंबाई ,भार तथा आकार बढ़ने लगता है। भूख अधिक लगती है तथा खाने की अधिक इच्छा होती है। शरीर के विभिन्न अंगो के आकार एवं भार में बढ़ने के कारण पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस अवस्था में उनके लिए संतुलित आहार अत्यंत आवश्यक है। आवश्यकता के अनुसार पोषण तथा संतुलित आहार किशोरावस्था में नितांत आवश्यक है। संतुलित आहार एवं पोषण की कमी विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक विकारों को जन्म देती है। शरीर में पायी जानी वाली अन्तःस्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन्स के कारण प्रजनन अंगों का विकास तेजी से होने लगता है। किशोरावस्था में कामचेष्टा एक स्वाभाविक लक्षण है। यह बृद्धि एवं विकास का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। जो दर्शाता है बालक/बालिका स्वाभाविक रूप से परिपक्व अवस्था की ओर बढ़ रहे हैं। ये सामान्य लक्षण है। किशोरावस्था में किशोर/किशोरियों को अपने ही समान लिंग के साथी से विशेष प्रेम होता

है अर्थात उनमें घनिष्ठ मित्रता भी पायी जाती है। कभी-कभी वे अपने आपको अत्यंत महान व्यक्ति मानने लगते है और दूसरी ओर अपने ही साथियों को शत्रु रूप में भी देखने लगते है।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020" ने स्कूली शिक्षा (जिसमें मुख्यतया किशोरावस्था के शिक्षार्थी शामिल होते है) में अनुभवात्मक एवं खोज आधारित सीखने के अवसरों को शामिल करने तथा बढ़ाने की विशेष सिफारिश की है। तथा इस दिशा में निरंतर कार्य किया जा रहा है।

8.2 इकाई के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप;

- किशोरावस्था को समझ सकेंगे,
- किशोरावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास को स्पष्ट कर सकेंगे,
- किशोरावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास में प्रभाव डालने वाले कारकों को पहचान सकेंगे,
- किशोरावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास को वर्गीकृत कर सकेंगे,
- किशोरावस्था में शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक एवं सामाजिक विकास के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे,

8.3 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

यह वह अवस्था है जो तरुणवस्था से प्रारंभ होकर और शारीरिक बृद्धि एवं विकास की सामान्य समाप्ति के साथ पूर्ण होती है। इस अवस्था में बालक बचपन से निकलकर है और वयस्कता में शामिल हो जाता है। यह औसत व्यक्ति के लिए लगभग सात या आठ साल तक होती है। कई मामलों में इसकी अवधि में बड़ी भिन्नता भी पाई जाती है। इस अवधि के दौरान सामान्य रूप से शारीरिक विकास पहले तेजी से होता है तथा धीरे-धीरे फिर कम होने लगता है, साथ ही लैंगिक विकास परिपक्वता की ओर बढ़ने लगता है। जो मानव शरीर को

प्रजनन के लिए तैयार करता है। जो सभी जीवधारियों का एक मूलभूत लक्षण है। इस अवस्था बालक के पास अत्यधिक ऊर्जा होती है जिसको सही रास्ते लगाना बहुत महत्वपूर्ण होता है। यह ऊर्जा नई उपलब्धि प्राप्त करने की दिशा में लगना महत्वपूर्ण होता है अन्यथा किशोर/किशोरियों का झुकाव लेंगिक संबंधों की और होने लगता है। इस अवधि में बालक कुछ भिन्न आवश्यकताओं को महसूस करने लगता है जो बुनियादी जरूरतों से उत्पन्न होती हैं। "हॉलिंगवोंर्थ" के अनुसार, वे परिवार पर निर्भरता से मुक्ति तथा विपरीत लिंग के साथ संबंध, आत्म-समर्थन तथा जीवन के सिद्धांत की आवश्यकता महसूस करते हैं।

शारीरिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शारीरिक वृद्धि भोजन ,सामान्य स्वास्थ्य, ताजी हवा, जलवायु एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है। शारीरिक वृद्धि केवल एक कारक के कारण नहीं होती है। बल्कि यह विभिन्न कारकों का समूह है, जिनमें से प्रत्येक दूसरे से संबंधित और अन्योन्याश्रित होते हैं। शारीरिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, जैसे -भोजन, हर उम्र में, लेकिन विशेष रूप से किशोरावस्था में, मानव के स्वस्थ एवं संतुलित विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार आवश्यक है। यह केवल खाये गए भोजन की मात्रा नहीं है अपितु भोजन की पोष्टिकता भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। किशोरावस्था में शरीर को कार्बोहाइड्रैट तथा प्रोटीन की आवश्यकता अधिक होती है। अतः उनके आहार में इनकी मात्रा अधिक होनी आवश्यक है। तथा विटामिन एवं खनिज लवण की आवश्यक मात्रा अच्छे शारीरिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। मौसमी फल एवं सब्जियां विटामिन एवं खनिज लवण के बेहतर स्रोत है। जिनका सेवन किशोरावस्था में स्वस्थ बृद्धि एवं विकास के लिये नितांत आवश्यक है।

ताजी हवा और सूरज की रोशनी- यह शरीर के आकार, सामान्य स्वास्थ्य स्थिति और उम्र की परिपक्वता में सकारात्मक प्रभाव डालती है। ताजी हवा और सूरज की रोशनी की पर्याप्त मात्रा स्वस्थ शरीर के लिये महत्वपूर्ण है।

नींद – स्वस्थ शरीर के लिए नींद उतनी ही आवश्यक है जितना कि अच्छा भोजन, अच्छी नींद तब तक संभव नहीं है जब तक कि बच्चे के पास सोने के लिए एक आरामदायक स्थान न हो। जहां वह प्रकाश या शोर के बिना सो सके। सोते समय उन्हें शोर और प्रकाश से मुक्त स्थान मिले इसके पूरे प्रयास किए जाने चाहिए । नींद

की मात्रा उम्र के साथ बदलती रहती है। किशोरावस्था में 'आठ घंटे' की नीद अच्छे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। जहां तक संभव हो सोने का समय नियत होना चाहिए। नियत समय में सोना तथा पर्याप्त नींद अच्छे स्वास्थ्य के लिए महातूपूर्ण होते है।

शारीरिक अभ्यास - किशोरावस्था में शारीरिक गतिविधियां स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए लड़कियों तथा लड़कों दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक है। विभिन्न खेल, एन० सी०सी०, एन०एस०एस०, स्काउट गाइड आदि गतिविधियां किशोरों को शारीरिक रूप से स्वस्थ तथा बलशाली बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। शारीरिक गतिविधियां बेहतर नीद के लिए भी लाभकारी होती है। जो शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती है।

8.4 किशोरावस्था में मानसिक विकास

किशोरावस्था में बौद्धिक विकास तेजी से होता है। किशोरों की चिंतन शक्ति अच्छी होती है। इसके कारण किशोरावस्था में पर्याप्त बौद्धिक कार्य के अवसर मानसिक विकास में सकारात्मक प्रभाव डालते है। किशोर बालक में अभिनय करने, भाषणा देने तथा लेख लिखने की सहज रुचि होती है। अतएव शिक्षण एवं शिक्षण सहगामी क्रियाकलापों में इस प्रकार की गतिविधियाँ किशोरों के बौद्धिक विकास में सहायता करती हैं।किशोरावस्था में मानसिक विकास तीव्र गति से होता है। उनके अंदर अत्यधिक ऊर्जा होती है। इस ऊर्जा का सकारात्मक कार्यों में प्रवाहन उनके विकास में सहायक होता है। यदि ऊर्जा सकारात्मक कार्यों में न लगे तो वह आसानी से नकारात्मक कार्यों में लगने लगती है। यह मस्तिष्क की संरचना और कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाता है, जिससे सोचने, निर्णय लेने, भावनाओं को समझने और सामाजिक व्यवहार में बदलाव आता है। जिसमें मुख्य रूप से किशोरों की सोचने और समझने की क्षमता में महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं-

अमूर्त सोच- किशोरावस्था में बालक सैद्धांतिक और कल्पनाशील ढंग से सोचने लगते हैं।

आत्म-चिंतन -किशोर स्वयं की क्षमताओं, कमजोरियों और व्यक्तित्व पर विचार करने लगते हैं।

तर्क शक्ति - वे तथ्यों का विश्लेषण कर कारण और प्रभाव को समझने की कोशिश करते हैं।

निर्णय लेने की क्षमता - यह विकासशील होती है, लेकिन कई बार आवेग में आकर निर्णय लेने की प्रवृत्ति भी बनी रहती है।निर्णय लेने की क्षमता धीरे-धीरे बढ़ने लगती है।

समस्या समाधान कौशल- वे समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने और हल करने के कौशलों का विकास होने लगता है।

जैविक कारक -मस्तिष्क का विकास और हार्मोनल परिवर्तन किशोरों की मानसिक वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किशोरावस्था में प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स विकसित होता है, जो निर्णय लेने, समस्या समाधान, और भावनाओं के नियंत्रण में मदद करता है।

हार्मोनल परिवर्तन- टेस्टोस्टेरोन और एस्ट्रोजन जैसे हार्मोन मानसिक स्थिति और भावनाओं को प्रभावित करते हैं। जिससे कभी-कभी मूड स्विंग्स और आवेगपूर्ण व्यवहार देखने को मिलते हैं।

अनुवांशिकता- बुद्धिमत्ता, सोचने की क्षमता और मानसिक स्वास्थ्य आंशिक रूप से अनुवांशिक होते हैं।

सामाजिक कारक- किशोरों का मानसिक विकास उनके सामाजिक परिवेश से अत्यधिक प्रभावित होता है। समाज की परम्पराएं, मूल्य,आदर्श उनके सामाजिक विकास में प्रभाव डालते है।

परिवार का प्रभाव- माता-पिता के आपस में संबंध, परिवार के सदस्यों के आपसी संबंध और परिवार का सहयोग किशोरों के मानसिक विकास को प्रभावित करते है। परिवार के सदस्यों के मध्य अच्छे संबंध, सहयोग की भावना किशोरों में मानसिक स्थिरता और आत्मविश्वास को बढ़ाने में सकारात्मक प्रभाव डालती है।

मित्रों और सहकर्मियों का प्रभाव- दोस्तों का व्यवहार, उनके विचार और समूह का दबाव किशोरों के निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करता है।

शिक्षा और स्कूल का वातावरण- अच्छी शिक्षा और सहयोगी शिक्षक मानसिक विकास को सकारात्मक दिशा देते हैं। जबकि नकारात्मक माहौल आत्म-संदेह पैदा करता है।

भावनात्मक कारक- भावनात्मक स्थिति मानसिक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

आत्म-चेतना- किशोर अपने व्यक्तित्व और भावनाओं को समझने की कोशिश करते हैं। उनमें एक तरह से आत्म चेतना का विकास होने लगता है।

तनाव और चिंता- किशोरावस्था में परीक्षा, भविष्य की अनिश्चितता,और सामाजिक दबाव मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं। जो कभी-कभी तनाव एवं चिंता भी उत्पन्न करते हैं। किशोरों के विकास में समर्थन एवं स्वतंत्रता दोनों महत्वपूर्ण हैं।

आत्म-संयम और भावनाओं का नियंत्रण- किशोरों के लिए आत्म नियंत्रण तथा अपनी भावनाओं को नियंत्रित करना सीखना बहुत लाभकारी होता है। जो उनके व्यक्तित्व के बेहतर विकास में सहायक होता है।

पर्यावरणीय कारक- बाहरी परिस्थितियाँ और संसाधन किशोरों के मानसिक विकास को गहरा प्रभाव डालते हैं। पर्यावरण का मानव की मानसिक स्थिति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ,स्वच्छ एवं संतुलित पर्यावरण मानसिक रूप से स्वस्थ मानव के विकास के लिए आवश्यक है।

परिवार की आर्थिक स्थिति- आर्थिक स्थिरता बेहतर शिक्षा और मानसिक विकास को बढ़ावा देती है। जबकि गरीबी एवं अभाव मानसिक तनाव का कारण बन सकते है। जो किशोरों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में बाधक होती है।

डिजिटल मीडिया और टेक्नोलॉजी- सोशल मीडिया, वीडियो गेम्स और इंटरनेट का अत्यधिक उपयोग किशोरों की एकाग्रता, सोचने की क्षमता और सामाजिक संपर्क को प्रभावित कर सकता है।

सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यताएँ- समाज के नियम, परंपराएँ, और सांस्कृतिक अपेक्षाएँ किशोरों के मानसिक विकास की दिशा को प्रभावित करती हैं।

व्यक्तिगत कारक- किशोरावस्था में मानसिक विकास एवं वृद्धि उनके व्यक्तिगत अनुभवों और व्यक्तित्व पर भी निर्भर करते है।

आत्म-अभिव्यक्ति - किशोर अपनी रुचियों और क्षमताओं को विकसित करके मानसिक रूप से मजबूत बनते हैं। इसीलिए किशोरों को आत्म अभिव्यक्ति के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध करवाने का प्रयास किया जाना आवश्यक है।

स्वास्थ्य और पोषण- संतुलित आहार और अच्छी नींद मस्तिष्क के विकास को प्रभावित करते हैं। मानसिक विकास के लिए पोषण की विशेष भूमिका होती है।

जीवन के अनुभव- किसी भी प्रकार का बचपन का आघात या सकारात्मक एवं नकारात्मक अनुभव किशोरों के मानसिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक आपस में जुड़े होते हैं। जैविक, सामाजिक, भावनात्मक, पर्यावरणीय और व्यक्तिगत कारकों का संतुलन किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सकारात्मक वातावरण, सही मार्गदर्शन और भावनात्मक समर्थन से किशोरों को बेहतर मानसिक विकास की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न -अपनी प्रगति जानिये-

1. किशोरावस्था ----- के बाद प्रारंभ होती है
   A. बाल्यावस्था
   B. युवावस्था
   C. प्रौढावस्था
   D. शैशवावस्था
2. किशोरावस्था में पर्याप्त मात्रा में -------आहार आवश्यक होता है।
   A. स्वादिष्ट
   B. संतुलित
   C. तेल में बना हुआ
   D. सादा

8.5 किशोरावस्था में भावात्मक विकास

किशोरावस्था में मानव के विभिन्न भावों का विकास तेजी से होता है। वह अपनी प्रिय वस्तु के लिए सभी कुछ त्याग करने को तैयार हो जाते है। इस काल में उनके लिये लक्ष्य निर्धारण अत्यंत उपयोगी होता है। जिससे वे अपनी ऊर्जा को कठिन परिश्रम तथा अच्छी आदतों के निर्माण में लगाकर उन उच्च लक्ष्यों

को प्राप्त कर सकते है। जो उन्हें जिम्मेदार नागरिक एवं समाज के उपयोगी सदस्य बनाने में सहायक होते हैं। वे सामान्यतया असाधारण कार्य करना चाहते हैं तथा दूसरों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं । इसके लिये वे कठिन चुनौतियों एवं जोखिमपूर्ण कार्यों को भी स्वीकार कर लेते हैं। जब वह जोखिमपूर्ण कार्य में सफल होते है, तो अपने जीवन को सार्थक मानते है और जब इसमें वह असफल हो जाते है तो वे अपने जीवन को नीरस एवं अर्थहीन मानने लगते हैं। ऐसे समय में उन्हें सहयोग एवं प्रेरणा की अत्यंत आवश्यकता होती है। जो उनके व्यक्तित्व विकास में सकारात्मक प्रभाव डालती है। किशोर बालक में बातों को बढ़ा-चढ़ा कर रखने की प्रवृत्ति भी अत्यधिक होती है। वह सदा नये -नये प्रयोग तथा अनुभव प्राप्त करना चाहते है। घूमने में उनकी बड़ी रुचि रहती है ,जिससे उन्हें जीवन के वास्तविक अनुभव प्राप्त होते हैं। अनुभवात्मक अधिगम एवं खोज आधारित अधिगम के अवसर सीखने के लिये प्रेरित करते हैं। इस अवस्था में किशोरों की भावनाएँ गहरी और तीव्र होती हैं। उनमें भावनात्मक झुकाव अधिक पाया जाता है। हार्मोनल बदलावों के कारण भावनाएँ अस्थिर हो सकती हैं। भावनात्मक संतुलन बनाना सीखना किशोरावस्था में विशेष महत्व रखता है। जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित बिन्दु शामिल होते है -

- आत्म-चेतना- वे अपने विचारों, इच्छाओं और पहचान को लेकर अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। अतः उन्हें इनके लिए अवसर दिया जाना उपयोगी होता है।
- स्वतंत्रता की भावना- वे अपनी पहचान स्थापित करने के लिए स्वतंत्र होने की इच्छा रखते हैं। धीरे धीरे उन्हें स्वयंत्र अस्तित्व के छोड़ना इस अवस्था में आवश्यक है जो उनमें निर्णय लेने तथा जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करता है।
- भावनाओं पर नियंत्रण- धीरे-धीरे वे अपनी भावनाओं को प्रबंधित करना सीखते हैं।

- तनाव और चिंता- पढ़ाई, करियर और समाज में स्वीकार्यता को लेकर वे तनावग्रस्त हो जाते हैं। अतः इस अवस्था में सहयोग एवं प्रोत्साहन उन्हें विपरीत हालातों का सामना करना सिखाता है।

किशोरावस्था में भावात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक-भावात्मक विकास किशोरों के आत्म-नियंत्रण, आत्म-जागरूकता, और दूसरों के साथ संबंधों को समझने की क्षमता को दर्शाता है। इस विकास को कई कारक प्रभावित करते हैं, जिनका प्रभाव किशोरों के आत्मविश्वास, तनाव प्रबंधन, और भावनात्मक स्थिरता पर पड़ता है।

जैविक कारक-इस अवस्था में हार्मोन में बदलाव के कारण मूड स्विंग्स और भावनात्मक अस्थिरता देखने को मिलती है। भावनाओं को नियंत्रित करने वाला मस्तिष्क का भाग पूरी तरह विकसित नहीं होता, जिससे किशोर कभी-कभी आवेगपूर्ण निर्णय लेते हैं। माता-पिता से मिली भावनात्मक प्रवृत्तियाँ, जैसे – चिंता, आत्म-नियंत्रण, और धैर्य किशोरों के भावात्मक विकास को प्रभावित कर सकती हैं।

पारिवारिक कारक-माता-पिता का व्यवहार, प्यार, समर्थन और मार्गदर्शन किशोरों की भावनात्मक स्थिरता को बढ़ाता है। सकारात्मक और सहयोगी पारिवारिक माहौल किशोरों को आत्मविश्वासी बनाता है, जबकि तनावपूर्ण माहौल (झगड़े, तलाक, घरेलू हिंसा) नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। नकारात्मक अनुशासन से बालक/बालिका को विद्रोही बना सकता हैं, जबकि बहुत अधिक ढील देने से उनमें जिम्मेदारी की भावना का विकास बाधित होता है। **भावनात्मक कारक- आत्म-सम्मान और आत्म-चेतना-** किशोर अपनी क्षमताओं और कमजोरियों को पहचानने की कोशिश करते हैं, जिससे उनका आत्म-सम्मान प्रभावित होता है।

संवेदनशीलता: किशोर अधिक भावुक होते हैं और आलोचना या अस्वीकृति से जल्दी प्रभावित हो सकते हैं। छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा, उदासी, या अति-उत्साह जैसी भावनाएँ तीव्र होने लगती हैं।

पर्यावरणीय कारक-डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया पर तुलना और स्वीकार्यता की चाह किशोरों की भावनात्मक स्थिरता को प्रभावित कर सकती है। उच्च प्रदर्शन की अपेक्षाएँ भावनात्मक तनाव का कारण बन सकती हैं।

सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ,सामाजिक और धार्मिक मूल्यों के अनुसार जीवन जीने की अपेक्षा किशोरों की भावनाओं पर प्रभाव डाल सकती है।

व्यक्तिगत कारक- कुछ किशोर अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने में सक्षम होते हैं, जबकि कुछ जल्दी गुस्सा या उदास हो जाते हैं। जीवन के अनुभव जैसे -कोई बड़ा आघात, माता-पिता का तलाक, किसी प्रियजन की मृत्यु, या शारीरिक शोषण किशोरों की भावनात्मक स्थिति को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। खेल और रचनात्मक गतिविधियाँ **जैसे -**संगीत, नृत्य, पेंटिंग, और खेलकूद से किशोर अपने तनाव को कम कर सकते हैं और भावनात्मक संतुलन बनाए रख सकते हैं।

भावनात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक आपस में जुड़े होते हैं। जैविक, पारिवारिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और व्यक्तिगत कारकों का संतुलन किशोरों की भावनात्मक स्थिरता और आत्मनिर्भरता में मदद कर सकता है। माता-पिता, शिक्षक, और समाज का सही मार्गदर्शन किशोरों को मानसिक रूप से मजबूत और आत्मविश्वासी बनाने में सहायक हो सकता है

8.6 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

किशोरावस्था **में** सामाजिक भावना प्रबल होती है। वह समाज का सम्मानित सदस्य बनकर जीना चाहता है। वह अपने अभिभावकों /शिक्षकों से भी सम्मान की आशा करता है। उसके साथ 10, 12 वर्ष के बालकों जैसा व्यवहार करने से, उसमें द्वेष की भावना उत्पन्न होने लगती है। जिससे उसकी शक्ति का अनावश्यक क्षय होने लगता है। और अनेक प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बालक का जीवन दो नियमों के अनुसार विकसित होता है,

- परिपक्वता का नियम
- सीखने का नियम

बालक के समुचित विकास के लिए, उसकी रुचि के अनुसार सीखने के अवसर अत्यंत आवश्यक है। सीखने का कार्य तभी सफल होता है जब सीखना सहज रूप से होता है। सहज रूप से सीखना ,मानसिक विकास के लिए आवश्यक है। किशोरावस्था में बुद्धि अनुभव के साथ विकसित होती है और उसमें परोपकार, दयालुता तथा बहादुरी के गुण धीरे-धीरे दिखने लगते हैं। उसकी इच्छाओं का विकास क्रमिक होता है। पहले उसकी आधारभूत इच्छाएँ जाग्रत होती हैं और जब ये समुचित रूप से पूरी होती है तभी उच्च कोटि की इच्छाओं का आविर्भाव होता है। यह मानसिक परिपक्वता के नियम के अनुसार है। ऐसे ही व्यक्ति के चरित्र में स्थायी सद्गुणों का विकास होता है और ऐसा ही व्यक्ति अपने कार्यों से समाज को स्थायी लाभ पहुँचाता है। किशोरावस्था में सामाजिक संबंधों का विकास तेजी से होता है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास में विभिन्न बातों का प्रभाव पड़ता है जैसे –

मित्रता- किशोरों का अधिक झुकाव दोस्तों की ओर रहता है। इस अवस्था में बच्चा धीरे- धीरे परिपक्वता (maturity) की तरफ बढ़ते हुये स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने की और अग्रसर होने लगता है। वे परिवार की तुलना में मित्रता को अधिक महत्व देने लगते है। जो स्वतंत्र अस्तित्व की और बढ़ने का एक सामान्य प्रक्रिया है। इसीलिए इस अवस्था में अच्छी संगति का विशेष महत्व होता है।

परिवार से स्वतंत्रता- किशोरावस्था में किशोर अपनी पहचान बनाने के लिए परिवार से कुछ हद तक दूरी बना सकते हैं। जो उनके विकास का एक स्वाभाविक चरण है । अतः आवश्यक है की परिवार द्वारा उन्हें स्वतंत्रता के अवसर उपलब्ध कराये जाने महत्वपूर्ण हैं।

समाज में स्वीकार्यता- वे समाज में अपनी जगह और पहचान बनाने की कोशिश करते हैं। जिसके लिये वे कुछ ऐसा कार्य करना चाहते है जिसमें उनकी रुचि हो तथा उन्हें अपनी प्रतिभा को अभिव्यक्त करने का अवसर मिले। अवसर मिलने पर वे सकारात्मक रास्ते पर चल कर समाज के महत्व को समझते हैं। जो उनके एवं समाज दोनों के लिए उपयोगी होता है। साथियों के दबाव में वे कई बार सही अथवा गलत निर्णय भी ले सकते हैं। किशोर अपने माता-पिता के निर्देशों की उपेक्षा कर मित्रों या समाज की बातों को सही मानने लगते हैं। इसी लिए आवश्यक है कि स्वस्थ व्यक्ति के विकास के

महत्व को समझा जाये जिससे स्वस्थ समाज का विकास हो सकता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः स्वस्थ समाज का विशेष महत्व है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक- किशोरावस्था में सामाजिक विकास का अर्थ है – समाज के अन्य सदस्यों के साथ संबंध स्थापित करना**,**समाज में अपनी पहचान बनाना, सामाजिक मूल्यों को समझना तथा व्यवहार में लाना **।** यह विकास कई कारकों से प्रभावित होता है, जो किशोरों के व्यवहार, आत्म-विश्वास और निर्णय लेने की क्षमता को आकार देते हैं। समाज के सकारात्मक एवं सुरक्षित वातावरण किशोरों के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक इस प्रकार हैं –

पारिवारिक कारक- माता-पिता की परवरिश, सहयोगी और समझदार माता-पिता किशोरों में सकारात्मक एवं अच्छे सामाजिक गुण विकसित करते है। जबकि अत्यधिक नियंत्रण या उपेक्षा से उनमें विद्रोह या असुरक्षा की भावना पनपने लगती है। एक सकारात्मक और सामंजस्यपूर्ण परिवार किशोरों को आत्म-निर्भर और आत्म-विश्वासी बनाता है। जबकि घरेलू कलह या हिंसा उन्हें सामाजिक रूप से अलग-थलग करती है। जो उनके स्वस्थ विकास में बाधा बन सकता है। बड़े भाई-बहन सामान्यतया छोटों के लिए प्रेरणा स्रोत बन जाते हैं और वे बड़ी सहजता से छोटों को सामाजिक कौशल भी सिखा देते हैं। बड़े परिवार जहां भाई-बहनों की संख्या ज्यादा हो वहाँ सहयोग के साथ -साथ संघर्ष भी बढ़ जाते है। जिनका उनके व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

सहकर्मी और मित्र समूह का प्रभाव-अच्छे मित्र सकारात्मक व्यवहार और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देते हैं, जबकि गलत संगति नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। जिसका नकारात्मक गुण जैसे -चोरी ,झूठ बोलना ,बलात्कार एवं नियमों की अवहेलना आदि को बढ़ाने में विशेष योगदान होता है। किशोर अक्सर अपने दोस्तों के अनुसार व्यवहार करने की कोशिश करते हैं। जिससे वे सही या गलत फैसले में अंतर नहीं समझ पाते हैं। समाज में स्वीकार्यता पाने की इच्छा उनके सामाजिक कौशल और आत्मविश्वास को बढ़ाने में अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इस अवस्था बच्चों को विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में प्रतिभाग के अवसरों का विशेष महत्व होता है।

स्कूल और शिक्षा का प्रभाव- कुशल शिक्षक किशोरों में अनुशासन, सहानुभूति, आत्म नियंत्रण और सामाजिक जिम्मेदारी का विकास करते हैं। तथा उनमें उत्तरदायित्व की भावना के विकास में सहयोग करते है। जो उनके व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। सहयोगी और समावेशी स्कूल का वातावरण किशोरों में आत्म-सम्मान और सामाजिक कौशल को बढ़ावा देता है। अतः यह आवश्यक है की शिक्षण संस्था जहां से भी वे शिक्षा प्राप्त करे वहाँ का वातावरण सहयोगी और समावेशी हो। उच्च प्रदर्शन वाले किशोरों को समाज में अधिक स्वीकृति और पहचान मिलती है, जो उन्हें और बेहतर करने के लिए प्रेरित करती है। जबकि शैक्षणिक असफलता किशोरों में आत्म विश्वास काम कर देती है जो आत्म-संदेह की प्रवृति को बढ़ावा देती है।

सामाजिक और सांस्कृतिक कारक- समाज की मान्यताएँ और रीति-रिवाज किशोरों के सामाजिक दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं। इसीलिए समाजोपयोगी तथा प्रासंगिक परंपराओं को बढ़ावा एवं रूढ़िवादी परंपराओं को दूर करने के लिये विभिन्न शिक्षण एवं शिक्षणेत्तर गतिविधियां आयोजित की जाती हैं। धार्मिक और नैतिक मूल्य किशोरों के सामाजिक व्यवहार और निर्णय लेने की प्रक्रिया को संवर्धित करते हैं। धार्मिक आस्था व्यक्तिगत तथा नैतिक मूल्य सामाजिक जीवन को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण होते है। कुछ समाजों में लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग सामाजिक अपेक्षाएँ होती हैं, जिनका सीधा प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर दिखायी देता है।

डिजिटल मीडिया और इंटरनेट का प्रभाव- वर्तमान समय में किशोर अपनी सामाजिक पहचान बनाने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग तेजी से कर रहे हैं। जो उन्हें सामाजिक पहचान तो दिला रहा है साथ ही उनके आत्म-सम्मान और वास्तविक दुनिया के संबंधों को भी प्रभावित कर रहा है। जो वास्तविक जीवन के अनुभवों के बिल्कुल अलग होते हैं। इसका प्रभाव उनके जीवन कौशलों एवं सामाजिक कौशलों पड़ रहा है। इंटरनेट पर बने रिश्ते वास्तविक जीवन की सामाजिकता को प्रभावित कर रहे हैं। डिजिटल लत ,अत्यधिक ऑनलाइन गेमिंग या सोशल मीडिया का उपयोग किशोरों को वास्तविक दुनिया से दूर करने में प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।जबकि डिजिटल माध्यमों का समुचित उपयोग सीखने की संभावनाओं को नया विस्तार देता है।

व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक कारक- आत्मविश्वास एक सामाजिक प्रत्यय है। जो सामाजिक अंत:क्रियाओ से ही विकसित होता है। आत्म-विश्वासी किशोर/किशोरियाँ अधिक सामाजिक होते हैं ।और यह उन्हें अधिक क्रियाशील एवं सकारात्मक बनाता है। जबकि संकोची या आत्म-संदेह से ग्रसित व्यक्ति अपनी क्षमताओं के प्रदर्शन एवं अभिव्यक्ति में पीछे रह सकते हैं। किशोरावस्था में नियंत्रित रूप में सामाजिक गतिविधियों में शामिल होना आत्म विश्वास को बढ़ाने में सहायक होता है। भावनात्मक रूप से संतुलित किशोर अपनी भावनाओं पर नियंत्रण कर सकते है तथा हालातों को ध्यान में रखकर बेहतर निर्णय ले सकते है। बेहतर संबंध स्थापित कर सकते हैं,जबकि अत्यधिक गुस्सा या उदासी उनके सामाजिक संबंधों को प्रभावित कर सकता है।भावनात्मक स्थिरता संतुलित व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संपन्न परिवारों के किशोरों को अधिक सामाजिक अवसर मिलते हैं। जो उनके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। जबकि आर्थिक रूप से कमजोर किशोरों को कई सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिससे उनका सामाजिक विकास बाधित होता है जो कई बार नकारात्मक प्रवर्तियों को बढ़ावा देता है। अच्छी शिक्षा, खेल, कला, मनोरंजन और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के अवसर किशोरों के सामाजिक कौशलों को बेहतर बनाने में सहायक होते हैं। किशोरावस्था में सामाजिक विकास कई कारकों पर निर्भर करता है, जैसे – पारिवारिक माहौल, मित्रों का प्रभाव, स्कूल का वातावरण, डिजिटल मीडिया, आर्थिक स्थिति और व्यक्तिगत गुण। यदि किशोरों को सही मार्गदर्शन, सहयोग और स्वस्थ सामाजिक वातावरण मिले, तो वे आत्म-निर्भर, आत्म-विश्वासी और समाज के प्रति जागरूक नागरिक बन सकते हैं। जो शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

अभ्यास प्रश्न -अपनी प्रगति जानिये

3. किशोरावस्था में भावात्मक विकास के बिन्दु हैं

A. आत्म-चेतना

B. स्वतंत्रता की भावना

C. तनाव एवं चिंता

D. उपरोक्त सभी

4. बालक का जीवन नियमों के अनुसार विकसित होता है,

A. परिपक्वता का नियम

B. सीखने का नियम

C. दोनों

D. इनमें से कोई नहीं

8.7 सारांश किशोरावस्था में अभिव्यक्ति के अवसर अत्यंत महत्वपूर्ण होते है। किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक ,भावात्मक तथा सामाजिक विकास होना आवश्यक है। जो किशोर खुलकर बात कर सकते हैं और अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सकते हैं, वे समाज में बेहतर तालमेल बैठाने में सफल होते हैं। एक स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए किशोरावस्था में संतुलित शारीरिक ,मानसिक ,भावात्मक तथा सामाजिक विकास आवश्यक है। संतुलित आहार, शारीरिक अभ्यास, मानसिक क्रियाकलाप, अभिव्यक्ति के अवसर ,सामाजिक गतिविधियों में सहभागिता किशोरावस्था में अत्यंत आवश्यक हैं।

8.8 अपनी प्रगति जानिये के उत्तर

1. A
2. B
3. D
4. C

8.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. किशोरावस्था में शारीरिक एवं मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिये.
2. किशोरावस्था जीवन का महत्वपूर्ण काल है. उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये.
3. ‘‘किशोरावस्था में भावात्मक एवं सामाजिक विकास महत्वपूर्ण है’’ विवेचना कीजिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

Thorpe L.P (1949), Child Psychology and Development, New York

Tutoo, Kundu (2001), Educational Psychology, sterling Publishers, Delhi

https://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK**545476/**

https://www.education.gov.in/about-moe

https://dsel.education.gov.in/

https://www.education.gov.in/higher_education

https://my.clevelandclinic.org/health/articles/7060-adolescent-development

https://www.futurelearn.com/info/courses/supporting-adolescent-learners/0/steps/46451

इकाई 09 : अधिगम का अर्थ, परिभाषा, प्रक्रिया एवं उपयोगिता

(Meaning, definition, process and Utility of learning.)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 उद्देश्य (Objectives)

9.3 अधिगम का अर्थ (Meaning of learning)

9.4 अधिगम की परिभाषा (Definition of Learning)

9.5 अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning)

9.5.1 अधिगम की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Learning)

अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

9.6 अधिगम की उपयोगिता

9.7 सारांश (Summary)

9.8 शब्दावली (Glossary)

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

9.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

सीखना जिसे अधिगम भी कहा जाता है, एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों, अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से नए ज्ञान, कौशल और व्यवहार प्राप्त करता है। यह एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति को अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करती है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति

के मस्तिष्क में कई बदलाव आते हैं। जब व्यक्ति नए ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है, तो उसके मस्तिष्क में नए संबंध बनते हैं और पुराने ज्ञान को अद्यतन किया जाता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने अनुभवों से सीखने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करती है। सीखने अथवा अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति की क्षमताएं, रुचियां, और आवश्यकताएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। व्यक्ति की क्षमताएं निर्धारित करती हैं कि वह कितनी जल्दी और प्रभावी ढंग से सीख सकता है। व्यक्ति की रुचियां निर्धारित करती हैं कि वह क्या सीखना चाहता है और कितनी प्रेरणा से सीखता है। व्यक्ति की आवश्यकताएं निर्धारित करती हैं कि वह क्यों सीखना चाहता है और क्या प्राप्त करना चाहता है। सीखने की प्रक्रिया एक जटिल और बहुस्तरीय प्रक्रिया है जिसमें कई कारक शामिल होते हैं। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और अपने जीवन में सुधार करने में मदद करती है। अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार ला सकता है और अधिक संतुष्ट, सफल और खुशहाल जीवन जीने के लिए तैयार हो सकता है।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप :

1. अधिगम अथवा सीखने के अर्थ को समझ सकेंगे।

2. अधिगम अथवा सीखने के प्रक्रिया को परिभाषित कर पाएँगे।

3. अधिगम अथवा सीखने की प्रक्रिया की सविस्तार व्याख्या कर सकेंगे।

4. अधिगम अथवा सीखने की प्रक्रिया की मुख्य विशेषताओं की सविस्तार व्याख्या कर सकेंगे।

5. अधिगम अथवा सीखने की प्रक्रिया की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

9.3 अधिगम का अर्थ (Meaning of learning)

शिक्षा मनोविज्ञान में 'अधिगम' अथवा 'सीखने' (Learning) का अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया में अध्यापक व छात्र का बल सीखने पर अधिक होता है। सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली का केन्द्र बिन्दु ही सीखना है। शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य भी सीखने को प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बनाना है। मानव अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर अनेक क्रियाएँ करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह नवीन परिस्थितियों के

सम्पर्क में आता है तथा जब वह अपनी प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि नवीन परिस्थिति के द्वारा अपनी पुरानी अनुभूति के आधार पर नहीं कर पाता है तो इस परिस्थिति के साथ समायोजन करने का प्रयत्न करने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप वह गलत व्यवहार छोड़ने लगता है तथा सफल व्यवहार को अपनाने लगता है। इस प्रकार उसकी पुरानी अनुभूतियाँ पुनः से प्रगतिशील (Progressive) या परिमार्जित (Modified) होती हैं। इस प्रकार अनुभूतियों में होने वाले प्रगतिशील परिवर्तन अथवा परिमार्जन को ही **अधिगम** कहा जाता है।

शाब्दिक दृष्टि से अधिगम शब्द दो शब्दों "अधि" और "गम" से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है किसी विषय या वस्तु में प्रवेश करना और आगे की बात जानना। अंग्रेजी में अधिगम के लिए "लर्निंग" (Learning) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है ज्ञानार्जन की प्रक्रिया। इसके अतिरिक्त अधिगम का अर्थ होता है, अनुभव के परिणाम आधार पर स्वयं के व्यवहार में परिवर्तन आना। अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति में स्वयं की अंत: क्रिया के परिणाम रूप में व्यवहार का एक नवीन प्रतिरूप अर्जित करता है।

इस प्रकार अधिगम एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों के माध्यम से नए ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने और नए प्रतिरूपों को अर्जित करने में मदद करती है। अधिगम का अर्थ है स्वयं के अनुभवों से सीखना और अपने व्यवहार को अद्यतन करना। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने जीवन में सुधार करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करती है। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति विशिष्ट परिस्थितियों के प्रति सक्रिय एवं क्रियाशील रूप से प्रतिक्रिया करता है। यह एक गतिशील अथवा गत्यात्मक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जीवन में सदैव प्रगतिशील रूप में चलती रहती है तथा उसे निरंतर नए ज्ञान व अनुभव प्राप्त करने में सहायता करती है।

अधिगम व्यक्तित्व के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है। अधिगम की प्रक्रिया में केवल पाठ्यवस्तु को याद करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी उस ज्ञान को आत्मसात करे और उसका व्यावहारिक प्रयोग करने में सक्षम हो। जब विद्यार्थी किसी विषय

के ज्ञान के आधार पर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है और उसे वास्तविक जीवन में लागू कर पाता है, तभी अधिगम की प्रक्रिया सार्थक होती है।

9.4 अधिगम की परिभाषायें (Definitions of Learning)

अधिगम की अनेक विद्वानों और मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने मतानुसार भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी हैं। जो निम्नलिखित इस प्रकार हैं :

1. गिलफोर्ड के अनुसार, "अधिगम वस्तुतः व्यवहार के परिणामस्वरूप व्यवहार में ही परिवर्तन है।"
2. क्रो एवं क्रो के अनुसार, "अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"
3. कॉलविन के अनुसार, "अधिगम की प्रक्रिया में हमारे पूर्व अनुभवों के कारण हमारे मौजूदा व्यवहार में बदलाव आता है। यह बदलाव हमारे पहले के व्यवहार के प्रतिरूपों में परिवर्तन अथवा परिमार्जन के रूप में देखा जा सकता है।"
4. वुडवर्थ के अनुसार, अधिगम एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति नए ज्ञान, तथ्यों और प्रतिक्रियाओं को सीखता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने जीवन में नए कौशल और ज्ञान प्राप्त करने में मदद करती है।"
5. चार्ल्स स्कीनर के अनुसार, "व्यवहार के अर्जन में उन्नति की प्रक्रिया को अधिगम कहते हैं।"
6. प्रेसी के अनुसार, "अधिगम हम उस अनुभव को कहते हैं, जिसके द्वारा हमारे व्यवहार में परिवर्तन होता है तथा हमारे व्यवहार को नई दिशा मिलती है।"
7. ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन के अनुसार, "व्यवहार में होने वाला कोई परिवर्तन जो अनुभव के परिणामस्वरूप होता है और जो लोगों द्वारा आने वाली परिस्थितियों का भिन्न प्रकार से सामना करने का कारण होता है, अधिगम कहा जा सकता है"।
8. गेट्स व अन्य के अनुसार, "अधिगम अनुभव और प्रशिक्षण के माध्यम से व्यवहार में किया गया सुधारात्मक परिवर्तन है।"
9. स्किनर के अनुसार, "सीखना अपने आप में प्रगतिशील व्यवहार को अपनाने की एक प्रक्रिया है।"

10. थॉर्नडाइक के अनुसार, "अधिगम समुचित प्रतिक्रिया के चयन करने तथा उसे उद्दीपन से जोड़ना की प्रक्रिया है।”
11. क्रोनबैक के अनुसार, "सीखना अनुभव के परिणाम के रूप में व्यवहार में होने वाले परिवर्तन के रूप में प्रकट होता है।"
12. हिलगार्ड के अनुसार, "अधिगम एक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत अभ्यास तथा प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार की उत्पत्ति होती है या उसमें परिवर्तन होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण द्वारा यह ज्ञात होता है कि :

1) अधिगम का अर्थ व्यवहार में परिवर्तन है।
2) अधिगम व्यवहार का एक संगठन है।
3) अधिगम से नवीन प्रक्रिया की पुष्टि होती है।
4) अधिगम आजीवन चलने वाली एक गत्यात्मक प्रक्रिया है।

व्यवहार परिवर्तन, व्यवहार संगठन व नवीन प्रक्रिया की पुष्टि में से कोई भी एक तथ्य अधिगम का स्पष्टीकरण देने वाला नहीं है बल्कि ये तीनों ही अधिगम के प्रतीक हैं। इस प्रकार अधिगम "मानव के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार में संशोधन है जिसका संचालन निश्चित आधार पर होता है और उसकी पुष्टि नवीन क्रियाओं के द्वारा होती है।"

9.5 अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning)

अधिगम एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपनी अंतः क्रियाओं के माध्यम से नए व्यवहार प्रतिरूपों को अर्जित करता है, जो उसके सामान्य व्यवहार को प्रभावित करते हैं। यह एक क्रमिक और विकासोन्मुख प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है। अधिगम में तीन मुख्य तत्व शामिल होते हैं: व्यक्ति की आनुवंशिकता, वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपक, और व्यक्ति द्वारा प्राप्त अनुभव। अधिगम की प्रक्रिया में उद्देश्य और बाधाएं दोनों शामिल होती हैं। जब व्यक्ति का कोई अर्थपूर्ण लक्ष्य होता है, तो वह उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में, वह विभिन्न अनुक्रियाओं

का पालन करता है और उपयुक्त क्रिया का चयन करके अपने लक्ष्य तक पहुंचता है। इस प्रकार, अधिगम एक अर्थपूर्ण एवं लक्ष्योन्मुख प्रक्रिया है।

अधिगम प्रक्रिया को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। मान लें कि एक भूखी बिल्ली को एक पिंजड़े में बंद कर दिया जाता है और उसके सामने खाना रखा जाता है। बिल्ली का लक्ष्य खाना प्राप्त करना है, लेकिन पिंजड़े का बंद दरवाजा उसके मार्ग में बाधा है। बिल्ली विभिन्न अनुक्रियाएं करती है और अंततः दरवाजा खोलने का तरीका ढूंढ लेती है। इस प्रक्रिया में, बिल्ली सीखती है कि कैसे दरवाजा खोलना है और अपने लक्ष्य तक पहुंचना है। इसी प्रकार, मनुष्य भी अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से नए अनुभव प्राप्त करते हैं और अपने जीवन में समायोजन करते हैं। जब हम किसी नई परिस्थिति में पड़ते हैं जिसमें हमारा पूर्व अनुभव सहायक नहीं होता है, तो हम नए अनुभव प्राप्त करते हैं और अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्चा जो पहली बार आग के पास जाता है, वह आग की गर्मी और जलन का अनुभव करता है और भविष्य में आग से सावधान रहना सीखता है। इस प्रक्रिया में, व्यक्ति की आनुवंशिकता, वातावरण में विभिन्न उद्दीपक, और व्यक्ति द्वारा प्राप्त अनुभव सभी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिगम एक सतत प्रक्रिया है जो हमारे जीवन भर चलती रहती है और हमें नए अनुभव प्राप्त करने और अपने ज्ञान को बढ़ाने में मदद करती है।

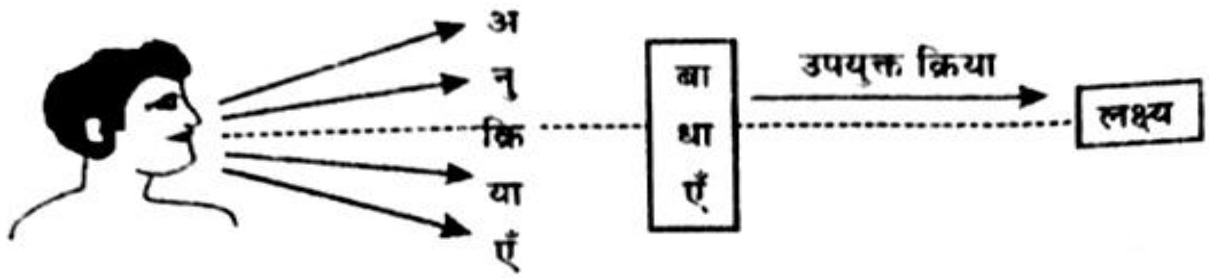

अधिगम की प्रक्रिया पर विचार करते समय, कुछ विवादास्पद तथ्यों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि स्वाभाविक क्रियाएं जैसे कि सोना, जागना, खाना, पीना आदि सीखने से संबंधित नहीं हैं। हालांकि, हिलगार्ड का कहना है कि अधिगम एक प्रक्रिया है जिसमें अभ्यास और प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार की उत्पत्ति या परिवर्तन होता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार की उत्पत्ति आनुवंशिकता से संबंधित हो सकती है, लेकिन अनुभवों द्वारा इसमें संशोधन और परिमार्जन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यौन व्यवहार एक स्वाभाविक व्यवहार है जो अपने निश्चित समय पर उत्पन्न होता है, लेकिन इसके प्रदर्शन और नियंत्रण के लिए अनुभवजन्य अधिगम की आवश्यकता होती है। इसी तरह, सांस लेना भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, लेकिन इसके

लिए भी सीखने की आवश्यकता होती है कि कैसे और कहाँ लेना है। नवजात शिशु सांस लेने में अनुभवजनित अधिगम का प्रदर्शन नहीं कर पाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह इससे संबंधित कोई अधिगम नहीं कर रहा है। वास्तव में, शिशु अपने अनुभवों से सीखता है व अपने व्यवहार को अनुकूल बनाता है।

अधिगम की प्रक्रिया में पुनर्बलन की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब हम कोई नया कार्य करते हैं या सीखते हैं, तो पुनर्बलन हमें और अधिक सीखने के लिए प्रेरित करता है। पुनर्बलन के माध्यम से, हम अपने व्यवहार को मजबूत बनाते हैं और नई आदतें विकसित करते हैं। गुथरी और वुडवर्थ जैसे मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की प्रक्रिया को समझने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके सिद्धांतों और अनुसंधानों ने हमें अधिगम की प्रक्रिया के बारे में गहराई से समझने में मदद की है। इस प्रकार अधिगम की प्रक्रिया एक जटिल और बहुस्तरीय प्रक्रिया है जिसमें कई कारक शामिल होते हैं। इसमें न केवल व्यक्तिगत अनुभव और पुनर्बलन शामिल होते हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिगम की प्रक्रिया को समझने से हमें अपने जीवन में सुधार करने और नई चुनौतियों का सामना करने में मदद मिल सकती है। अधिगम की प्रक्रिया के सम्बन्ध में विभिन्न शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया एवं उसके परिणाम दोनों का गहन अध्ययन किया है। उनके अनुसार, प्रत्येक प्राणी जन्म लेने के बाद कुछ न कुछ सीखना शुरू कर देता है परन्तु मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है, इसलिए उसके सीखने की प्रक्रिया एवं परिणाम दोनों ही अन्य प्राणियों की सीखने की प्रक्रिया एवं परिणाम से भिन्न होते हैं। अधिगम के दौरान व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करता है और अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए तैयार होता है। इस प्रकार अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति की रचनात्मकता, समस्या समाधान क्षमता और निर्णय लेने की क्षमता में भी सुधार होता है, जिससे वह अपने जीवन में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सकता है।

9.5.1अधिगम प्रक्रिया की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Learning Process)

सीखना प्रत्येक प्राणी का एक मूलभूत गुण है, जो उनकी जीवित रहने और अपने वातावरण में अनुकूलन करने की क्षमता को दर्शाता है। जीवित वस्तुएँ विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करती हैं, जिन्हें तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. वंशानुक्रम के कारण स्वाभाविक क्रियाएँ : ये क्रियाएँ वंशानुक्रम के कारण होती हैं और प्राणी की शारीरिक और जैविक विशेषताओं से संबंधित होती हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि, रंग-रूप, चेहरे की बनावट आदि।

2. शारीरिक और आनुवांशिक संरचना के अनुसार स्वाभाविक क्रियाएँ : ये क्रियाएँ प्राणी की शारीरिक और आनुवांशिक संरचना के अनुसार होती हैं और उनके जीवन के लिए आवश्यक होती हैं। उदाहरण के लिए, सोना, जागना, सांस लेना, भोजन की तलाश करना आदि।

3. वातावरण से अन्तः क्रिया के फलस्वरूप अर्जित क्रियाएँ : ये क्रियाएँ प्राणी अपने वातावरण से अन्तः क्रिया के फलस्वरूप अर्जित करता है और ये क्रियाएँ प्राणी के अनुभव और सीखने पर आधारित होती हैं।

इन तीनों प्रकार की क्रियाओं में जब भी कोई परिवर्तन होता है या किया जाता है, तो वह सीखने या अधिगम के रूप में पहचानी जाती है। इन विशेषताओं को समझने से हमें अधिगम की प्रक्रिया के बारे में गहराई से जानकारी मिलती है और हम अपने जीवन में सुधार करने और नई चुनौतियों का सामना करने में मदद कर सकते हैं। अधिगम की प्रक्रिया पर किए गए अध्ययन के आधार पर, अधिगम की निम्नलिखित विशेषताएँ समझी जा सकती हैं :

(1) सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है- सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है, यह बात अलग है कि किसी मनुष्य में यह प्रवृत्ति तीव्र होती है, किसी में सामान्य और किसी में मन्द। मनुष्य में अनुकरण की जन्मजात सामान्य प्रवृत्ति होती है, वह जन्म के कुछ माह बाद ही अपनी जाति के व्यक्तियों की क्रियाओं को अनुकरण द्वारा सीखने लगता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य में जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति भी होती है, वह जिस भी नई वस्तु अथवा क्रिया को देखता है उसी के विषय में क्या, क्यों और कैसे प्रश्न करने लगता है और उसकी सबसे बड़ी जन्मजात शक्ति है- बुद्धि, जो उसे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, सब कुछ जानने में सहायता करती है।

(2) सीखना उद्देश्यपूर्ण होता है- संसार के सभी प्राणी परिस्थितियों के साथ समायोजन (अनुकूलन) करने के लिए सीखते हैं और मनुष्य भी। परन्तु मनुष्य के सीखने के पीछे इसके अतिरिक्त भी अनेक उद्देश्य होते हैं। समाज में समायोजन करने के लिए वह समाज की भाषा और व्यवहार प्रतिमान सीखता है, समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए वह अपनी संस्कृति सीखता है, धर्म और दर्शन सीखता है, मूल्य सीखता है और अपना आर्थिक विकास करने के लिए व्यवसाय एवं उद्योग का कौशल सीखता है, आदि।

(3) सीखने की प्रक्रिया में तीन तत्त्व होते हैं- सीखने की प्रक्रिया का सर्वप्रथम तत्त्व है नए ज्ञान अथवा कौशल को सीखना, दूसरा तत्त्व है इस ज्ञान अथवा कौशल को बहुत दिनों तक धारण करना और तीसरा तत्त्व है आवश्यकता पड़ने पर इस ज्ञान अथवा कौशल का प्रयोग करना।

(4) सीखना वंशानुक्रम एवं पर्यावरण दोनों पर निर्भर करता है- मनुष्य क्या सीखता है और कितना सीखता है, यह उसके वंशानुक्रम एवं पर्यावरण दोनों पर निर्भर करता है। जन्म से वह सीखने की शक्ति (शरीर, बुद्धि और मानसिक शक्तियाँ) लेकर पैदा होता है और पर्यावरण से वह सीखने की सामग्री प्राप्त करता है Q। मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास आयु बढ़ने के साथ-साथ होता है, जैसे-जैसे उसकी ये शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ परिपक्व होती जाती हैं वैसे-वैसे उसमें सीखने की क्षमता बढ़ती जाती है। इसके अतिरिक्त सीखने के लिए पहली आवश्यकता परिपक्वता (Maturity) होती है।

(5) सीखने में अभिप्रेरणा का बड़ा महत्व होता है- अभिप्रेरणा मानव व्यवहार की प्राणशक्ति है, यह वह शक्ति है जिसके कारण मनुष्य एक दिशा में कुछ करने के लिए अभिप्रेरित होता है। अतः मनुष्य जितना अधिक अभिप्रेरित होगा उतनी ही शीघ्रता से सीखेगा और उतना ही उसका सीखना स्थायी होगा।

(6) सीखना, प्रक्रिया एवं परिणाम दोनों है- मनुष्य अवलोकन, शिक्षण, प्रशिक्षण एवं अध्ययन आदि अनेक विधियों से सीखता है। इस दृष्टि से सीखना एक प्रक्रिया है और सीखने का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक उससे मनुष्य के व्यवहार (शारीरिक एवं मानसिक) में परिवर्तन नहीं होता। अतः व्यवहार परिवर्तन की दृष्टि से सीखना परिणाम है।

(7) सीखने की प्रक्रिया में पूर्व अनुभवों का महत्व होता है- मनुष्य सब कुछ एक दिन में नहीं सीख जाता, वह अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता, अपने पर्यावरण (प्राकृतिक एवं सामाजिक) और शिक्षा के द्वारा धीरे-धीरे सीखता है और पूर्व में सीखे हुए ज्ञान के आधार पर आगे का सीखता है।

(8) सीखने की प्रक्रिया जीवन भर चलती है- सामान्यतः यह माना जाता है कि मनुष्य जन्म से कुछ समय तक सामान्य व्यवहार सीखता है और विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करता है, परन्तु वास्तव में वह जीवनपर्यन्त सीखता है। प्रश्न उठता है कैसे ? उत्तर साफ है जीवन में वह भिन्न-भिन्न मनुष्यों के सम्पर्क में आता है और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से होकर गुजरता है जिनसे वह सदैव कुछ ने कुछ अवश्य सीखता है।

(9) सीखने में सन्तोष एवं सन्तुष्टि का महत्व होता है- सीखने की प्रक्रिया में मनुष्य जब सही अनुक्रिया करता है तो उसे बड़ा सन्तोष मिलता है, उसे बड़ी सन्तुष्टि होती है और उसे आगे बढ़ने के लिए पुनर्बलन मिलता है।

(10) सीखना क्रमिक प्रक्रिया है- मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया का एक क्रम होता है। प्रारम्भ में वह केवल अवलोकन अथवा श्रवण या पठन द्वारा सीखता है जिसे स्मृति स्तर का सीखना कहते हैं। कुछ बड़ा होने पर वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है तथा तथ्यों को सोच-समझकर स्वीकार करता है, जिसे बोध स्तर का सीखना कहते हैं। जब मनुष्य अपनी बुद्धि के साथ-साथ विवेक का प्रयोग भी करता है और किसी भी तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करता है तो इसे चिन्तन स्तर का सीखना कहते हैं। यह सीखने का उच्चतम स्तर होता है।

इस प्रकार मनुष्य की जन्मजात प्रकृति होने के साथ-साथ एक मूलभूत गुण भी है जो जीवित प्राणियों को अपने वातावरण में अनुकूलन करने और जीवित रहने में मदद करता है। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने अनुभवों, अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से नए ज्ञान, कौशल और व्यवहार प्राप्त करता है।

अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

प्र.1 अधिगम के परिणाम स्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में ----------------- होता है ।

प्र.2 अधिगम एक --------------------------------------चलने वाली प्रक्रिया है।

प्र.3 प्राणी जन्म लेते ही सीखना प्रारंभ कर देता है । सत्य / असत्य

प्र.4 एक निश्चित आयु तक सीखने के बाद सीखने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। सत्य / असत्य

प्र.5 "अधिगम हम उस अनुभव को कहते हैं, जिसके द्वारा हमारे व्यवहार में परिवर्तन होता है तथा हमारे व्यवहार को नई दिशा मिलती है"। अधिगम की यह परिभाषा किसने दी ?

9.6 अधिगम की उपयोगिता (Utility of Learning)

अधिगम का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। अधिगम की उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है-

1. व्यक्तिगत विकास में सहायक- अधिगम से व्यक्तिगत विकास होता है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करता है। अधिगम से व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान प्राप्त करता है तथा अपने जीवन में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त अधिगम द्वारा व्यक्ति स्वयं विकास के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है, जैसे कि आत्म-मूल्यांकन, आत्म-प्रबन्धन, आत्म-अभिप्रेरणा एवं समायोजन इत्यादि।

2. व्यावसायिक विकास में सहायक- अधिगम से व्यक्ति अपने करियर में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करता है। अधिगम द्वारा ही व्यक्ति अपने करियर में नए अवसरों को भी प्राप्त करता है तथा अपनी आर्थिक उन्नति हेतु भी अग्रसर होता है।

3. सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण में- अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक संबंधों को मजबूत बना सकता है। इसकी सहायता से व्यक्ति अपने समुदाय में अधिक सक्रिय भूमिका निभा सकता है तथा अपने सामाजिक संबंधों में अधिक प्रभावी ढंग से संचार करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करता है, जैसे कि संचार, सहयोग, नेतृत्व, प्रशासनिक सेवा आदि।

4. प्रभावी सम्प्रेषण में सहायक- अधिगम द्वारा प्राप्त अनुभव से व्यक्ति स्वयं की संचार क्षमता को बेहतर बना सकता है। संचार की क्षमता से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को दूसरों के साथ साझा कर सकता है तथा अधिगम द्वारा

स्वयं की संचार क्षमता के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त कर सकता है, जैसे कि भाषा, श्रवण, और प्रतिक्रिया आदि।

5. ज्ञान एवं कौशल की वृद्धि में सहायक- अधिगम के द्वारा व्यक्ति नए ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है, जो मनुष्य जीवन में उपयोगी होते हैं। इसकी सहायता से व्यक्ति निश्चित रूप से अपने कार्यक्षेत्र में अधिक सक्षम और प्रभावी बन सकता है।

6. स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती में सहायक- अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती को बेहतर बना सकता है। अधिगम से व्यक्ति अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करता है तथा अपने जीवन में अधिक सक्रिय और ऊर्जावान बन सकता है।

7. नेतृत्व क्षमता को विकसित करने में सहायक- अधिगम से व्यक्ति अपनी निर्णय लेने की क्षमता को बेहतर बना सकता है। अधिगम से व्यक्ति अपने जीवन में अधिक विवेकपूर्ण एवं परिपक्व निर्णय ले सकता है तथा अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधिक प्रभावी ढंग से भी सोच सकता है। इसके अतिरिक्त अधिगम द्वारा व्यक्ति स्वयं की नेतृत्व क्षमता को भी बेहतर बना सकता है। नेतृत्व क्षमता से व्यक्ति अपने समूह या संगठन का नेतृत्व कर सकता है। अधिगम से व्यक्ति नेतृत्व क्षमता के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त कर सकता है जैसे कि संचार, प्रेरणा, और निर्णय लेना आदि, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन को और अधिक सार्थक बनाने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

8. समय प्रबंधन में सहायक- अधिगम द्वारा व्यक्ति समय प्रबंधन की क्षमता को भी बेहतर बना सकता है। समय प्रबंधन की क्षमता से व्यक्ति अपने समय का उपयोग प्रभावी ढंग से कर सकता है। अधिगम से व्यक्ति समय प्रबंधन की क्षमता के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त कर सकता है, जैसे कि प्राथमिकता निर्धारण, समय सारणी बनाना, और समय का प्रबंधन करना, नियोजन करना आदि।

9. समस्या समाधान में सहायक- अधिगम से व्यक्ति समस्या समाधान की क्षमता को बेहतर बना सकता है। समस्या समाधान की क्षमता से व्यक्ति अपने जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान कर सकता है। अधिगम से व्यक्ति

समस्या समाधान के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त कर सकता है, जैसे कि विश्लेषण, मूल्यांकन, और निर्णय लेना आदि।

10. रचनात्मकता की वृद्धि में सहायक- अधिगम द्वारा रचनात्मकता में वृद्धि करने के कई तरीके हो सकते हैं, जिनमें नए विचारों का विकास, ज्ञान और कौशल का विस्तार, विचारों का मंथन, प्रयोग और अन्वेषण, आलोचनात्मक सोच, नई तकनीकों का सीखना और अनुभवों से सीखना शामिल हैं। इन तरीकों से व्यक्ति अपनी रचनात्मकता को बढ़ावा दे सकता है और नए व अनोखे तरीके से समस्याओं का समाधान कर सकता है। अधिगम के द्वारा व्यक्ति अपने ज्ञान और कौशल का भी विस्तार कर सकता है, जिससे वह नए दृष्टिकोण और विचारों को प्राप्त कर सकता है और अपनी रचनात्मकता को बढ़ा सकता है।

11. जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु सहायक- अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार ला सकता है। नए कौशल सीखने से लेकर व्यक्तिगत विकास, स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती, वित्तीय साक्षरता, सामाजिक संबंधों और आत्म-निर्भरता तक, अधिगम व्यक्ति को अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं में सुधार करने में मदद कर सकता है। नए कौशल सीखने से व्यक्ति के जीवन में विविधता और आनंद आ सकता है, जबकि व्यक्तिगत विकास से आत्मविश्वास और सफलता मिल सकती है। स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के बारे में जानकारी प्राप्त करने से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। वित्तीय साक्षरता से वित्तीय जीवन में स्थिरता और सुरक्षा मिल सकती है, और सामाजिक संबंधों के बारे में जानकारी प्राप्त करने से सामाजिक जीवन में मजबूती और संतुष्टि मिल सकती है।

इसके अतिरिक्त आत्म-निर्भरता के बारे में जानकारी प्राप्त करने से आत्म-विश्वास और स्वतंत्रता मिल सकती है। इन तरीकों से, अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार ला सकता है और अधिक संतुष्ट, सफल और खुशहाल जीवन जीने के लिए तैयार हो सकता है।

इस प्रकार अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए, व्यक्ति को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. सीखने की इच्छा : व्यक्ति को सीखने की इच्छा होनी चाहिए।

2. प्रेरणा : प्रेरणा अधिगम की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है और व्यक्ति को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। प्रेरणा के कारण व्यक्ति अधिगम की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेता है।

3. नियमित अभ्यास: व्यक्ति को नियमित अभ्यास करना चाहिए।

4. प्रतिक्रिया : व्यक्ति को प्रतिक्रिया प्राप्त करनी चाहिए और उसे अपने अधिगम में सुधार करने के लिए उपयोग करना चाहिए।

5. आत्म-मूल्यांकन : व्यक्ति को आत्म-मूल्यांकन करना चाहिए और अपने अधिगम की प्रक्रिया का मूल्यांकन करना चाहिए।

अतः अधिगम की प्रक्रिया एक सतत प्रक्रिया है जो व्यक्ति को जीवन भर नए ज्ञान, कौशल और मूल्यों को प्राप्त करने में मदद करती है। यह व्यक्ति के अनुभव और वातावरण से अन्तः क्रिया पर आधारित होती है तथा अधिगम के द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार और क्रियाओं में परिवर्तन ला सकता है। इसके अतिरिक्त अधिगम की प्रक्रिया में पुनर्बलन एवं अभ्यास की भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

9.7 सारांश (Summary)

अधिगम एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों, अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से नए ज्ञान, कौशल और व्यवहार प्राप्त करता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करती है। अधिगम में व्यक्ति की क्षमताएं, रुचियां, और आवश्यकताएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसका उद्देश्य व्यक्ति को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और अपने जीवन में सुधार करने में मदद करना है, जिससे व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन ला सके और नए प्रतिरूपों को अर्जित कर सके।

अधिगम एक गतिशील और जटिल प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपनी अंतः क्रियाओं के माध्यम से नए व्यवहार प्रतिरूपों को अर्जित करता है। यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है और व्यक्ति को अपने अनुभवों से सीखने और अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने में मदद करती है। अधिगम में तीन मुख्य तत्व शामिल होते हैं: व्यक्ति की

आनुवंशिकता, वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपक, और व्यक्ति द्वारा प्राप्त अनुभव । पुनर्बलन भी अधिगम की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो व्यक्ति को नए कार्य करने और सीखने के लिए प्रेरित करता है। अधिगम की प्रक्रिया को समझने से हमें अपने जीवन में सुधार करने और नई चुनौतियों का सामना करने में मदद मिल सकती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाविदों ने अधिगम की प्रक्रिया का गहन अध्ययन किया है और इसके महत्व को समझाया है।

अधिगम एक मूलभूत गुण भी है जो जीवित प्राणियों को अपने वातावरण में अनुकूलन करने और जीवित रहने में मदद करता है। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने अनुभवों, अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से नए ज्ञान, कौशल और व्यवहार प्राप्त करता है। अधिगम मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है। अधिगम की प्रक्रिया में तीन तत्त्व होते हैं: नए ज्ञान को सीखना, धारण करना और प्रयोग करना। यह वंशानुक्रम और पर्यावरण दोनों पर निर्भर करता है। इसमें अभिप्रेरणा का अत्यन्त महत्व होता है तथा अधिगम में सन्तोष और सन्तुष्टि का महत्व भी होता है। यह एक क्रमिक प्रक्रिया भी है जिसमें अवलोकन, बोध और चिन्तन के स्तर होते हैं। अधिगम की इन विशेषताओं को समझने से हम अपने जीवन में सुधार करने और नई चुनौतियों का सामना करने में मदद कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त अधिगम जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है, जो व्यक्तिगत विकास, व्यावसायिक उन्नति, सामाजिक संबंधों के निर्माण और प्रभावी संचार में सहायक होता है। अधिगम से व्यक्ति नए ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है, जिससे वह अपने जीवन की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनता है। इस प्रकार अधिगम स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती, नेतृत्व क्षमता, समय प्रबंधन, समस्या समाधान और रचनात्मकता में भी सुधार लाता है। अधिगम द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार ला सकता है और अधिक संतुष्ट, सफल और खुशहाल जीवन जीने के लिए तैयार हो सकता है।

9.8 शब्दावली (Glossary)

अधिगम : अधिगम एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों और अभ्यास से ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है। यह एक सतत प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति नए अनुभव प्राप्त करता है और अपने व्यवहार में सुधार लाता है। अनुभवों के आधार

पर व्यक्ति अपने ज्ञान और कौशल में वृद्धि करता है और अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए तैयार होता है। इस प्रकार, अधिगम व्यक्ति के व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार व्यक्तिगत अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और अपने जीवन में सुधार करने में मदद करना है, जिससे व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन ला सके और नए प्रतिरूपों को अर्जित कर सके।

अधिगम की प्रक्रिया : अधिगम की प्रक्रिया एक जटिल परन्तु उन्नतिशील एवं गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों, अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से नए ज्ञान, कौशल और व्यवहार प्राप्त करता है। यह प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है और व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने वातावरण के साथ परस्पर क्रिया करता है और नए अनुभवों को आत्मसात करता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक क्षमताएं शामिल होती हैं। अधिगम के दौरान व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करता है और अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए तैयार होता है। अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति की रचनात्मकता, समस्या समाधान क्षमता और निर्णय लेने की क्षमता में भी सुधार होता है, जिससे वह अपने जीवन में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सकता है।

अधिगम की उपयोगिता : अधिगम की उपयोगिता व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो व्यक्तिगत विकास, व्यावसायिक विकास, समस्या समाधान, निर्णय लेने, आत्म-विश्वास, सामाजिक विकास और आर्थिक विकास में मदद करती है। इससे व्यक्ति अपने ज्ञान, कौशल और मूल्यों में सुधार कर सकता है, अपने करियर में आगे बढ़ सकता है, विभिन्न समस्याओं का समाधान कर सकता है, बेहतर निर्णय ले सकता है, आत्म-विश्वास प्राप्त कर सकता है, सामाजिक कौशल में सुधार कर सकता है और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। अधिगम की उपयोगिता को समझने से व्यक्ति अपने जीवन में इसके महत्व को समझ सकता है और अपने अधिगम की प्रक्रिया को बेहतर बना सकता है।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

उ .1 परिवर्तन

उ .2 जीवन पर्यन्त

उ .3 सत्य

उ.4 असत्य

उ .5 प्रेसी

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1. Avnindr Sheel, Teaching Learning Process and Development of Learner, Sahitya Ratnalay, Kanpur 208001
2. "Brain scans shed light on how kids learn faster than adults". UPI. Retrieved 17 December 2022.
3. Campbell, Cary; Olteanu, Alin; Kull, Kalevi 2019. Learning and knowing as semiosis: Extending the conceptual apparatus of semiotics Archived 2022-04-09 at the Wayback Machine. Sign Systems Studies 47(3/4): 352–381.
4. Daniel L. Schacter; Daniel T. Gilbert; Daniel M. Wegner (2011) [2009]. Psychology, 2nd edition. Worth Publishers. p. 264. ISBN 978-1-4292-3719-2.
5. Hartley, David M.; Seid, Michael (2021). "Collaborative learning health systems: Science and practice". Learning Health Systems. 5 (3): e10286. doi:10.1002/lrh2.10286. PMC 8278439. PMID 34277947.
6. Hilgard, E.R. and Bower, GH., Theories of Learning (2''ed.) Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice Hall 1957.

7. "Non-associative Learning" (PDF). Archived from the original (PDF) on 2014-01-03. Retrieved 2013-08-09.

9.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

प्र.1 अधिगम से आप क्या समझते हैं ? अधिगम की किन्हीं दो परिभाषाओं को बताइए।

प्र.2 अधिगम की परिभाषा देते हुए अधिगम की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

प्र.3 अधिगम का अर्थ स्पष्ट करते हुए अधिगम की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्र.4 अधिगम की प्रक्रिया को किस प्रकार से प्रभावशाली बनाया जा सकता है, संक्षेप में बताइए।

प्र.5 अधिगम की दैनिक जीवन में उपयोगिता का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 10 : अधिगम के सिद्धान्त एवं महत्व (Theories of learning and Importance

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 उद्देश्य (Objectives)

10.3 अधिगम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण (Classification of Learning Theories)

10.4. व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioral Associationism Theories)

(Definition of Learning)

10.4.1 थार्नडाइक का प्रयत्न एवं त्रुटि का सिद्धांत (Thorndike's Trial & Error Theory)

10.4.1.1 थॉर्नडाइक के सीखने के नियम (Thorndike's Law of Learning)

10.4.1.2 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त और उसके विभिन्न नियमों की शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व (Educational Implication & Importance of the Thorndike's Theory and his various laws of learning)

10.4.2 पावलव का शास्त्रीय अनुबंध का सिद्धांत (Pavlov's Theory of Classical Conditioning)

10.4.2.1 पावलव के अनुबन्धन के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व

(Educational Implications & Importance of the Theory of Conditioning)

10.4.3 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत (Skinners' Operant Conditioning Theory)

10.4.3.1 स्किनर के क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त की शिक्षा में उपयोगिता एवं महत्व

(Educational Implications & Importance of the Operant Conditioning Theory in Education)

10.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

10.6 ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organizational Theory)

10.6.1. लेविन का अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त (Lewin's field theory of learning)

10.6.1.1 क्षेत्र सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता एवं महत्व (Educational Implications & Importance of the field theory)

10.7 सारांश (Summary)

10.8 शब्दावली (Glossary)

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

10.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

सीखना अथवा अधिगम एक जटिल एवं गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यवहार में परिवर्तन आता है, लेकिन सभी परिवर्तन सीखने की श्रेणी में नहीं आते। मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया को समझने के लिए विभिन्न सिद्धांतों का विकास किया है, जो सीखने की प्रकृति और प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं। ये सिद्धांत अधिगम के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करते हैं और शैक्षिक निहितार्थों के महत्व को उजागर करते हैं। इन सिद्धांतों का अध्ययन करके, हम सीखने की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और शैक्षिक प्रथाओं में सुधार ला सकते हैं।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् शिक्षार्थी -

1. अधिगम सिद्धांतों के वर्गीकरण का विश्लेषण कर पाएंगे।
2. अधिगम के व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त के साथ-साथ ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त का सविस्तार वर्णन कर सकेंगे।
3. थार्नडाइक के सीखने के सिद्धांतों की शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व को समझ सकेंगे।
4. पावलोव के सीखने के सिद्धांत और उसकी की शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व को समझ सकेंगे।
5. स्किनर के सिद्धांत और उनकी शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व को बता सकेंगे।

6. लेविन के क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त की चर्चा कर सकेंगे।

10.3 अधिगम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण (Classification of Learning Theories)

अधिगम के आधुनिक सिद्धान्तों को मुख्य रूप से 2 श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

1. व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioral Associationism Theories)

2. ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organizational Theory)

10.4 व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationism Theories)

व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया में विभिन्न उद्दीपनों और अनुक्रियाओं के बीच साहचर्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन को उद्दीपनों और अनुक्रियाओं के साहचर्य के परिणामस्वरूप देखा जाता है। इन सिद्धान्तों के माध्यम से, हम सीखने की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और शैक्षिक प्रथाओं में सुधार ला सकते हैं।

व्यवहारवादी अधिगम सिद्धान्त के प्रमुख प्रकार निम्नवत हैं:

1. थॉर्नडाइक का प्रयत्न एवं त्रुटि का सिद्धान्त (Thorndike's Trial & Error Theory)

2. पावलव का शास्त्रीय अनुबंध सिद्धान्त (Pavlov's Theory of Classical Conditioning)

3. स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंध सिद्धान्त (Skinner’s Operant Conditioning Theory)

इन सभी सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण क्रमशः इस प्रकार है :

10.4.1 थॉर्नडाइक का प्रयत्न एवं त्रुटि का सिद्धान्त

थॉर्नडाइक के अधिगम सिद्धांत को कई नामों से जाना जाता , जैसे कि : सम्बन्धवाद का सिद्धान्त, साहचर्य सिद्धान्त एवं उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त (S-R)। थॉर्नडाइक ने अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए विभिन्न प्रयोग किए, जिनमें से अधिकतर जानवरों पर किए गए थे, जैसे कि बिल्ली, कुत्ता, मछली और बंदर। इन प्रयोगों में से बिल्ली पर किया गया प्रयोग सबसे प्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने दिखाया कि जानवर कैसे प्रयत्न और त्रुटि के माध्यम से सीखते हैं।

थॉर्नडाइक का बिल्ली पर प्रयोग (Thorndike's Experiment on Cat)

थॉर्नडाइक का बिल्ली प्रयोग एक प्रसिद्ध प्रयोग है जो अधिगम के सिद्धांत को समझने के लिए किया गया था। इस प्रयोग में, थॉर्नडाइक ने एक बिल्ली को एक पजल बॉक्स में रखा, जिसमें एक दरवाजा था जो एक लीवर को दबाने से खुलता था। बिल्ली को खाने के लिए एक मछली दी गई थी, जो बॉक्स के बाहर रखी गई थी। बिल्ली ने पहले दरवाजा खोलने के लिए विभिन्न तरीकों से प्रयत्न किया, जैसे कि खरोंचना, चबाना, और दबाना आदि। इन प्रयत्नों में से कुछ सफल नहीं हुए, लेकिन अंततः बिल्ली ने लीवर को दबाकर दरवाजा खोलने में सफलता प्राप्त की।

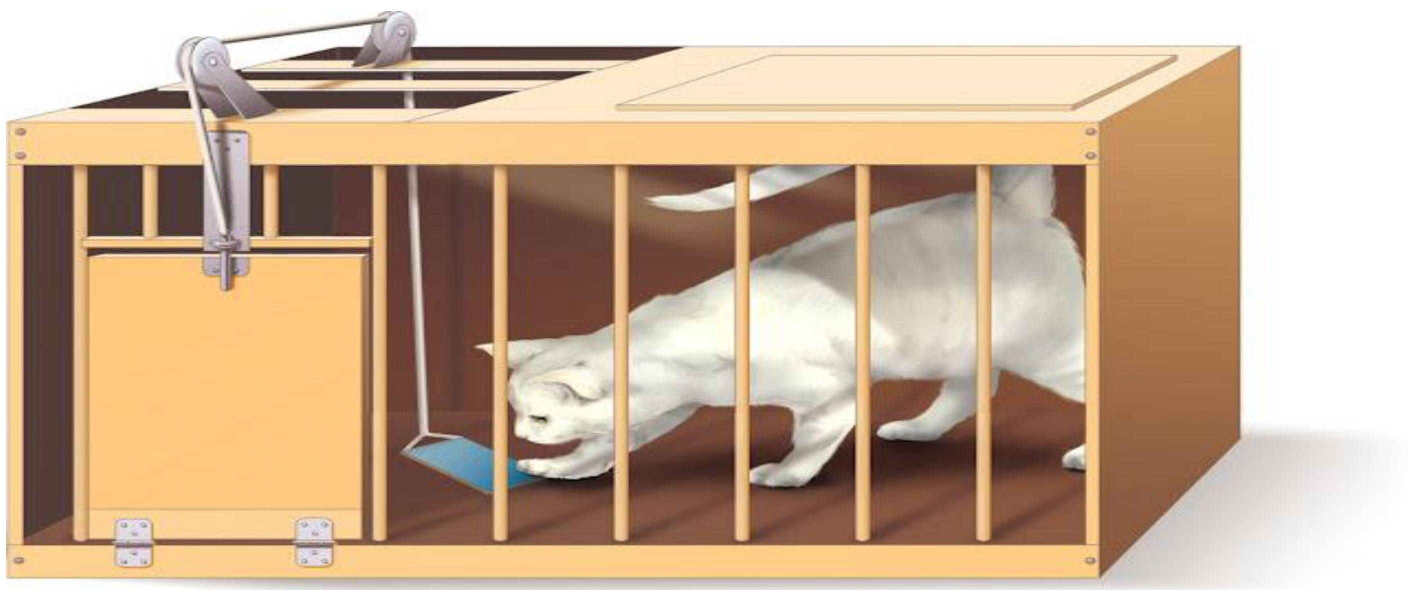

थॉर्नडाइक ने इस प्रयोग को कई बार दोहराया और देखा कि बिल्ली ने धीरे-धीरे दरवाजा खोलने के लिए आवश्यक क्रिया को सीख लिया। बिल्ली के प्रयत्नों की संख्या और समय कम हो गया, और वह दरवाजा खोलने में अधिक कुशल हो गई। इस प्रयोग से थॉर्नडाइक ने निष्कर्ष निकाला कि अधिगम एक प्रयत्न और त्रुटि की प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति या जानवर विभिन्न प्रयत्न करते हैं और त्रुटियों से सीखते हैं। इस प्रयोग ने अधिगम के सिद्धांत को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

10.4.1.1 थॉर्नडाइक के सीखने के नियम (Thorndike's Law of Learning

थॉर्नडाइक ने उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धांत के आधार पर तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है -

1. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of effect)

इन सभी का वर्णन निम्नांकित है –

1.अभ्यास का नियम (Law of Exercise)- अभ्यास का नियम अधिगम के सिद्धांतों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अनुसार, अभ्यास से अधिगम मजबूत होता है और जितना अधिक अभ्यास किया जाता है, उतना ही अधिक अधिगम होता है। इसे **'उपयोग का नियम' (law of use)** भी कहा जाता है, जिसके अनुसार अभ्यास से ज्ञान और कौशल मजबूत होते हैं। इसके विपरीत, **'अनुपयोग का नियम' (law of disuse)** के अनुसार, अभ्यास बंद करने से ज्ञान और कौशल कमजोर हो सकते हैं या भूल सकते हैं। उदाहरण के लिए, नियमित अभ्यास से विद्यार्थी किसी पाठ को बेहतर तरीके से सीखता है और याद रखता है, जबकि अभ्यास बंद करने से उसे भूलने लगता है।

2. तत्परता का नियम (Law of Readiness)- तत्परता का नियम अधिगम की प्रक्रिया में बच्चे की रुचि, अभिरुचि और अभिप्रेरणा को महत्व देता है, क्योंकि जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है और उसे वह कार्य करने दिया जाता है, तो इससे उसमें संतोष होता है, लेकिन जब उसे वह कार्य नहीं करने दिया जाता है, तो इससे उसमें खीझ (Annoyance) होती है, इसलिए यह नियम हमें यह चेतावनी देता है कि जब तक बच्चे में किसी कार्य को करने या सीखने की पर्याप्त रुचि या इच्छा न हो, तब तक उसे करने या सीखने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

3. प्रभाव का नियम (Law of Effect)- प्रभाव का नियम अधिगम के सिद्धांतों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसके अनुसार अधिगम के परिणाम का प्रभाव व्यक्ति के भविष्य के व्यवहार पर पड़ता है। यदि किसी व्यवहार या अनुक्रिया का परिणाम सकारात्मक और संतोषजनक होता है, तो व्यक्ति उस व्यवहार को दोहराने के लिए प्रोत्साहित होता है। इसके विपरीत, यदि परिणाम नकारात्मक और खीझ उत्पन्न करने वाला होता है, तो व्यक्ति उस व्यवहार से बचने की कोशिश करता है। इस प्रकार, व्यक्ति अपने अनुभवों से सीखता है और अपने भविष्य के व्यवहार को आकार देता है, जो उसके पिछले अनुभवों के प्रभावों पर आधारित होता है।

10.4.1.2 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त और उसके विभिन्न नियमों का शैक्षिक उपयोग एवं महत्व (Educational Implication of Thorndike's Theory and his various laws of learning)

थॉर्नडाइक के प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त का पर्याप्त शैक्षणिक महत्व है। उसने सीखने की प्रक्रिया को अपने प्रयोगों एवं परीक्षणों के आधार पर पूरी तरह स्पष्ट करने की कोशिश की है। थॉर्नडाइक ने बताया कि केवल पशु-पक्षी में ही नहीं बल्कि मनुष्यों में भी सीखने की प्रक्रिया प्रायः बार-बार प्रयत्न करने और मूल सुधार कर आगे बढ़ने के रूप में सम्पन्न होती है। एक बच्चा जब गणित के प्रश्नों को हल करता है तब वह प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त को प्रयोग में लाता देखा जा सकता है। समस्या को हल करने के प्रयास में पहले वह एक विधि को अपनाने की चेष्टा करता है। थोड़ी देर बाद कार्य में सफलता न मिलने पर दूसरी विधि को अपनाता है। इस तरह अन्त में प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त का पालन करते हुए अपनी समस्या को हल करने में समर्थ हो जाता है। सीखने तथा ज्ञान की खोज करने में प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। थॉर्नडाइक ने सीखने के नियमों के द्वारा अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र को बहुत कुछ देने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए इन नियमों की देन के रूप में कुछ निम्न तथ्य सामने रखे गए हैं-

थॉर्नडाइक के सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग-

थॉर्नडाइक के सिद्धांत का शिक्षा में उपयोग निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है :

1. छात्रों को तैयार करना : थॉर्नडाइक के तत्परता के नियम के अनुसार, शिक्षकों को छात्रों को नए कौशल या ज्ञान के लिए तैयार करना चाहिए। इससे छात्रों को सीखने में मदद मिलेगी।

2. अभ्यास और पुनरावृत्ति : थॉर्नडाइक के अभ्यास के नियम के अनुसार, शिक्षकों को छात्रों को नियमित अभ्यास और पुनरावृत्ति के अवसर प्रदान करने चाहिए। इससे छात्रों को सीखने में मदद मिलेगी।

3. सकारात्मक प्रतिक्रिया : थॉर्नडाइक के प्रभाव के नियम के अनुसार, शिक्षकों को छात्रों को सकारात्मक प्रतिक्रिया प्रदान करनी चाहिए। इससे छात्रों को प्रोत्साहन मिलेगा और वे सीखने में अधिक रुचि लेंगे।

4. व्यक्तिगत आवश्यकताओं का ध्यान : थॉर्नडाइक के सिद्धांत के अनुसार, शिक्षकों को छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। इससे छात्रों को अपनी गति से सीखने में मदद मिलेगी।

5. सीखने की प्रक्रिया का मूल्यांकन : थॉर्नडाइक के सिद्धांत के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया का मूल्यांकन करना आवश्यक है, ताकि शिक्षकों को यह पता चल सके कि छात्र क्या सीख रहे हैं और उन्हें कहाँ अधिक सहायता की आवश्यकता है, जिससे वे अपनी शिक्षण रणनीतियों को तदनुसार समायोजित कर सकें।

6. उद्दीपक- थॉर्नडाइक के उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धांत से छात्रों को नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया जा सकता है, और अनुभवों का लाभ उठाने की क्षमता का विकास होता है, जिससे छात्रों को शिक्षा की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने और अपने ज्ञान को बढ़ाने में मदद मिलती है। इनके द्वारा अधिगम को पूरी तरह से उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्य निर्देशित (Goal Directed) बनाने तथा अभिप्रेरणा (Motivation) को सीखने की प्रक्रिया का बहुमूल्य अंग बनाने का प्रयत्न किया गया है। अधिगम में अभ्यास कार्य तथा पुनरावृत्ति के महत्व को समझने तथा प्रशंसा, प्रोत्साहन और पुरस्कार आदि के मूल्य को ठीक ढंग से परखने में थॉर्नडाइक ने बहुत ही सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

10.4.2 पावलव का शास्त्रीय अनुबंध का सिद्धांत (Pavlov's Theory of Classical Conditioning)

आई0पी0 पावलव (I.P. Pavlov) एक रूसी शरीर-वैज्ञानिक (Physiologist) थे (conditioned), जिन्होंने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पावलव के सीखने के अनुबन्धन सिद्धान्त को शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त, प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त या टाइप-एस अनुबन्धन भी कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने अपने प्रसिद्ध प्रयोगशाला अध्ययन में कुत्तों पर अनुसंधान करके सीखने की प्रक्रिया को समझाया, जिससे यह सिद्ध हुआ कि बाहरी उद्दीपकों के साथ प्राकृतिक उद्दीपकों का संबंध स्थापित करके नई अनुक्रियाएं सीखी जा सकती हैं।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है। पावलव के अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response) करता है। जैसे गर्म बर्तन को छूते ही हाथ खींच लेना तथा भूखा होने पर भोजन देखकर मुँह में लार आना, कुछ ऐसी अनुक्रियाओं (responses) के उदाहरण है। जब इस स्वाभाविक एवं उपयुक्त उद्दीपक के ठीक कुछ सेकेण्ड पहले एक दूसरा

तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास (trials) के बाद उस तटस्थ उद्दीपक द्वारा ही स्वभाविक अनुक्रिया (लार आना या हाथ खींच लेना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी) उत्पन्न होने लगती है। जैसे एक भूखे व्यक्ति के सामने घंटी बजाकर बार-बार भोजन दें तो कुछ प्रयासों के बाद मात्र घंटी बजते ही उस व्यक्ति के मुँह में लार आना प्रारंभ हो जाएगा। पावलव के तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना) के बीच स्थापित इस नए साहचर्य को सीखने की संज्ञा दिया है।

उक्त सिद्धान्त द्वारा पावलव यह निष्कर्षित करते हैं कि, यदि एक तटस्थ उद्दीपक को बार-बार एक उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक के साथ जोड़ा जाए, तो व्यक्ति तटस्थ उद्दीपक के प्रति भी उसी तरह की अनुक्रिया करने लगता है जैसा कि वह स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति करता है, जिससे सीखने की एक नई प्रक्रिया का स्वाभाविक विकास होता है।

पावलव का कुत्ते पर प्रयोग

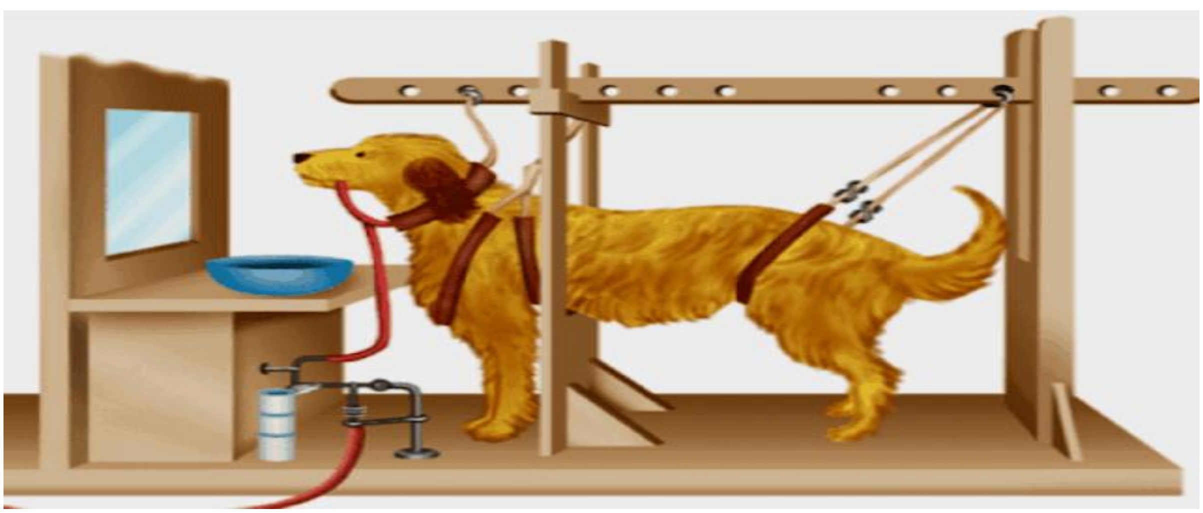

पावलव का प्रयोग इस प्रकार था- एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि- नियंत्रित प्रयोगशाला में एक विशेष उपकरण के सहारे खड़ा कर दिया गया। कुत्ते के सामने भोजन लाया जाता था और चूंकि कुत्ता भूखा था इसलिए, भोजन देखकर उसके मुँह में लार आ जाती थी। कुछ प्रयासों (trials) के बाद भोजन देने के 4 या 5 सेकेण्ड अर्थात 400 या 500 मिलीसेकेण्ड पहले एक घंटी बजाई जाती थी। यह प्रक्रिया कुछ दिनों तक दोहरायी गई तो यह देखा गया कि बिना

भोजन आए ही मात्र घंटी की आवाज पर कुत्ते के मुँह से लार निकलना शुरू हो गया। पावलव के अनुसार कुत्ता घंटी की आवाज पर लार के स्राव करने की क्रिया को सीख लिया है। उनके अनुसार घंटी की आवाज (उद्दीपक) तथा लार के स्राव (अनुक्रिया) के बीच एक साहचर्य (association) स्थापित हो गया जिसे अनुबन्धन (conditioning) की संज्ञा दी गई।

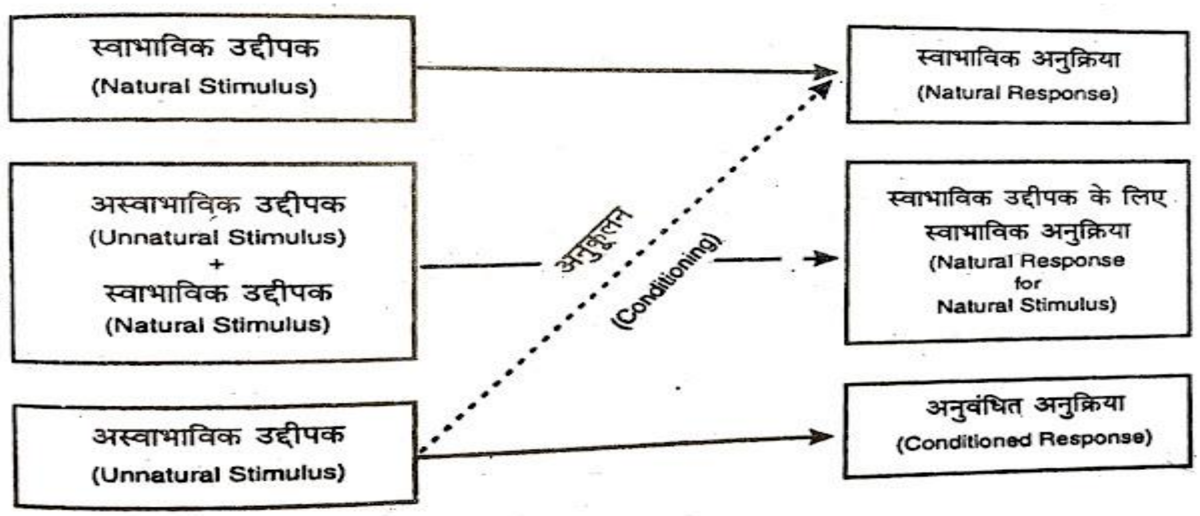

10.4.2.1 क्लासिकल अनुबन्धन के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व (Educational Implications and Importance of Theory of Classical Conditioning)

क्लासिकल अनुबंधन सिद्धान्त के शैक्षिक उपयोगिता एवं महत्व निम्नवत् हैं -

1. अच्छी आदतों का निर्माण- बालकों में लगभग सभी आदतों का निर्माण क्लासिकल अनुबन्धन सिद्धान्त के आधार पर किया जा सकता है। इस सिद्दांत के अनुसार यदि अध्यापक इस विधि द्वारा बालकों में उचित आदतों का निर्माण कर दे तो बालकों के बहुत-सा व्यवहार स्वचालित हो जाएगा। अच्छी आदतों के द्वारा बालकों में अनुशासन की भावना का विकास किया जा सकता है। स्वच्छता व सफाई से रहने की आदत, समय की पाबन्दी, बड़ों का सम्मान करना जैसी अच्छी आदतें इसी सिद्धान्त का व्यावहारिक परिणाम हैं।

2. भाषा का विकास- शैशवावस्था में बालक को भाषा का ज्ञान कराने में यह सिद्धांत उपयोगी रहता है। प्रारम्भ में बालक को कुछ शब्दों का ज्ञान विभिन्न वस्तुओं के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित करके सिखाया जाता है।

3. मनोवृत्तियों का निर्माण- सम्बद्ध प्रतिक्रिया द्वारा बालकों में अच्छी मनोवृत्ति का विकास किया जा सकता है। इसका उपयोग विद्यालय, अध्यापक तथा अधिगम के प्रति उपयुक्त मनोवृत्ति का निर्माण करने के लिए किया जा सकता है।

4. बुरी आदतों को त्यागना तथा भय को दूर करना- बुरी तथा अवांछित आदतों, भय तथा असामान्य व्यवहार आदि को समाप्त करने के लिए भी अनुबंधित अनुक्रिया सिद्धान्त का उपयोग किया जा सकता है।

कुसमायोजित बालकों में व्याप्त चिन्ता तथा भय का निवारण भी इसके द्वारा किया जा सकता है।

5. संवेगात्मक अस्थिरता का उपचार- पावलव के अनुकूलित-अनुक्रिया सिद्धांत का उपयोग बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता को दूर करने और भावात्मक विकास में सुधार करने के लिए किया जा सकता है, साथ ही मानसिक रूप से पिछड़े बालकों को पढ़ाने और प्रशिक्षित करने में भी यह सिद्धांत सहायक हो सकता है।

6. समाजीकरण में सहायक- शिक्षा का एक उद्देश्य बालक का सामाजिक विकास करना है। यह सिद्धान्त बालक के समाजीकरण में सहायक रहता है। विद्वानों व अध्यापकों के प्रति छात्रों का उचित दृष्टिकोण विकसित करने के लिए भी अनुबंधित अनुक्रिया सिद्धान्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यदि अनुकूलन गलत हो गया तब व्यक्ति भय, घृणा, अन्धविश्वास जैसी अप्राकृतिक प्रतिक्रियायें कर सकता है।

10.4.3 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत (Skinners' Operant Conditioning Theory)

B.F. स्किनर ने क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जो एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे और उन्होंने 1938 में अपने इस परीक्षण की शुरुआत की, जिसमें उन्होंने व्यवहार को उसके परिणामों के आधार पर समझने और नियंत्रित करने का प्रयास किया। स्किनर का क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त के दूसरे नाम निम्नलिखित हैं :

1. सक्रिय अनुबंधन का सिद्धान्त
2. अभिक्रमित अनुदेशन का सिद्धान्त

3. नैमित्तिक अनुबंधन का सिद्धान्त

4. कार्यात्मक प्रतिबद्धता का सिद्धान्त

5. R-S Theory

6. Skinner R-S Theory of Learning

क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त में स्किनर ने दो प्रयोग किये उन दो प्रयोगो में – पहला प्रयोग उन्होंने चूहे पर तथा

दूसरा कबूतर पर किया था।

बी.एफ. स्किनर ने अपने क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत के लिए एक प्रसिद्ध प्रयोग किया था, जिसमें उन्होंने चूहे को एक विशेष बक्से में रखा, जिसे स्किनर बॉक्स कहा जाता है। इस प्रयोग में, चूहे को लीवर दबाने पर भोजन मिलता था, जिससे चूहे ने लीवर दबाने की क्रिया को सीख लिया और भोजन प्राप्त करने के लिए बार-बार लीवर दबाने लगा। स्किनर के परीक्षण में, चूहे को एक विशेष पिंजड़े में रखा गया था इसमें एक लीवर था जो भोजन की नली को खोलता था। शुरुआत में, चूहे ने अनियमित रूप से लीवर दबाया और भोजन प्राप्त किया। धीरे-धीरे, चूहे ने सीख लिया कि लीवर दबाने से भोजन मिलता है, और उसने जानबूझकर लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना शुरू कर दिया। इससे यह

सिद्ध हुआ कि जब किसी क्रिया के बाद पुनर्बलन (भोजन) मिलता है, तो उस क्रिया को दोहराने की संभावना बढ़ जाती है, जिससे सीखने की प्रक्रिया में मदद मिलती है। इस परीक्षण ने क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत की नींव रखी।

स्किनर ने सीखने के सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए अपना दूसरा प्रयोग 1943 में एक कबूतर पर किया।

स्कीनर ने इस बॉक्स में एक भूखे कबूतर को बंद कर दिया। स्किनर के कबूतर प्रयोग में, एक भूखे कबूतर को एक विशेष बॉक्स में रखा गया था, जिसमें एक प्रकाशित चाबी थी। शुरुआत में कबूतर ने अनियमित रूप से चाबी पर चोंच मारी, लेकिन जब भी उसने सही तरीके से चाबी दबाई, उसे भोजन का पुरस्कार मिला। इस प्रक्रिया के दौरान, कबूतर ने चाबी दबाने और भोजन प्राप्त करने के बीच एक संबंध स्थापित किया। जैसे ही कबूतर ने चाबी दबाने की क्रिया को भोजन प्राप्त करने से जोड़ा, उसने इस क्रिया को बार-बार दोहराना शुरू कर दिया। इस प्रयोग ने दिखाया कि कबूतर का व्यवहार उसके परिणामों के आधार पर सीखा और मजबूत किया गया था, जो क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत का मूल आधार है।

स्किनर के क्रिया-प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया में पुनर्बलन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब किसी प्राणी को किसी क्रिया के परिणामस्वरूप सुखद अनुभव होता है, तो वह उस क्रिया को दोहराने की प्रवृत्ति विकसित करता है। इसे पुनर्बलन कहा जाता है, जो भविष्य में उस क्रिया को दोहराने की संभावना को बढ़ाता है। पुनर्बलन दो प्रकार का होता है: धनात्मक पुनर्बलन, जिसमें सुखद परिणाम के रूप में पुरस्कार मिलता है, और

ऋणात्मक पुनर्बलन, जिसमें अप्रिय उत्तेजना को हटाने से प्राणी को राहत मिलती है। इसके अलावा, प्राथमिक पुनर्बलन और गौण पुनर्बलन भी होते हैं, जो प्राणी की मूलभूत आवश्यकताओं और सीखने के अनुभवों पर आधारित होते हैं। इस सिद्धांत का उपयोग शिक्षा और व्यवहार विश्लेषण में व्यापक रूप से किया जाता है, जिससे व्यक्तियों को वांछित व्यवहार सीखने और विकसित करने में मदद मिलती है।

स्किनर ने इस सिद्धान्त को क्रिया-प्रसूत (operant) अथवा साधक (instrumental) अनुबन्धन कहा है। स्किनर के अनुसार क्रिया-प्रसूत अनुकूलन एक प्रकार की अधिगम प्रक्रिया है जिसके द्वारा सीखने को अधिक संभाव्य (probable) व निरन्तर (frequent) बनाया जाता है। स्किनर का क्रिया-प्रसूत सिद्धांत पुनर्बलन (Reinforcement) पर विशेष बल देता है।

इस प्रकार धनात्मक पुनर्बलन और ऋणात्मक पुनर्बलन दो प्रकार के पुनर्बलन हैं जो व्यवहार को प्रभावित करते हैं। धनात्मक पुनर्बलन में, किसी क्रिया के परिणामस्वरूप सुखद या वांछित परिणाम मिलता है, जिससे उस क्रिया को दोहराने की संभावना बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, एक भूखे कबूतर को बटन दबाने पर भोजन मिलता है, जिससे वह बटन दबाने की क्रिया को दोहराता है। ऋणात्मक पुनर्बलन में, किसी क्रिया के परिणामस्वरूप अप्रिय या अवांछित उत्तेजना को हटाया जाता है, जिससे उस क्रिया को दोहराने की संभावना बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, एक बालक जो शिक्षक से डरता है, शिक्षक की अनुपस्थिति में अधिक सक्रिय हो जाता है, क्योंकि उसे अप्रिय उत्तेजना (शिक्षक की उपस्थिति) से मुक्ति मिलती है।

10.4.3.1 स्किनर के क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त की शिक्षा में उपयोगिता एवं महत्व (Educational Implications and Importance of Operant Conditioning Theory in Education)

स्किनर के क्रिया-प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत के अनुसार, पुनर्बलन का उपयोग करके छात्रों के व्यवहार और सीखने को सकारात्मक दिशा में प्रभावित किया जा सकता है। पुनर्बलन के माध्यम से, छात्र वांछित व्यवहार और सीखने के लिए प्रोत्साहित होते हैं और उनकी प्रगति में सुधार होता है। अध्यापकों को चाहिए कि वे छात्रों को वांछित व्यवहार

और सीखने के लिए सकारात्मक पुनर्बलन प्रदान करें, जैसे कि प्रशंसा, पुरस्कार या अन्य प्रोत्साहन। इससे छात्रों की रुचि और सीखने की क्षमता में वृद्धि होगी और वे अधिक प्रभावी ढंग से सीख पाएंगे।

स्किनर के क्रिया-प्रसूत सिद्धान्त के शिक्षा में महत्व को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है -

- यह सिद्धान्त मानसिक विकास हेतु बहुत उपयोगी है। इस सिद्धान्त के माध्यम से चिंता, भय आदि का निदानात्मक शिक्षण सम्भव है। स्किनर के अनुसार वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर शिक्षण प्रदान करना चाहिए।
- क्रिया-प्रसूत सिद्धान्त के उपयोग से शब्द भंडार विकसित करने में मदद मिलती है क्योंकि शब्दों को तार्किक क्रम में प्रस्तुत करने से छात्रों को शब्दों के अर्थ और संबंध समझने में आसानी होती है। इसके अतिरिक्त पुनर्बलन के माध्यम से छात्रों को शब्दों के सही उपयोग के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के उपयोग से छात्रों की शब्दावली में वृद्धि होती है और वे अधिक प्रभावी ढंग से संवाद कर पाते हैं।
- क्रिया-प्रसूत सिद्धान्त के अनुसार, सीखने के लिए प्रेरणा एक महत्वपूर्ण कारक है। इस सिद्धान्त के उपयोग द्वारा छात्रों को पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, उनकी रुचि और उत्साह में वृद्धि होती है तथा छात्रों को उनके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त का उपयोग करके, अध्यापक छात्रों को प्रभावी ढंग से प्रेरित कर सकते हैं और उनकी सीखने की प्रक्रिया में सुधार कर सकते हैं।
- स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह छात्रों के व्यवहार और सीखने को प्रभावी ढंग से प्रभावित करने में मदद करता है तथा अध्यापकों को छात्रों को वांछित व्यवहार और सीखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए एक प्रभावी तरीका प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह शिक्षा में पुनर्बलन के महत्व को उजागर करता है, जिससे छात्रों की रुचि और सीखने की क्षमता में वृद्धि होती है।
- सक्रिय अनुबंधन का प्रयोग समस्यात्मक बालकों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करने के लिए किया जाता है। इसलिए शिक्षण कार्य में शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों को पुनर्बलन देने में इस सिद्धांत का उपयोग किया जाता है।
- छात्रों की उचित अनुक्रिया पर प्रत्येक शिक्षक पुनर्बलन के रूप में कक्षा में उस छात्र की सराहना करता हैं जिससे उन्हें ऐसे ही आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त होती हैं।

- स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त छात्रों के संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह छात्रों को स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित करता है, अभ्यास और क्रिया के माध्यम से सीखने को बढ़ावा देता है तथा छात्रों को अपने अनुभवों से सीखने और अपने कौशलों में सुधार करने में मदद करता है। इस सिद्धान्त के उपयोग से, छात्र अधिक सक्रिय और आत्मनिर्भर सीखने वाले बन सकते हैं, जो उनके भविष्य के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है।
- क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त उद्दीपन के स्थान पर अनुक्रिया और पुनर्बलन को महत्व देता हैं और अपने किये समस्त परीक्षणों के माध्यम से स्वभाविक क्रिया की सहायता से अधिगम करने पर बल देता हैं।

अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

प्र.1 थॉर्नडाइक का अधिगम सिद्धांत --------------- के नाम से भी जाना जाता है ।

प्र.2 ऑपरेटिव कंडीशनिंग का जनक-------------------को माना जाता है।

प्र.3 व्यवहारवादी सिद्धांत के अनुसार, सबसे अच्छा सीखना पुरस्कार और दंड के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। सत्य / असत्य

प्र.4 शास्त्रीय कंडीशनिंग की अवधारणा को अल्बर्ट बंडुरा ने प्रस्तुत किया सत्य / असत्य

प्र.5 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए किसने कहा है कि उनका यह सिद्धान्त इतना पूर्ण तथा वैज्ञानिक था कि उस समय के अन्य सभी मनोवैज्ञानिकों ने थॉर्नडाइक को अपना प्रारम्भ बिन्दु (Starting Point) माना था।

10.6 ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organizational Theory)

ज्ञानात्मक और क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धांत सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सिद्धांतों के अनुसार, सीखने वाला और उसका परिवेश एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सीखने वाले में आए परिवर्तनों और उनके द्वारा क्षेत्र

के प्रत्यक्षीकरण को समझने से सीखने की प्रक्रिया में सुधार किया जा सकता है। इस सिद्धांत के मुख्य प्रवर्तकों में वर्देमीअर, कोहलर और लेविन शामिल हैं। गैस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने अन्तःदृष्टि या सूझ द्वारा सीखने के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। कोहलर ने अपने प्रयोगों में चिम्पैजियों के व्यवहार को समझने के लिए अन्तःदृष्टि शब्द का प्रयोग किया। हम यहाँ पर लेविन के क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त की चर्चा करेंगे।

लेविन के क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धांत के अनुसार, सीखने वाला अपने परिवेश के साथ बातचीत करता है और अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढता है। इस सिद्धांत में उद्देश्य, अन्तर्दृष्टि और सूझबूझ के महत्व को उजागर किया गया है। सीखने वाला अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए अपनी बुद्धिमत्ता और अनुभव का उपयोग करता है। इस सिद्धांत के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं :

- सीखने वाला अपने परिवेश के साथ बातचीत करता है।
- सीखने वाला अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढता है।
- अन्तर्दृष्टि और सूझबूझ का उपयोग करके सीखने वाला अपनी समस्याओं का समाधान करता है।
- सीखने वाला अपने अनुभवों से सीखता है और अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग करता है।

इस सिद्धांत का उपयोग करके, शिक्षक सीखने की प्रक्रिया में सुधार कर सकते हैं और छात्रों को अधिक प्रभावी ढंग से सीखने में मदद कर सकते हैं।

10.6.1 लेविन का अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त (Lewin's field theory of learning)

कर्ट लेविन एक जर्मन-अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका क्षेत्र सिद्धांत मानव व्यवहार और अधिगम को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण ढांचा प्रदान करता है। लेविन के अनुसार, मानव व्यवहार और अधिगम को समझने के लिए व्यक्ति और वातावरण दोनों को महत्वपूर्ण माना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार, मानव व्यवहार व्यक्ति के आंतरिक कारकों और वातावरण के बाहरी कारकों के बीच की अन्तःक्रिया का

परिणाम होता है। लेविन के क्षेत्र सिद्धांत के अनुसार, मानव व्यवहार व्यक्ति और वातावरण दोनों का प्रतिफल है, जिसे B = f (P,E) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। यहाँ B व्यवहार, P मनोवैज्ञानिक व्यक्ति और E मनोवैज्ञानिक वातावरण को दर्शाता है। लेविन के सिद्धांत की कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं :

1. जीवन दायरा : लेविन के अनुसार, जीवन दायरा व्यक्ति के अनुभव और उसके वातावरण के बीच की अन्तःक्रिया को दर्शाता है। यह व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं को शामिल करता है, जैसे कि उसके लक्ष्य, मूल्य, और आवश्यकताएं।

2. वेक्टर्स और कर्षण : लेविन के अनुसार, वेक्टर्स और कर्षण व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाले बलों और दिशाओं को दर्शाते हैं। वेक्टर्स व्यक्ति के लक्ष्यों और आवश्यकताओं को दर्शाते हैं, जबकि कर्षण व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाले बाहरी कारकों को दर्शाता है।

3. तलरूप : लेविन के अनुसार, तलरूप व्यक्ति के जीवन दायरे की संरचना और संगठन को दर्शाता है। यह व्यक्ति के अनुभव और उसके वातावरण के बीच की अन्तःक्रिया को समझने में मदद करता है।

लेविन के सिद्धांत का उपयोग करके, शिक्षक और प्रशिक्षक व्यक्तियों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में मदद कर सकते हैं और उनकी सीखने की प्रक्रिया में सुधार कर सकते हैं। यह सिद्धांत व्यक्तियों को अपने जीवन दायरे को समझने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशलों को विकसित करने में मदद कर सकता है। लेविन के सिद्धांत के कुछ महत्वपूर्ण अनुप्रयोग इस प्रकार हैं :

शिक्षा : लेविन के सिद्धांत का उपयोग करके, शिक्षक छात्रों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में मदद कर सकते हैं और उनकी सीखने की प्रक्रिया में सुधार कर सकते हैं।

प्रशिक्षण : लेविन के सिद्धांत का उपयोग करके, प्रशिक्षक व्यक्तियों को अपने कौशलों को विकसित करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद कर सकते हैं।

व्यक्तिगत विकास : लेविन के सिद्धांत का उपयोग करके, व्यक्ति अपने जीवन दायरे को समझने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशलों को विकसित करने में मदद कर सकता है।

इस प्रकार, लेविन के क्षेत्र सिद्धांत का उपयोग करके, हम मानव व्यवहार और अधिगम को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और व्यक्तियों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में मदद कर सकते हैं।

10.6.2 क्षेत्र सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता एवं महत् (Usefulness & Importance of field theory)

कुर्ट लेविन के क्षेत्र अधिगम सिद्धान्त का शिक्षा जगत में उपयोग और महत्व निम्नलिखित इस प्रकार से है :

1. अधिगमकर्ता की मनोवैज्ञानिक समझ- क्षेत्र सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक अधिगमकर्ता को एक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के रूप में देखा जाता है, जो अपने विशिष्ट जीवन दायरे में रहता है। इस समझ के साथ, अध्यापक को अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, योग्यताओं और क्षमताओं का अध्ययन करना चाहिए और उन्हें सीखने के लिए उचित समर्थन प्रदान करना चाहिए।

2. अध्यापक की भूमिका- क्षेत्र सिद्धांत अध्यापक से यह अपेक्षा करता है कि वे अपने विद्यार्थियों के जीवन दायरे को समझें और उन्हें सीखने के लिए उचित अन्तःदृष्टि और समझ विकसित करने में सहायता करें। इसके लिए अध्यापक को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, योग्यताओं और क्षमताओं का अध्ययन करना चाहिए और उन्हें सीखने के लिए उचित समर्थन प्रदान करना चाहिए।

3. सीखने की प्रक्रिया में सुधार- क्षेत्र सिद्धांत के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया में सुधार करने के लिए अध्यापक को विद्यार्थियों के जीवन दायरे को समझना चाहिए और उन्हें सीखने के लिए उचित समर्थन प्रदान करना चाहिए। इससे विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो सकते हैं और उनकी सीखने की प्रक्रिया में सुधार हो सकता है।

4. व्यक्तिगत विकास- क्षेत्र सिद्धांत व्यक्तिगत विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह विद्यार्थियों को अपने जीवन दायरे को समझने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशलों को विकसित करने में मदद करता है।

5. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार- क्षेत्र सिद्धांत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अध्यापकों को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को संरचित और संगठित करने में मदद करता है।

6. विवेकपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य- लेविन के क्षेत्र सिद्धांत के अनुसार, सीखना एक विवेकपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। अध्यापकों को विद्यार्थियों को अपने जीवन दायरे में रहते हुए उचित सूझबूझ और अन्तःदृष्टि विकसित करने में सहायता करनी चाहिए। इससे विद्यार्थी सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं।

7. अधिगम क्षेत्र का नियोजन और संगठन- लेविन के क्षेत्र सिद्धांत के अनुसार, अधिगम क्षेत्र के उचित नियोजन, संगठन और व्यवस्थीकरण की आवश्यकता है। अध्यापकों को शिक्षण अधिगम परिस्थिति और वातावरण को इस तरह संरचित और संगठित करना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसके जीवन दायरे और शिक्षण अधिगम लक्ष्य के सन्दर्भ में अधिक से अधिक सहायता मिल सके।

इन बातों को ध्यान में रखकर, अध्यापक अपने विद्यार्थियों को सीखने की प्रक्रिया में अधिक प्रभावी ढंग से सहायता कर सकते हैं और उन्हें अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद कर सकते हैं।

10.7 सारांश (Summary)

अधिगम या सीखने के सिद्धान्त हमें यह बताते हैं कि हम कैसे सीखते हैं। थॉर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित अधिगम सिद्धान्त जिसे प्रयत्न एवं त्रुटि सिद्धान्त अथवा संयोजनवाद के नाम से जाना जाता है। हमें यह बताता है कि सीखने के दौरान हम जो प्रयास करते हैं। उनमें त्रुटि होनी नितान्त स्वाभाविक है। परन्तु प्रयास करते करते यह त्रुटियाँ कम होती जाती हैं। गलत अनुक्रियाओं के स्थान पर हर सही अनुक्रियाओं को व्यक्त करने लगते हैं तथा अन्त में इस प्रकार हम किसी भी बात को सही ढंग से कहना और करना सीख जाते हैं।

पावलव ने अपने शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त में कुत्तों के साथ किए जाने वाले अपने प्रयोगों के आधार पर यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की कि एक कृत्रिम उद्दीपक (जैसे घंटी) को अगर किसी प्राकृतिक उद्दीपक (जैसे भोजन) के साथ प्रस्तुत किया जाय और कुछ समय बाद प्राकृतिक उद्दीपक हटा लिया जाए तो यह देखा जा सकता है कि कृत्रिम उद्दीपन भी वही अनुक्रिया (मुँह में लार आना) करने में समर्थ सिद्ध होता है जो प्राकृतिक उद्दीपन द्वारा होती है। पैवलोव ने इसके द्वारा यह स्थापित करने का प्रयत्न किया कि पैवलोव के कुत्ते का यह सीखना कि जब घंटी बजती है तब खाना मिलता

है यह दोनों प्रकार के उद्दीपनों (प्राकृतिक और कृत्रिम) के भली-भाँति समन्वयन तथा उसके परिणामस्वरूप अनुक्रिया का कृत्रिम उद्दीपन के साथ अनुबन्धित होने का ही परिणाम कहा जा सकता है।

स्किनर ने चूहों एवं कबूतरों पर किए जाने वाले अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया कि हमारा अधिगम व्यवहार सक्रिय अनुबन्धन द्वारा संचालित होता है, शास्त्रीय अनुबन्धन द्वारा नहीं। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उसने कहा कि हमारे व्यवहार की कुंजी उद्दीपन के हाथ में न होकर अनुक्रिया या व्यवहार द्वारा उत्पन्न उसके परिणामों के पास होती है । सीखने हेतु सीखने वाले को पहले कोई न कोई क्रिया करनी पड़ती है, सक्रिय होना पड़ता है, इस व्यवहार को जब कोई उचित पुनर्वलन प्राप्त हो जाता है तो उसे उसी रूप में दोहराने की संभावना बढ़ती जाती है और फलस्वरूप उसे सीख लिया जाता है ।

कर्ट लेविन द्वारा प्रतिपादित लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त यह बताता है कि अधिगम व्यक्ति और वातावरण दोनों का प्रतिफल है। व्यक्ति से लेविन का तात्पर्य जैविक प्राणी से नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक व्यक्ति से है और वातावरण से तात्पर्य उस दायरे से होता है जिसमें मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति विशेष किसी परिस्थिति और समय विशेष में विचरण कर रहा होता है। इस तरह लेविन के अनुसार अधिगम और कुछ नहीं बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा परिस्थिति और समय विशेष में व्यक्ति विशेष द्वारा अपनी आवश्यकताओं के संदर्भ में किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपने जीवन दायरे की संज्ञानात्मक संरचना में अपेक्षित परिवर्तन लाने के प्रयत्न किये जाते हैं ।

10.8 शब्दावली (Glossary)

अधिगम : अधिगम का अर्थ है सीखने की प्रक्रिया जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों, अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से नए ज्ञान, कौशल और व्यवहार प्राप्त करता है । अधिगम एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति को अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करती है ।

क्लासिकल अनुबन्धन : पावलव का सिद्धांत जो बताता है कि अधिगम उद्दीपन और अनुक्रिया के बीच संबंध के माध्यम से होता है ।

ऑपरेंट अनुबन्धन : स्किनर का सिद्धांत जो बताता है कि अधिगम पुरस्कार और दंड के माध्यम से होता है ।

अवरोध : जिन कारकों का अनुबन्धन पर बाधक प्रभाव पड़ता है, उन्हें अवरोध कहा जाता है ।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

उत्तर:-

1. सबन्धवाद का सिद्धांत
2. बीएफ स्किनर
3. सत्य
4. असत्य
5. टौलमैन

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1. Campbell, Cary; Olteanu, Alin; Kull, Kalevi 2019. Learning and knowing as semiosis: Extending the conceptual apparatus of semiotics Archived 2022-04-09 at the Wayback Machine. Sign Systems Studies 47(3/4): 352–381.
2. Daniel L. Schacter; Daniel T. Gilbert; Daniel M. Wegner (2011) [2009]. Psychology, 2nd edition. Worth Publishers. p. 264. ISBN 978-1-4292-3719-2.
3. Hartley, David M.; Seid, Michael (2021). "Collaborative learning health systems: Science and practice". Learning Health Systems. 5 (3): e10286. doi:10.1002/lrh2.10286. PMC 8278439. PMID 34277947.
4. Hutchins, E., 2014. The cultural ecosystem of human cognition. Philosophical Psychology 27(1), 34–49.
5. Lakoff, G., & Johnson, M. (2008). Metaphors we live by. University of Chicago press.

6. "Non-associative Learning" (PDF). Archived from the original (PDF) on 2014-01-03. Retrieved Pear, Joseph (2014).
7. The Science of Learning. London: Psychology Press. p. 15. ISBN 978-1-317-76280-5.

10.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

प्र.1 थॉर्नडाइक के सिद्धान्त और उसके विभिन्न नियमों का शैक्षिक उपयोग एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

प्र.2 पावलव के शास्त्रीय अनुबंध सिद्धांत का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

प्र.3 स्किनर के क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

प्र.4 कुर्ट लेविन के अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।

Unit 11- Intelligence: It's meaning, Measurement of Intelligence in term of IQ.
(बुद्धि : अर्थ, आई क्यू के पदों में बुद्धि का मापन)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 बुद्धि का अर्थ

11.4 बुद्धि की परिभाषाएँ

11.5 बुद्धि की विशेषताएं

11.6 बुद्धि के प्रकार

11.7 बुद्धि का मापन

11.8 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

11.9 मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि

11.10 बुद्धि लब्धि का वर्गीकरण

11.11 बुद्धि लब्धि की निरंतरता

11.12 बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता

11.13 कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम

11.14 सारांश

11.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

11.16 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

11.17 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

मनुष्य में बहुत सारी विशेषताएं हैं जो अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती हैं। इन विशेषताओं में बुद्धि या मानसिक योग्यता का विशेष महत्त्व है, अन्य प्राणियों में कुछ न कुछ बुद्धि अवश्य पाई जाती हैं किन्तु मनुष्य में यह सर्वाधिक होती हैं।यही कारण है कि मनुष्य को संसार का सबसे बुद्धिमान प्राणी माना जाता है, परन्तु किसी भी व्यक्ति को बुद्धिमान तब तक नहीं कहा जा सकता है, जब तक कि उसके व्यवहार में निहित बुद्धि के अनेक गुणों का परीक्षण न किया जाए सामान्य तौर पर, बुद्धिमत्ता सीखने, समझने और नई परिस्थितियों के अनुकूल ढलने की क्षमता को संदर्भित करती है। इसमें तर्क, समस्या-समाधान और संचार सहित कई मानसिक क्षमताएँ शामिल हैं। बुद्धि निरंतर परिश्रम के बाद अर्जित नहीं होती। यह प्रकृति से प्राप्त एक उपहार है। बुद्धि स्मृति नहीं है। एक बुद्धिमान व्यक्ति की याददाश्त कमज़ोर हो सकती है। बुद्धि कोई ऐसा कौशल नहीं है जिसे कोई कार्यकर्ता योजनाबद्ध अभ्यास के बाद हासिल करता है। बुद्धि व्यक्ति के अच्छे व्यवहार की गारंटी नहीं है। आदि काल से मानव समाज का बुद्धि के सम्बन्ध में अपनी सोच रही है। शास्त्रों में कहा गया है- बुद्धिर्यस्य बलं तस्य अर्थात जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल अथवा शक्ति होती है। पुरातन और आधुनिक सभी शिक्षाशात्री बुद्धि को महत्त्व देते रहे हैं। कहीं-कहीं पर पुरातन चिन्तकों का अभिमत आधुनिक चिन्तकों से भी गहरा दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत ईकाई में हम बुद्धि का अर्थ उसके प्रकार ,बुद्धि लब्धि एवं बुद्धि मापन के विषय में जानेगें।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. बुद्धि का अर्थ समझ सकेंगे
2. बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर बुद्धि के सम्प्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बुद्धि के प्रकार को समझ सकेंगे।
4. बुद्धि लब्धि का अर्थ तथा उसकी उपयोगिता की व्याख्या कर सकेंगे।
5. बुद्धिमापन के विभिन्न परीक्षणों उन की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

11.3 बुद्धि का अर्थ

सामान्यता बुद्धि का आशय व्यक्ति की एक मानसिक शक्ति या क्षमता अथवा योग्यता से लिया जाता है, जिसके बलबूते वह किसी कार्य को करने का निर्णय लेकर उसे मूर्तरूप देता है। इसी आधार पर हम किसी व्यक्ति को बुद्धिमान अथवा मन्दबुद्धि कहते हैं। यद्यपि बुद्धि सम्बन्धी कई परीक्षण हुए हैं और कई अभी भी हो रहे हैं किन्तु फिर भी इसकी सर्वमान्य कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी। बुद्धि वास्तव में क्या है? जिस तरह से शोधकर्ताओं ने बुद्धि की अवधारणा को परिभाषित किया है, उसे मनोविज्ञान के जन्म के बाद से कई बार संशोधित किया गया है।

बुद्धि क्या है ? इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में सदैव मतभेद रहा है। इस मतभेद का अंत करने के लिए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अनेक अवसरों पर एकत्र हो चुके हैं। ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्पीयरमैन का मानना था कि बुद्धि में एक सामान्य कारक होता है, जिसे व्यक्तियों के बीच मापा और तुलना की जा सकती है। स्पीयरमैन ने विभिन्न बौद्धिक क्षमताओं के बीच समानताओं पर ध्यान केंद्रित किया और इस बात पर जोर नहीं दिया कि प्रत्येक को क्या विशिष्ट बनाता है। हालाँकि, आधुनिक मनोविज्ञान के विकसित होने से बहुत पहले, अरस्तू जैसे प्राचीन दार्शनिकों ने भी ऐसा ही दृष्टिकोण रखा था (सियानसियोलो और स्टर्नबर्ग, 2004)।

स्कूली शिक्षा को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण एकल चरों में से एक है बुद्धि। बुद्धि ज्ञान प्राप्त करने और उसे लागू करने की क्षमता है। स्कूल और कॉलेजों में और अपने पेशे में सफलता, सामाजिक समायोजन, सामान्य जानकारी का कब्ज़ा आदि सभी "बुद्धिमत्ता" की अवधारणा से जुड़े हैं। बुद्धिमत्ता को मानसिक क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें तर्क करने, योजना बनाने, समस्याओं को हल करने, अमूर्त रूप से सोचने, जटिल विचारों को समझने, जल्दी से सीखने और अनुभव से सीखने की क्षमता शामिल होती है। यह केवल किताबी ज्ञान, एक संकीर्ण शैक्षणिक कौशल या परीक्षा देने की होशियारी नहीं है। सरल शब्दों में, बुद्धिमत्ता कुछ और नहीं बल्कि सोचने का कौशल और जीवन के रोज़मर्रा के अनुभवों से सीखने और अनुकूलन करने की क्षमता है। कौन अधिक बुद्धिमान है? एक इंजीनियर जो पुल का डिज़ाइन बना रहा है, एक प्रबंधक जो अपने कर्मचारियों को प्रेरित कर रहा है, एक प्रोफेसर जो कक्षा पढ़ा रहा है, एक सिम्फनी में वायलिन वादक, एक लेखक जो कहानी लिख रहा है, एक अफ्रीकी बुशमैन जो रेगिस्तान में पानी

खोज रहा है? अतः किसी की बुद्धि का अनुमान इस बात से लगाया जाता है कि उसके कार्य का मूल्यांकन क्या है ? किसी स्थिति के प्रति उसकी क्या प्रतिक्रिया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि "बुद्धि में व्यक्ति की वे मानसिक एवं ज्ञानात्मक योग्यताएं शामिल हैं जो उसे जीवन की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने में सहायता देती है और उसके आनंदपूर्ण एवं संतुष्ट जीवन यापन में सहायक होती है।

11.4 बुद्धि की परिभाषाएँ

बकिन्घम के अनुसार "सीखने की योग्यता ही बुद्धि है"।

स्टर्न के अनुसार, ''बुद्धि जीवन की नई परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुरूप समायोजन करने की सामान्य योग्यता है"।

टरमन के अनुसार, ''व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है, जितनी उसमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।

वैश्लर ने बुद्धि को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है- "बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है। "।

बर्ट के अनुसार - ''बुद्धि अपेक्षाकृत नई परिस्थितियों में समायोजन करने की जन्मजात क्षमता है।''

डियरबोन के अनुसार - ''बुद्धि अधिगम करने की क्षमता अथवा अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता है।''

स्टोडार्ड के अनुसार -''बुद्धि कठिनता, अमूर्तता जटिलता, मितव्ययिता लक्ष्य की अनुकूलतासामाजिक मूल्य व मौलिकता की उत्पत्ति से युक्त क्रियाओं को करने तथा शक्ति की एकाग्रता तथा संवेगात्मक दबावों का प्रतिरोध करने की आवश्यकता वाली परिस्थितियों में इन क्रियाओं को बनाए रखने की योग्यता है।''

इन परिभाषाओं तथा अन्य अध्ययनों के आधार पर विदित होता है कि बुद्धि-

1. सीखने की योग्यता है।

2. अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।
3. समस्या समाधान की योग्यताहै।
4. अनुभव का लाभ उठाने की योग्यता है।
5. सम्बन्धों को समझने की योग्यता है।
6. पर्यावरण से सामन्जस्य स्थापन की योग्यता है।

11.5 बुद्धि की विशेषताएं -

बुद्धि में निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

1. यह एक जन्मजात शक्ति है।
2. यह अमूर्त चिन्तन की योग्यता प्रदान करती है।
3. यह सीखने में सहायता प्रदान करती है।
4. यह पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता प्रदान करती है।
5. यह जटिल समस्याओं को सरल बनाती है।
6. यह नवीन परिस्थितियों से सामन्जस्य स्थापन में सहायक होती है।
7. बुद्धि अच्छे, बुरे, सत्य, असत्य, नैतिक, अनैतिक कार्यों में अन्तर कर सकने की योग्यता प्रदान करती है।
8. बुद्धि के वितरण का लिंग, जाति एवं प्रजाति के आधार पर अन्तर नहीं है।
9. बुद्धि पर वंशानुक्रम और वातावरण का प्रभाव पड़ता है ।

11.6 बुद्धि के प्रकार

बुद्धि के निम्नलिखित प्रकार होते हैं-

1. मूर्त तथा अमूर्त बुद्धि
2. सामाजिक बुद्धि

3. यांत्रिक बुद्धि

मूर्त बुद्धि

मूर्त बुद्धि से तात्पर्य ऐसी मानसिक क्षमता से है जिसके सहारे व्यक्ति ऐसी चीजें, जो उसके सामने हैं उनके महत्व को समझता है। उनके बारे में सोचता है, अपनी इच्छा अनुसार और आवश्यकता अनुसार उनमें उनमें परिवर्तन लाकर उन्हें उपयोगी बना लेता है। इसे व्यावहारिक बुद्धि या प्रैक्टिकल इंटेलिजेंस भी कहा जाता है। इस प्रकार की बुद्धि इंजीनियरर्स,डॉक्टर्स, इंडस्ट्रियलिस्ट आदि में पाई जाती है।

अमूर्त बुद्धि

ऐसी चीजों के बारे में चिंतन करना जो आपके सामने नहीं हो उसे ही अमूर्त बुद्धि कहा जाता है। ऐसी बुद्धि में व्यक्ति शब्द ,प्रतीक तथा अन्य मूर्त चीजों के सहारे अच्छे से चिंतन कर लेता है। सामान्यतः जिन व्यक्तियों में अमूर्त बुद्धि अधिक होती है वे सफल कलाकार, पेंटर, गणितज्ञ, कहानीकार, दार्शनिक आदि होते हैं।

सामाजिक बुद्धि

सामाजिक बुद्धि, एक ऐसी बुद्धि है जो व्यक्ति को सामाजिक परिस्थितियों में समायोजित होने में मदद करती है। जिन लोगों की सामाजिक बुद्धि अच्छी होती है उन्हें अन्य लोगों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की क्षमता, अच्छा आचरण करने की क्षमता एवं समाज के अन्य लोगों से मिलजुल कर सामाजिक कार्य में हाथ बढ़ाने की क्षमता अधिक होती है। इस प्रकार की बुद्धि नेताओं, वक्ताओं, मीडिया कर्मी आदि में पाई जाती है।

11.7 बुद्धि का मापन

बुद्धि परीक्षा से ही हम व्यक्ति की बुद्धि के सम्बन्ध में जान सकते हैं। बुद्धि को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण किया है। व्यक्ति में बुद्धि के स्तर का पता लगाने के लिए बुद्धि मापन का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि ऐसा जरूरी नहीं है कि किन्ही दो व्यक्तियों का बुद्धि स्तर एक समान हो।

11.8 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

बुद्धि परीक्षणों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है, जैसे-कुछ बुद्धि परीक्षण केवल एक समय में एक व्यक्ति पर ही प्रशासित किए जाते हैं कुछ परीक्षण समूह पर प्रशासित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार पहला वर्गीकरण हुआ-

i. सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)
ii. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test)

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षणों में अधिक समय लगता है। इनमें विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। ये छोटे बच्चों के लिये विशेष रूप से उपयोगी होते हैं जबकि सामूहिक परीक्षणों में कम समय लगता है, विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। ये बड़े बच्चों के लिये प्रयोग होते हैं।

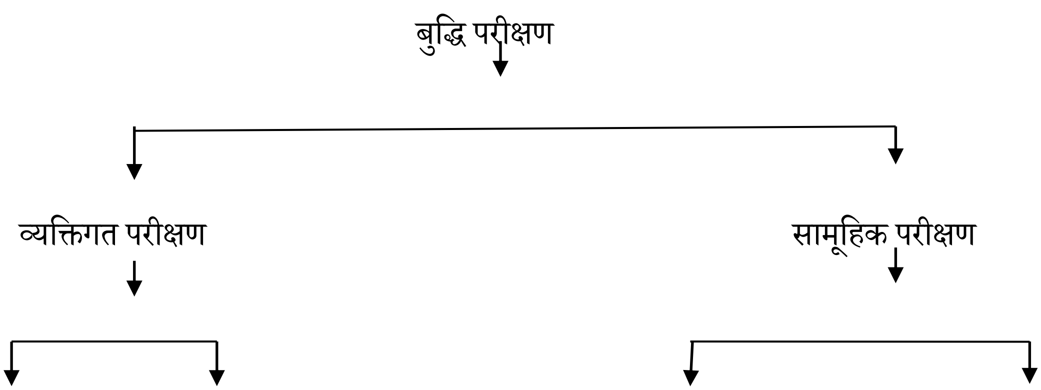

भाषात्मक परीक्षण   क्रियात्मक परीक्षण एवं भाषा भाषा रहित परीक्षण   भाषात्मक परीक्षण   भाषा रहित परीक्षण

बुद्धि परीक्षणों का वर्गीकरण

सारणी 11.1

व्यक्तिगत तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण	**सामूहिक बुद्धि परीक्षण**
एक समय में केवल एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है।	एक साथ व्यक्तियों के समूह पर प्रशासित किया जा सकता है।
इन परीक्षणों के प्रशासन में अधिक समय लगता है।	समान्यता 45 से 90 मिनट का समय प्रशासन में लगता है।
ये परीक्षण प्रशासन व समय की दृष्टि से अधिक व्यय साध्य होते हैं।	ये प्रशासन व समय की दृष्टि से अपेक्षाकृत मितव्ययी होते हैं।
इन परीक्षणों के प्रशासन के लिए प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।	सामान्य व्यक्ति भी इनका प्रशासन अल्प प्रशिक्षण प्राप्त करके कर सकते हैं।
ये परीक्षण पूर्णतया वैध तथा विश्वसनीय होते हैं।	इनके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष कम प्रमाणित होते है।
प्रायः इन परीक्षणों की समय सीमा निर्धारित नहीं होती है।	इन परीक्षणों की समय-सीमा पूर्व निर्धारित होती है।
इन परीक्षणों का अंकन कार्य कम वस्तुनिष्ठ होता है।	इनका अंकन पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ होता है।

प्रायः ये परीक्षण मौखिक प्रकृति के होते हैं।	ये परीक्षण लिखित होते हैं।
इनका प्रयोग अनपढ़ व्यक्तियों पर भी किया जा सकता है।	इनका प्रयोग पढ़े लिखे व्यक्तियों पर ही किया जाता है।
इन परीक्षणों में विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।	इन परीक्षणों में केवल सामान्य प्रोत्साहन ही दिया जा सकता है।
इन परीक्षणों में छात्र व परीक्षक के मध्य सम्पर्क स्थापित होता है।	इन परीक्षणों में छात्र व परीक्षक के मध्य सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता।
इन परीक्षणों में प्रश्न प्रायः कठिन प्रकृति के होते हैं।	इन परीक्षणों में प्रश्न प्रायः सरल प्रकृति के होते हैं।

सारणी: 11.2
व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के कुछ उदाहरण

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test)	**समूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)**
बिने साइमन परीक्षण	जलोटा का साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण
स्टैनफोर्ड-टरमन संशोधन	आर्मी ऐल्फा परीक्षण
गुड एनफ ड्रा-एक मैन परीक्षण	टंडन व मेहता का सामान्य बुद्धि परीक्षण
भाटिया बैटरी	आर्मी सामान्य वर्गीकरण परीक्षण

पोर्टियस भूल भुलैयॉं परीक्षण	आर्मी बीटा परीक्षण

बुद्धि परीक्षणों का दूसरा वर्गीकरण है-

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence test)
2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-verbal Intelligence Test)

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। इसमें सम्मिलित प्रश्नों का उत्तर परीक्षार्थी लिखकर देता है। ये परीक्षण अनपढ़, मूकबधिर, दृष्टिहीनों के लिये उपयोगी नहीं हो सकते। छोटे बच्चों पर इन परीक्षणों को उपयोग नहीं किया जा सकता।

सारणी: 11.3

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test)	**अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal Intelligence Test)**
इनका प्रयोग केवल पढ़े लिखे व्यक्तियों पर ही संभव है।	इनका प्रयोग निरक्षण, छोटे बालकों तथा मंदबुद्धि वालों पर भी किया जा सकता है।
ये कम व्यय साध्य होते हैं	ये अपेक्षाकृत अधिक व्यय साध्य होते हैं।
इन परीक्षणों में भाषा के माध्यम से बुद्धि का परीक्षण किया जाता है।	इन परीक्षणों में चित्रों, सामग्रियों, तथा क्रियाओं के माध्यम से मानसिक योग्यता का परीक्षण किया जाता है।
इन परीक्षणों में प्रश्नों की प्रतिक्रिया भाषा के माध्यम से दी जाती है।	इनमें क्रियाओं द्वारा प्रत्युत्तर दिया जाता है।

इन परीक्षणों के परिणाम परीक्षार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित रहते हैं।	इन परीक्षणों के परिणाम परीक्षार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अप्रभावित रहते हैं।

शाब्दिक तथा आशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में से प्रमुख के नाम निम्न लिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किए गये हैं।

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के कुछ नाम

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण (डॉ0 एम0 सी0 जोशी)	गुडएनफ का ड्रा ए मैन टेस्ट (डॉ0 प्रमिला पाठक के मानक) (डॉ0 के0 एल0 श्रीमाली के मानक)
सामूहिक बुद्धि परीक्षण (डॉ0 प्रयाग मेहता)	रेविन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (इलाहाबाद मनोविज्ञान शाला के मानक)
साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण(डॉ0 जलोटा)	नान वर्बल गुरप टेस्ट ऑफ इन्टेलीजेन्स (रघुवंश त्रिपाठी के मानक)
सामूहिक बुद्धि परीक्षण (इलाहबाद मनोविज्ञान प्रयोगशाला	ह्यूमैन फीगर ड्राइंग टेस्ट (सी.आई.ई. के मानक)
सामूहिक बुद्धि परीक्षण (सी0आई0ई0)	जेनकिन्स का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (सी.आई. ई. के मानक) पिजन का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

	(सी. आई. ई. के मानक) कैटिल का कल्चर फ्री टेस्ट कोहज ब्लाक डिजाइन भाटिया बैट्री

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कुछ उदाहरण- भाटिया की निष्पत्ति परीक्षणमाला

बुद्धि परीक्षण की इस निष्पत्ति परीक्षणमाला का निर्माण डा0 चन्द्रमोहन भाटिया ने किया था। डा0 भाटिया उत्तर प्रदेश मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद के संचालक रहे हैं। इन्होंने इस टेस्ट को 900 बालकों पर प्रयोग करके मानकीकरण किया। इस परीक्षणमाला में 5 टेस्ट सम्मिलित हैं-

1. **कोहज ब्लॉक डिजाइन टैस्ट** - कोहज ने अपने बुद्धि परीक्षण के लिए 17 डिजाइनों का प्रयोग किया था। डॉ0 भाटिया ने उनमें से 10 डिजाइनों का चयन किया इनमें से 5 डिजाइनों के लिए 2 मिनट तथा अन्तिम 5 डिजाइनों के लिए 3 मिनट का समय निर्धारित किया गया है। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते हैं, जिन पर डिजाइन बने रहते हैं। इन डिजाइनों को देखकर घनाकार रंगीन गुटकों से डिजाइन तैयार करना होता है। रंगीन गुटके घनाकार होते हैं। तथा उनकी प्रत्येक सतह एक या अधिक रंगों रंगी होती है।
2. **अलेक्जेन्डर पास एलोंग टैस्ट**- यह अलेक्जेन्डर (कै्रबिंज विश्वविद्यालय प्रेस) द्वारा 1932 में प्रकाशित किया गया था। इस पास एलोंग टेस्ट के तीन भाग हैं। भिन्न आकार के चार लकड़ी के बॉक्स, विभिन्न आकार के लाल तथा नीले रंग से रंगे लकड़ी के गुटके तथा विभिन्न आकृति के आठ चित्र जिन पर आकृतियां प्रिंट रहती है। इन आकृतियों को देखकर परीक्षार्थी आकृति का निर्माण करता है इन आकृतियों पर कठिन स्तर के आधार पर नम्बर छपे रहते हैं।

परीक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व परीक्षार्थी को निर्देश दिये जाते हैं। इनमें दो आकृतियों को एक के बाद दूसरा न बनाने पर आगे के पैटर्न नहीं दिये जाते।

3. **पैटर्न ड्राइंग टेस्ट**-इसे आकृति चित्रण भी कहते हैं यह संरचना डॉ0 भाटिया की स्वयं की है। इसमें आठ कार्ड होते हैं। प्रत्येक कार्ड पर एक आरेख बना होता है। परीक्षार्थी को बिना पैंसिल उठाये आरेख का निर्माण करना होता है। पहले चार आरेखों के लिए 2 मिनट का समय तथा अन्तिम चार आरेखों के लिये 3 मिनट का समय निर्धारण होता है।
4. **तत्काल स्मृति परीक्षण** इस टेस्ट में तत्काल स्मृति का परीक्षण करने के लिये परीक्षणकर्ता द्वारा बोले गये अंकों को तथा अक्षरों को परीक्षार्थी द्वारा दोहराया जाता है। इसके बाद परीक्षार्थी को परीक्षणकर्त्ता द्वारा बोले गये अंक तथा अक्षरों को व्युत्क्रम (उल्टा) दोहराना पड़ता है। जैसे- 3, 5, 7, को 7, 5, 3, तथा 4, 6, 9, 7 को 7, 9, 6, 4 आदि पहले सीधे क्रम में दो अंक बोले जाते हैं। इनके दोहराने पर क्रमशः तीन, चार पॉच तथा इसी प्रकार एक से नौ तक अंकों के दोहराने का क्रम रहता है। अक्षरों में यह संख्या 8 तक रहती है। व्युत्क्रम में अंकों की संख्या 3 से प्रारम्भ होकर 5 तक रहती है और अक्षरों में व्युत्क्रम की संख्या 3 से प्रारम्भ होकर 6 तक रहती है। परीक्षार्थी के एक बार गलत बोलने पर दो अवसर दिये जाते हैं। लेकिन ये अवसर पूर्व वाले अंकों या अक्षरों के न होकर अलग सैट के होते हैं।अक्षर तथा तथा अंकों के बोलने की गति भी पूर्व निर्धारित होती है। प्रत्येक अंक अथवा अक्षर में 1-1 सैकण्ड का अन्तर रखा जाता है।
5. **चित्र-रचना परीक्षण:** इस टेस्ट में कुल पांच चित्र होते हैं। इन पांचों चित्रों को क्रमशः 2, 4, 6, 8 तथा 12 दुकड़ों में विभाजित कर दिया गया होता है। पहले तीन चित्रों के लिए 2 मिनट का समय तथा अन्तिम 2 चित्रों के लिए 3 मिनट का समय निर्धारित रहता है।

भाटिया बैटरी के प्रशासन में कुल एक घण्टे का समय लगता है। अधिकतम अंक 95 निर्धारित होते हैं। विभिन्न 1 से 5 भागों के लिये क्रमशः 25, 20, 20, 15, 15 अंक निर्धारित किए गये हैं अंकों की प्राप्ति के आधार पर मैनुअल में दिये गये अनुसार परीक्षार्थी की मानसिक आयु की जानकारी प्राप्त की जाती है, जिसके आधार पर बुद्धिलब्धि की गणना की जाती है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण

टरमन मानसिक योग्यता परीक्षण: आर्मी अल्फा परीक्षण के आधार पर सन् 1920 में टरमन ने मानसिक योग्यता के सामूहिक परीक्षण का निर्माण किया। इस परीक्षण में 10 उप परीक्षण हैं जोकि इस प्रकार है।

1. सूचना
2. कहावतों तथा अन्य तथ्यों का निर्वचन
3. शब्दों के अर्थ तथा उनके विलोम शब्द
4. तर्क संगत चयन
5. गणितीय समस्याएं
6. वाक्यों का अर्थ
7. अनुपात पूर्ति
8. अव्यवस्थित वाक्य
9. वर्गीकरण
10. अंक श्रंखला की पूर्ति

इस परीक्षण के प्रशासन की समय सीमा 35-40 मिनट है तथा परीक्षण में कुल 185 प्रश्न सम्मिलित हैं। यह परीक्षण सामान्य वर्गीकरण करने तथा शैक्षिक सफलता का आकलन करने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इस परीक्षण का हाईस्कूल एवं कॉलेज स्तरों पर सामान्तया उपयोग किया जाता है।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

रेविन की प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स

यह सांस्कृतिक प्रभावों से मुक्त परीक्षण है इस के द्वारा बच्चों से लेकर वृद्ध व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जा सकता है यह भाषा मुक्त परीक्षण है। इसमें केवल निर्देश दिया जाता है। इसके द्वारा अनपढ़ व्यक्तियों की बुद्धि का भी परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण द्वारा प्रत्यक्षीकरण तार्किक योग्यता के द्वारा बुद्धि का मापन किया जाता है

इस परीक्षण के दो रूप हैं-

i. **रंगीन प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स**-
ii. **स्टैन्डर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स**

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण

इस परीक्षण का निर्माण श्री आर.के. ओझा मनोविज्ञान विभाग के.जी. कॉलेज मुरादाबाद तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय मनोविज्ञान विभाग से सेवानिवृत्त श्री के. राय चौधरी के द्वारा 1964 से 1970 के बीच किया गया। यह परीक्षण वस्तुनिष्ठ परीक्षण है।

11.9 मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि (Mental age and I.Q.)

बुद्धि परीक्षण का आधार मानसिक एवं शारीरिक आयु के मध्य का सम्बन्ध है बुद्धि परीक्षा के परिणाम बुद्धि लब्धि द्वारा दिखाए जाते हैं बुद्धि लब्धि मानसिक आयु के अभाव में मापी नहीं जा सकती है।

मानसिक आयु

मानसिक आयु बालक या व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यता बताती है गेट्स एवं अन्य के अनुसार –"मानसिक आयु हमें किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के समय बुद्धि परीक्षा के द्वारा ज्ञात की जाने वाली सामान्य मानसिक योग्यता के बारे में बताती है

जब हम बुद्धि का मापन किसी परीक्षण के माध्यम से करते हैं तो उससे बुद्धि लब्धि ज्ञात करते है। बुद्धिलब्धि किसी व्यक्ति के मानसिक स्तर को 100 के आधार पर बताती है। यदि व्यक्ति की बुद्धिलब्धि 100 है तो उसका बौद्धिक स्तर

सामान्य है। यदि 100 से अधिक है तो बौद्धिक स्तर सामान्य से अधिक है। कम होने पर बौद्धिक स्तर से कम होता है। बुद्धिलब्धि से मानसिक स्तर की जानकारी प्राप्त होती है।

वास्तविक/शारीरिक आयु (C.A)

किसी भी व्यक्ति की वास्तविक आयु वह होती है, जिसका निर्धारण उसकी जन्मतिथि से किया जाता है।

बुद्धि लब्धि

जर्मन मनोवैज्ञानिक विलियम स्टर्न ने सबसे पहले इसका प्रयोग किया था और बाद में टरमैन ने भी इसका प्रयोग किया स्टर्न ने अनुभव किया कि यदि 6 वर्ष की आयु का बच्चा 8 वर्ष की आयु के बच्चे के समान कार्य करता है तो वह अपनी आयु के औसत बच्चों से 8/6 अर्थात 1.33 दर्जे अधिक बुद्धिमान होगा अर्थात व्यक्ति के मानसिक विकास को मापने के लिए उसने मानसिक आयु/वास्तविक आयु अनुपात बनाया और उसे बुद्धि लब्धि की संज्ञा प्रदान की।

'बुद्धिलब्धि' जानने के लिये मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु जानना आवश्यक है। मानसिक आयु ज्ञात करने के लिये व्यक्ति को बुद्धि परीक्षण देना होता है। मानसिक आयु का सम्प्रत्यय 'बिने' ने प्रतिपादित किया। मानसिक आयु किसी व्यक्ति द्वारा किए जा सकने वाले मानसिक कार्यों से ज्ञात की जाती है, जिसकी उस आयु वर्ग से अपेक्षा की जाती है। यदि वह अपनी आयु के लिए निर्धारित कार्यों से अधिक कार्य करता है तो उसकी मानसिक आयु अधिक होगी और यदि वह अपनी आयु के लिए निर्धारित कार्यों से कम कार्य करता है तो उसकी मानसिक आयु उसकी वास्तविक आयु से कम होगी।

मानसिक परीक्षण तैयार करते समय मानसिक आयु के अनुरूप कार्यों का चयन असल में बहुत कठिन कार्य रहा है। परन्तु अब यह उतना कठिन नहीं माना जा रहा है। हम यहां शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का उदाहरण देकर यह बात समझने का प्रयास कर रहे हैं।

हमें एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण करना है। इसमें बुद्धि परीक्षण में, प्रेक्षण, अंक योग्यता शाब्दिक योग्यता, वाक् शक्ति, स्मरण शक्ति, तार्किक योग्यता, पर्यवेक्षण योग्यता, समस्या समाधान, निगमनात्मक योग्यता, आगमन योग्यता आदि के

प्रश्नों को सम्मिलित कर लेंगे प्रश्नों का स्तर 12 वर्ष से 19 वर्ष की आयु वर्ग के विद्यालयों में पढ़ने वाले बालकों के स्तर को ध्यान में रख कर किया जाएगा। जब हम इस परीक्षण को हजारों की संख्या में इसी आयु वर्ग के छात्रों पर प्रशासित करते हैं तो उनके कुछ अंक आते हैं। उन अंगों को आयु के आधार पर सारणीकृत कर लेते हैं मान लिया 15 वर्ष की आयु के बालकों के मध्यमान अंक 60 आए तो इस आधार पर हम कह सकते हैं कि 60 अंक प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों की मानसिक आयु 15 है।

इसी परीक्षण में 60 अंक प्राप्त करने वाले कुछ परीक्षार्थी 15 वर्ष के होंगे, कुछ 13 वर्ष, 13.5 वर्ष 14 वर्ष, 14.5 वर्ष, 15 वर्ष, 15.5 वर्ष, 16 वर्ष, 16.5 वर्ष, 17 वर्ष, 17.5 वर्ष, 18 वर्ष, 18.5 वर्ष तथा 19 वर्ष के भी होंगे। इन सभी 60 अंक प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों की मानसिक आयु 15 वर्ष मानी जाएगी।

मानसिक आयु ज्ञात हो जाने पर उसकी वास्तविक आयु से भाग देकर 100 से गुणा करके बुद्धिलब्धि ज्ञात कर ली जाती है। मानसिक आयु बुद्धि परीक्षणों में प्राप्त अंकों के आधार पर बनाई गई सारणी से ज्ञात की जाती है, जो कि उस परीक्षण के मैनुअल में दी गई होती है। इस प्रकार –

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

या $$IQ = \frac{M.A}{C.A} \times 100$$

M.A= mental age

C.A= chronological age

पीछे दिए गए उदाहरणों के आधार पर बुद्धिलब्धि की गणना नीचे की सारणी में की जा रही है।

सारणी 11.4

बुद्धि-लब्धि की गणना

मानसिक आयु	वास्तविक आयु	बुद्धिलब्धि पूर्णांकों में
15	13.5	(15/13.5) x100 =111
15	14.0	(15/14) x100 = 107
15	14.5	(15/14.5) x100 = 103
15	15.0	(15/15)x 100 = 100
15	15.5	(15/15.5) x100 =97
15	16.0	(15/16) x 100 = 94
15	16.5	(15/16.5) x100 = 91
15	17.0	(15/17) x 100 = 88
15	17.5	(15/17.5) x 100 = 86
15	18.0	(15/18) x 100 = 83
15	18.5	(15/18.5) x 100 = 81

15	19.0	(15/19) x 100 = 9

ऊपर दिया गया उदाहरण एक काल्पनिक उदाहरण है। इसे मानसिक आयु तथा बुद्धिलब्धि को समझने के लिये प्रयोग किया गया है।

11.10 बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण (Classification of I.Q.)

बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण अलग-अलग बुद्धि परीक्षणों में अलग-अलग किया गया है। यहां पर हम स्टेनफोर्ड बिने के आधार पर बुद्धिलब्धि प्राप्तांकों का वर्गीकरण सारणी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

सारिणी 11.5

स्टेनफोर्ड-बिने के आधार पर बुद्धिलब्धि का वर्गीरण

बुद्धिलब्धि	व्याख्या	जनसंख्या में प्रतिशत
140 या अधिक	प्रतिभाशाली (Genius)	1 %
120-139	अति श्रेष्ठ (Very Superior)	7%
110-119	श्रेष्ठ (Superior)	16 %
90-109	समान्य (Normal)	50 %
80-89	मन्द (Dull)	16 %
70-79	सीमान्त मन्द बुद्धि (Borderline Feebleminded)	7%

60-69	मूर्ख (Moron)	3 %
20-59	मूढ़ (Imbecile)	
20 से कम	जड़ (Idiot)	

जिस परीक्षण से बुद्धि लब्धि की गणना की गई है, उसी के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए। बुद्धि के मापन के क्षेत्र में वेश्लर का भी महत्त्व पूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने भी विश्वस्तरीय बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया है। वेश्लर ने सामान्य सम्भावयता वक्र के आधार पर स्पष्ट किया है। लगभग 50 प्रतिशत लोगों को प्राप्तांक औसत प्रसार अर्थात् 90-110 के बीच पड़ता है वेश्लर का निष्कर्ष है कि केवल पॉच प्रतिशत व्यक्ति ही 130 बुद्धिलब्धि या इस से अधिक या 70 बुद्धि लब्धि से कम बुद्धि लब्धि वाले होते हैं।

11.11 बुद्धि -लब्धि की निरंतरता

यह माना जाता है, कि सामान्यत: बुद्धि 16 या 18 वर्ष की आयु तक बढ़ती है ,परंतु अधिकांश व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि एक जैसी ही रहती है बुद्धि लब्धि से हमें किसी व्यक्ति की बौद्धिक योग्यता का ज्ञान प्राप्त होता है –अर्थात अपनी आयु के व्यक्तियों की तुलना में उसकी बुद्धि का अनुपात मालूम होता है यह ऐसा माप है जो हमें किसी व्यक्ति की बौद्धिक संभावनाओं का ज्ञान करता है जो न्यूनाधिक रूप से स्थायी होता है

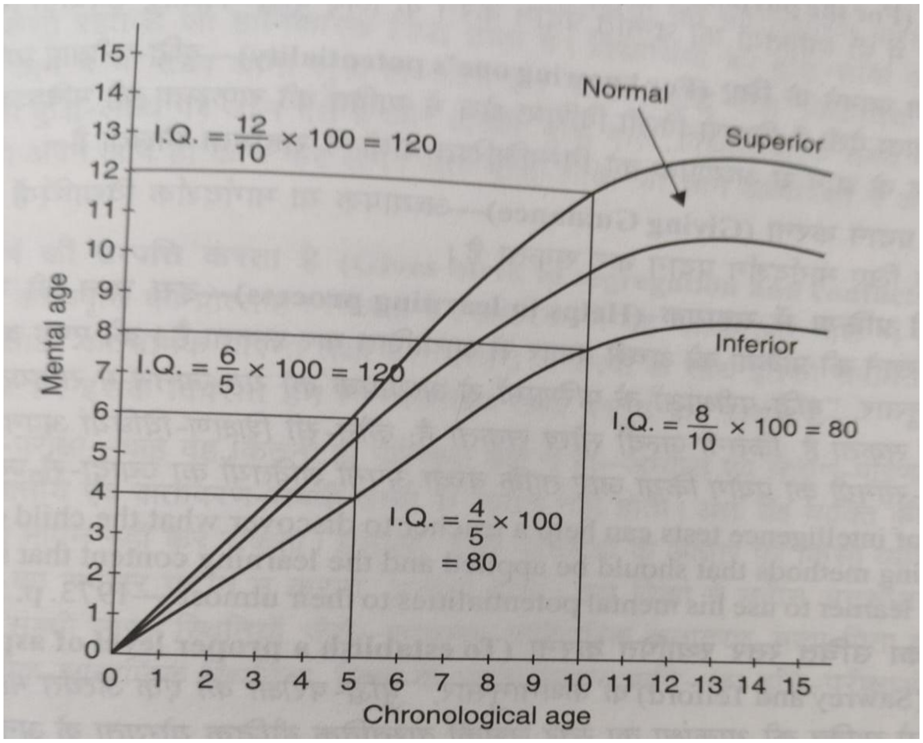

स्रोत – शिक्षा मनोविज्ञान ,एस .के मंगल पृष्ठ संख्या -359

यह ठीक है कि व्यक्ति की बुद्धि बढ़ती है परंतु इसके साथ-साथ उसके सम आयु वाले व्यक्तियों की आयु भी बढ़ती है। इसलिए बुद्धि लब्धि जो किसी व्यक्ति की अपेक्षाकृत प्रतिभा संपन्नता या योग्यता का परिचय देती है, व्यावहारिक रूप से एक ही रहती है। साधारण स्थितियों में दुर्घटना या बिमारी को छोडकर व्यक्ति की बुद्धि लब्धि समस्त जीवन एक ही रहती है या उतने वर्षों तक कम से कम एक ही रहती है। जितने वर्षों के लिए मापन स्केल बनाया गया हो। बुद्धि लब्धि के इस तत्व को मनोवैज्ञानिक बुद्धि लब्धि की निरंतरता कहते हैं।

11.12 बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता

व्यवहारिक विज्ञानों में जिसके अन्तर्गत शिक्षा, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र को सम्मिलित किया जाना है, बुद्धि परीक्षणों का व्यापक उपयोग किया जाता है। बुद्धि परीक्षण बुद्धि का मापन करने के लिए उत्तम यन्त्र है, किन्तु इनकी श्रेष्ठता उनके उचित रीति से किए गए उपयोग पर निर्भर करती है। बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता के सम्बन्ध में गेट्स का निम्नलिखित

कथन उल्लेखनीय है कि 'बुद्धि परीक्षायें व्यक्ति की सम्पूर्ण योग्यता का माप नहीं करती है। पर वे उसके एक अति महत्त्व पूर्ण पहलू का अनुमान कराती है, जिसका शैक्षिक सफलता से और कुछ मात्रा में अधिकांश अन्य क्षेत्रों से निश्चित सम्बंध है। यही कारण है, कि बुद्धि परीक्षाएं शिक्षा की महत्त्व पूर्ण साधन बन गई हैं।''

बुद्धि परीक्षणों के कुछ प्रमुख उपयोग निम्नलिखित हैं-

1. **सर्वोत्तम का चुनाव**

   बुद्धि परीक्षणों की सहायता से विद्यालय में प्रवेश देने हेतु, छात्रवृत्तियों के लिए श्रेष्ठ बालकों के चुनाव में, विभिन्न प्रतियोगिता जैसे, वाद-विवाद, सामान्यज्ञान तथा कक्षा में विभिन्न उपयोगी जिम्मेदारी के निर्वहन के लिए बालकों के चुनाव करने में सहायता मिलती है।

2. **विषयों के चयन में**

   विद्यालय में पढ़ने जाने वाले विभिन्न विषयों की प्रकृति एक दूसरे से बहुत भिन्न होती है। कुछ विषय जैसे- गणित, विज्ञान आदि विषयों की प्रकृति कठिन मानी जाती हैं जबकि कुछ विषय जैसे -सामाजिक विज्ञान की प्रकृति सरल मानी जाती है। इसी तरह प्रत्येक छात्र भी एक दूसरे से भिन्न होता है यह भिन्नता विभिन्न क्षेत्रों जैसे बुद्धि, अभिरुचि, अभियोग्यता से सम्बन्धित होती है। छात्रों की इस भिन्नता का मापन करने उनके अनुकूल विषय के चयन में बुद्धि परीक्षणों का महत्त्व पूर्ण योगदान है।

3. **बालकों का वर्गीकरण**

   बुद्धि परीक्षणों के आधार पर कक्षा के बालकों की प्रखर बुद्धि, औसत बुद्धि तथा मन्दबुद्धि में विभक्त करने का कार्य भी बुद्धि परीक्षणों के आधार पर किया जाता है। तथा बालकों के प्रकार के अनुकूल उसी स्तर के अधिगम अनुभव प्रदान करने के सुझाव दिए जाते हैं।

4. **छात्रों की भावी सफलता का ज्ञान**

बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त परिणामों के आधार पर छात्रों की भावी सफलताओं की भविष्यवाणी की जाती है। छात्रों की बौद्धिक योग्यताओं के आधार पर उनके अभिभावक तथा शिक्षक, शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था कर सकते हैं। फलस्वरूप बालक अपने भावी जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

5. **विद्यार्थियों के पिछड़ने का पता लगाने के लिए**

   बुद्धि परीक्षणों की सहायता से विद्यार्थियों के पिछड़ेपन का पता लगाकर उसी अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करने में सहायता मिलती है।

6. **अनुसंधान कार्य में सहायक**

   शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक अनुसन्धान कार्यों में बुद्धि परीक्षणों का व्यापक उपयोग किया जाता है। बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त परिणाम इस प्रकार के अनुसंधान कार्यों के लिए आधार का कार्य करते हैं।

7. **बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान**

   बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। इसके द्वारा उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार व्यवसायों का चयन करने के लिए परामर्श दिया जा सकता है।

8. **निदानात्मक उद्देश्यों के लिए**

   बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग नैदानिक उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है। बुद्धि परीक्षण छात्रों को अधिगम में उत्पन्न हो रही कठिनाईयों का ज्ञान प्रदान करने में सहायता करता है। बालकों की बुद्धि का ज्ञान करके उनकी शैक्षिक प्रगति, समायोजन आदि को अच्छी तरह से संचालित किया जा सकता है।

11.13 कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम (Name of Some Main Intelligence Tests)

बुद्धि के मापन के लिए बहुत से बुद्धि परीक्षणों का निर्माण मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम निम्नलिखित हैं-

1. बिने साइमन परीक्षण अल्फ्रेड बिने तथा साइमन (1905)-

2. बिने साइमन परीक्षण अल्फ्रेड बिने तथा साइमन (1908)-
3. पिन्ट पैटसन स्केल ऑफ परफोर्मेन्सआर. पिन्टर तथा डी. पैटरसन (1917)-
4. आर्मी एल्फा परीक्षण(1917) -
5. आर्मी बीटा परीक्षणआर्थर एस. आटिस (1919)-
6. पोर्टियल भूल भूलैया परीक्षणएस. डी. पोर्टियस (1924)-
7. रेविन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिकस जेसी. रेविन (1938).
8. संस्कृति मुक्त परीक्षण आरवी. कैटल (1944) .
9. वैश्लर बुद्धि परीक्षणडी.वैश्लर (1949) -
10. वैश्लर बुद्धि परीक्षण .(प्रौढ़ों के लिए) डी वैश्लर (1955)

भारत में निर्मित कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम निम्नलिखित हैं-

1. मानसिंक योग्यता मापन का सामूहिक परीक्षणएल.के. शाह (1937)-
2. बुद्धि का अशाब्दिक परीक्षणमेन्जल (1938)-
3. बुद्धि मापन का शाब्दिक परीक्षण मनोविज्ञान शाला , इलाहाबाद (1954)
4. निष्पादन परीक्षण माला डा. सी. एम. भाटिया (1955)-
5. सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण डा. आर. के. टण्डन (1961)-
6. सामूहिक बुद्धि परीक्षणप्रयाग मेहता (1961)-
7. साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण डा. एस. जलोटा (1963)-
8. भारतीय बच्चों के लिए वैश्लर बुद्धि मापनीमालिन्स (1969)-
9. मानसिक योग्यता का सामूहिक परीक्षण डा. आर.के. टण्डन (1970)-
10. मिश्रित प्रकार का बुद्धि परीक्षणडा. पी. एन. मेहरोत्रा (1971)-
11. शाब्दिक बुद्धि परीक्षणके. रायचौधरी तथा आर.के. ओझा (1971)-

12. सामान्य बुद्धि परीक्षणपाल तथा मिश्रा (1987)-

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न –

1. किन्हीं दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम लिखिए।
2. भारत में निर्मित किन्हीं दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम लिखिए।
3. बुद्धि लब्धि ज्ञात करने का सूत्र लिखिए।
4. प्रतिभाशाली बालकों की बुद्धि लब्धि कितनी होती है ?

11.14 सारांश

बुद्धि, शब्द मनोविज्ञान की दुनिया में ही नहीं बल्कि एक व्यक्ति और समाज के लिए भी अहम भूमिका निभाता है। व्यक्ति के कार्य करने करने की कुशलता, सटीकता जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में बुद्धि का बहुत बड़ा योगदान रहता है।। बुद्धि के अनेक प्रकार हैं जैसे- मूर्त तथा अमूर्त बुद्धि, सामाजिक बुद्धि, यांत्रिक बुद्धि, आदि ।बुद्धि- परीक्षण का तात्पर्य किसी की मानसिक योग्यता का मापन करना है, अर्थात उसकी मानसिक योग्यताएँ और उनकी मात्रा का पता लगाना है। कई मनोवैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी तरह से बुद्धि परीक्षण के तरीकों को बताया है, जिनमें एक दूसरे से भिन्नता भी पाई जाती है। लेकिन सभी परीक्षणों का उद्देश्य बुद्धि का मापन करना ही है। जैसे- व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण सामूहिक बुद्धि परीक्षण ,शाब्दिक ,अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण आदि । बुद्धि लब्धि बालक में स्थित बुद्धि का मापन है 'बुद्धि परीक्षाएं व्यक्ति की सम्पूर्ण योग्यता का माप नहीं करती है। पर वे उसके एक अति महत्त्व पूर्ण पहलू का अनुमान कराती है, जिसका शैक्षिक सफलता से और कुछ मात्रा में अधिकांश अन्य क्षेत्रों से निश्चित सम्बंध है। बुद्धि परीक्षणों का उपयोग-सर्वोत्तम के चुनाव, विषयों के चयन, बच्चों के वर्गीकरण, बच्चों की भावी सफलता का पूर्वानुमान, शिक्षा में पिछड़ने के कारण का पता लगाने, शैक्षिक अनुसंधानों में, बच्चों की व्यावसायिक योग्यता का अनुमान लगाने के लिये तथा उनकी अधिगम से सम्बन्धित कठिनाइयों को जानने के लिए किया जाता है।

11.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम हैं-
   i. बिने साइमन परीक्षण अल्फ्रेड बिने तथा साइमन (1905)-
   ii. आर्मी एल्फा परीक्षणआर्थर एस. ओटिस (1917)-
2. भारत में निर्मित किन्हीं दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम हैं-
   i. भारतीय बच्चों के लिए वैश्लर बुद्धि मापन(1969)मालिन्स
   ii. साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण (1963)जलोटा .एस .डॉ
3. $\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$
4. 140 या अधिक

11.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
2. Mangal, S.K. (2007), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
3. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra .Vinod Pustak Mandir.
4. Pathak, P.D. (2012), Educational Psychology, Agra.
5. MAED-104 Uttarakhand Open University.

11.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. बुद्धि का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
2. बुद्धि लब्धि के संप्रत्यय की व्याख्या कीजिए।
3. बुद्धि की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।
4. शाब्दिक व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर लिखिए।
5. व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर लिखिए।
6. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

Unit-12- Theories of Intelligence (बुद्धि के सिद्धांत)

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 बिने का एक कारक सिद्धान्त

12.4 स्पीयर मैन का द्विकारक सिद्धान्त

12.5 थार्नडाइक का बहु-कारक सिद्धान्त

12.6 थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त

12.7 थाम्पसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त

12.8 बर्ट तथा बर्नन का पदानुक्रम सिद्धान्त

12.9 गिल्फोर्ड का त्रिआयामी सिद्धान्त

12.10 होवार्ड का बहु-बुद्धि सिद्धान्त

12.11 सारांश

12.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

12.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.14 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

बुद्धि की अवधारणा और इसे समझना मनोविज्ञान का आजीवन कार्य रहा है। बुद्धि को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें यह निर्धारित करने में सहायता करता है, कि किसी व्यक्ति की परिभाषित विशेषता के रूप में यह इतना महत्वपूर्ण क्यों है? शिक्षा प्रणाली इस धारणा पर आधारित है कि छात्रों को उनकी बुद्धि के अनुसार कक्षाओं में रखा जाना चाहिए, बुद्धि क्या है ? यह किन तत्वों से मिलकर बनी है? आदि इन प्रश्नों के उत्तर खोजने को मनोवैज्ञानिकों ने बहुत प्रयास किए

हैं । शिक्षा प्रणाली, व्यवसायों और सेना द्वारा लोगों को विभिन्न कार्यक्रमों, सेवाओं और संस्थानों में रखने के लिए विभिन्न पैमानों पर बुद्धि परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। यह देखते हुए कि बुद्धि का इतने सारे लोगों के जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है, अर्थात हमारी बुद्धि किस हद तक वंशानुगत और पर्यावरणीय कारकों द्वारा निर्धारित होती है। बुद्धि की प्रकृति को समझाने के लिए विभिन्न सिद्धांतों प्रतिपादन किया गया है इसके फलस्वरूप बुद्धि के सम्बन्ध में कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। ये सिद्धान्त बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं । प्रस्तुत ईकाई में हम बुद्धि के सिद्धांतों का विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

12.2 उद्देश्य

1. प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के पश्चात आप –
2. बुद्धि के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
3. बिने के एक कारक सिद्धान्त को अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
4. स्पीयर मैन के द्विकारक सिद्धान्त की चर्चा कर सकेंगे।
5. थार्नडाइक के बहुकारक सिद्धान्त की व्याख्या अपने शब्दों में कर सकेंगे।
6. थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे ।
7. थाम्पसन के प्रतिदर्श सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे ।
8. बर्ट तथा बर्नन का पदानुक्रम सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे ।
9. गिल्फोर्ड के त्रिआयामी सिद्धान्त तथा उसकी तीनों विमाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
10. हावर्ड गार्डनर के बहुबुद्धि सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे।

12.3 बिने का एक कारक सिद्धान्त (One factor theory of Bine)

एक-कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिने ने 1911 में किया तथा अमेरिका के मनोवैज्ञानिक टर्मन तथा जर्मनी के मनोवैज्ञानिक एंबिगास ने इसका समर्थन किया। इस सिद्धांत को यूनी फेक्टर

थ्योरी (uni factor theory) भी कहते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि वह शक्ति है जो समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है। इस सिद्धान्त के मानने वालों ने बुद्धि को समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करने वाली एक शक्ति के रूप में माना है। अर्थात बुद्धि के खण्ड नहीं होते, वह एकात्मक होती है। इसकी मात्रा सब व्यक्तियों में अलग-अलग होती है। बुद्धि सभी मानसिक क्रियाओं पर एक जैसा प्रभाव डालती है। किसी व्यक्ति की एक क्षेत्र में निपुणता अन्य क्षेत्रों में भी उसे निपुण ही सिद्ध करती है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति कला में निपुण है तो वह खेल में भी निपुण होगा ।इसी एक कारकीय सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए बिने ने बुद्धि को व्याख्या-निर्णय की योग्यता माना है। टर्मन ने इसे विचार करने की योग्यता माना है। तथा स्टर्न ने इसे नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता के रूप में माना है।

12.4 स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त (Two Factor Theory of Spearman)

स्पीयरमैन ने द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में किया। स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धांत यह है, कि बुद्धि दो प्रकार के कारकों से बनी होती है: सामान्य बुद्धि (जी) और विशिष्ट बुद्धि (एस)। पहले कारक को उन्होंने सामान्य कारक कहा । यह व्यक्ति की समस्त मानसिक क्रियाओं में निहित होता है। यह कारक विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग होता है। सामान्य कारक जन्मजात होता है। विशिष्ट कारक अलग-अलग मानसिक क्रियाओं के लिए होते हैं। एक ही व्यक्ति में कई विशिष्ट कारक पाए जा सकते हैं। विशिष्ट कारकों को इन्होंने अर्जित माना । सन् 1911 में स्पीयरमैन ने अपने द्विकारक सिद्धान्त को बदलकर तीन कारक सिद्धान्त कर दिया, साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि विशिष्ट कारक में सामान्य कारक भी प्रभावी रहता है।

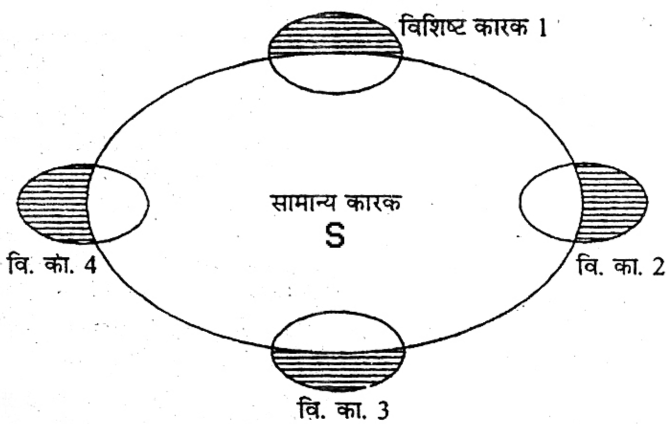

चित्र 12.2, स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त।

विशिष्ट कारक तथा सामान्य कारक दोनों मिलकर ही किसी कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता प्रदान करते हैं। स्पीयरमैन ने सामान्य कारक को वास्तविक मानसिक शक्ति माना। क्योंकि यह सभी मानसिक क्रियाओं के लिए आवश्यक एवं महत्त्व पूर्ण है।

सामान्य कारक -

स्पीयरमैन का मानना है, की G- कारक मानासिक ऊर्जा है, अर्थात सभी मानासिक कार्य को करने के लिए G कारक की उपस्थिति अनिवार्य है, और ये उपस्थिति अलग अलग व्यक्तियों में अलग अलग हो सकती है।

1. यह कारक जन्म जात एवं अपरिवर्तनीय है ,अर्थात यह कारक जीन द्वारा हमें जन्म से मिलता है। और G कारक पर किसी भी तरह की शिक्षण प्रक्षिक्षण और पूर्व अनुभूति का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह कारक वंशानुगत है यह हमें जन्म से प्राप्त हुआ है।
2. प्रत्येक व्यक्ति में G-कारक की मात्रा निश्चित है परन्तु इसका मतलब ये नहीं है कि सभी व्यक्तियों में यह बराबर है प्रत्येक व्यक्ति में इस कारक की मात्रा अलग अलग हो सकती है, अर्थात किसी में, मानासिक कार्य करने की क्षमता अधिक भी हो सकती है और किसी में कम भी।
3. G- कारक एक विषय से दूसरे विषय में स्थानांतरित भी हो सकता है।

विशिष्ट कारक (Specific Factor)

विशिष्ट कारक अर्थात जिसके पास G कारक है, वो मानसिक कार्य कर सकता है परन्तु इस G कारक के अतिरिक्त

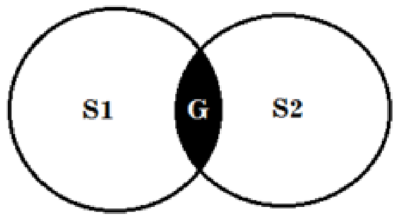

हर व्यक्ति के पास एक विशिष्ट कारक या विभिन्न प्रकार के विशिष्ट कारक हो सकते हैं। प्रत्येक मानसिक कार्य को करने में कुछ विशिष्टता की आवश्यकता होती है। क्योंकी, प्रत्येक मानसिक कार्य एक दूसरे से अलग-अलग होते हैं। स्पीयरमैन ने इसे विशिष्ट कारक (S- कारक) की संज्ञा दी है।

विशिष्ट कारक की विशेषताएं :

1. S- कारक का स्वरूप परिवर्तनशील है। अर्थात एक मानसिक क्रिया अगर कोई व्यक्ति गाना गा रहा है तो उस मे S-कारक अधिक हो सकता है, परन्तु हो सकता है, उस में पेंटिंग के लिए S -कारक कम हो।
2. विशिष्ट कारक में यह जन्मजात ना होकर अर्जित होता है, जैसा हमने कहा G कारक अनुवांशिक है, यह जन्मजात है, यह हमे अनुवांशिक रूप से मिल रहा है। पर विशिष्ट कारक जन्मजात नहीं है ये अर्जित किया जाता है। अर्थात इसे शिक्षण या पूर्व अनुभूतियों के द्वारा बढ़ा सकते हैं। जैसे- हम ट्रेनिंग देकर पेंटर बना सकते है।
3. व्यक्ति में जिस विषय से सम्बंधित S-कारक होता है, उसी से सम्बंधित कुशलता में वह विशेष सफतता प्राप्त करता है।

   इसका उदाहरण सचिन तेंदुलकर से ले सकते है G कारक तो उपस्थित था ही साथ में क्रिकेट खेलने के लिए S कारक विशिष्ट रूप से था। जिस से क्रिकेट में उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

4. S-कारक का स्थानान्तरण एक विषय से दूसरे विषय में नहीं हो सकता G-कारक द्वारा हम एक से दूसरे विषय में जा सकते हैं , परन्तु जरुरी नहीं है जिसे गाना, गाना आता हो वह पेंटिंग भी अच्छा करता हो। स्पीयरमैन ने G-कारक और S-कारक के बीच में संबंध बताने के लिए सहसंबंध विधि का उपयोग किया है।

12.5 थार्नडाइक का बहु-कारक या अल्पतंत्रीय सिद्धान्त (Multi-factor Theory of Thorndike)

थार्नडाइक का बहु-कारक या अल्पतंत्रीय सिद्धांत (Multifactor Theory of Thorndike) यह है, कि बुद्धि एक सामान्य क्षमता नहीं है, बल्कि यह कई अलग-अलग, स्वतंत्र कारकों का मिश्रण है। थार्नडाइक का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धि के अलग-अलग पहलू होते हैं, और ये पहलू विभिन्न कार्यों में अलग-अलग तरीके से काम करते हैं।

थार्नडाइक के इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि विभिन्न कारकों का मिश्रण है। थार्नडाइक ने सामान्य कारक की सत्ता को स्वीकार नहीं किया बल्कि उन्होंने मूल कारक तथा सामान्य कारक दो कारकों के विचार की शुरुवात की। इनके अनुसार मूल कारकों में आंकिक, शाब्दिक तथा तार्किक योग्यताएं होती हैं। ये व्यक्ति की समस्त मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इसके साथ थार्नडाइक ने व्यक्तित्व में किसी न किसी विशिष्ट कारक अथवा योग्यता को भी स्वीकार किया। इस प्रकार एक कारक एवं बहुकारक सिद्धांत अतिवादी सिद्धांत हैं।जिस प्रकार यह निश्चित नहीं है कि बुद्धि की अच्छी मात्रा द्वारा जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त हो सकती है ,उसी प्रकार यह निश्चित नहीं है कि विशिष्ट योग्यताओं से मनुष्य विशिष्ट क्षेत्रों में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है और शेष क्षेत्रों में पूर्णरूप से असफल रहता है। गार्डनर मर्फी के अनुसार "एक क्षेत्र की प्रतिभा का दूसरे क्षेत्र की प्रतिभा के साथ एक निश्चित सकारात्मक सम्बन्ध होता है।"

इस सिद्धान्त को थार्नडाइक का सम्बन्धवाद सिद्धान्त भी कहते हैं। इनके अनुसार जब कोई आवेग तंत्रिकातंत्र में परिभ्रमण करता है तो कुछ मानसिक सम्बन्ध बनते हैं। इन सम्बन्धों की संख्या जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक वह व्यक्ति बुद्धिमान माना जाता है, किन्तु व्यक्ति की विषय की मूल योग्यता से दूसरे विषय की मूल योग्यता

का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

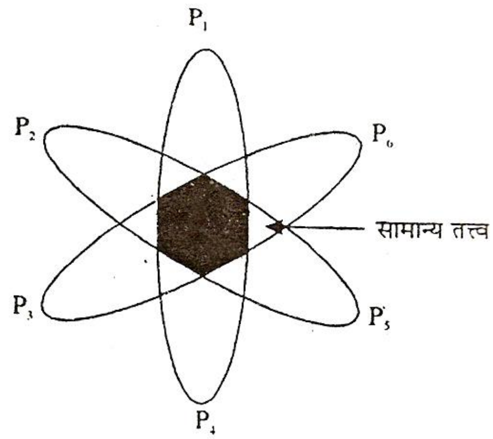

चित्र 12.3 : थार्नडाइक का बहु-कारक सिद्धान्त।

सामान्य कारक का कुछ अंश तो सामान्य मानसिक क्रियाओं में निहित होता है, जबकि प्रत्येक क्रिया का कोई न कोई मूल कारक होता है। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सभी कार्यों में एक उभयनिष्ठ तत्व अवश्य होना चाहिए । यह सिद्धांत इस निष्कर्ष की पूर्ण व्याख्या करने में असफल रहा ।

12.6 थर्स्टन का समूह तत्व सिद्धान्त (Thurston's Group Factor Theory)

यह सिद्धान्त स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त तथा थार्नडाइक के बहु-कारक सिद्धान्त का मध्यमार्गी सिद्धान्त है। जो तत्व सभी प्रतिभात्मक योग्यताओं में तो सामान्य नहीं होते परंतु कई क्रियाओं में सामान्य होते हैं उन्हें ग्रुप तत्व की संज्ञा दी गई है ।इस सिद्धांत के समर्थकों में थर्स्टन का नाम प्रमुख है थर्स्टन के अनुसार कुछ मानसिक क्रियाओं में एक प्रमुख तत्व सामान्य रूप से विद्यमान होता है जो उन क्रियाओं को मनोवैज्ञानिक एवं क्रियात्मक एकता प्रदान करता है और उन्हें मानसिक क्रियाओं से अलग करता है । उनके अनुसार बुद्धि न तो सामान्य कारकों का ही पुंज है, न ही विशिष्ट कारकों का पुंज है। ये इसे समूह कारक के रूप में देखते हैं इन्होंने विश्वविद्यालय के छात्रों पर 56 मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर प्राथमिक योग्यताओं का निर्धारण किया । ये योग्यताएं सात हैं-

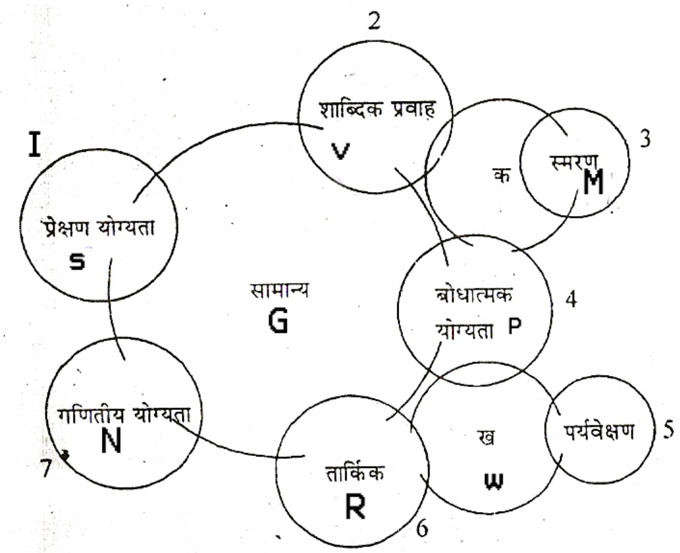

चित्र 12.4: थर्स्टन के समूह तत्त्व सिद्धान्त की रेखीय प्रस्तुती।

1. प्रेक्षण योग्यता (Spatial Ability-S)
2. गणितीय योग्यता (Number Ability-N)
3. शाब्दिक योग्यता (Verbal Ability-V)
4. शब्द प्रवाह (Word Fluency –W)
5. स्मरण शक्ति (Memory Ability-M)
6. तर्किक योग्यता (Reasoning Ability-R)
7. बोधात्मक योग्यता (Perceptual Ability-P)

इन समस्त मूल कारकों में अलग-अलग मात्रा में सहसम्बन्ध होता है। दो मूल कारकों में जितना अधिक सहसम्बन्ध होता है, उनके बीच में उतना ही अधिक हस्तान्तरण भी होता है। बुद्धि, S+N+V+W+M+R+P इस ग्रुप तत्व सिद्धांत की सबसे बड़ी कमजोरी यह है, कि यह सामान्य तत्व की धारणा का खंडन करता है। शीघ्र ही थर्स्टन को अपनी इस त्रुटि का अनुभव हो गया और उन्होंने ग्रुप तत्वों के अतिरिक्त एक सामान्य तत्व को भी ढूँढ निकाला।

12.7 थाम्पसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त (Sampling Theory of Thompson)

इस सिद्धांत के अनुसारबुद्धि कई स्वतंत्र तत्वों से बनी होती है ,।थाम्पसन के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कार्य कुछ निश्चित योग्यताओं के द्वारा पूर्ण होता है।थोड़ा प्रतिदर्श लेकर किसी का-इन विभिन्न योग्यताओं में से थोड़ा र्य को पूरा करते हैं, जिससे एक नयी योग्यता विकसित होती है। जैसे ही कार्य पूरा हो जाता है, वैसे ही नया संगठन पुनः विच्छेदित हो जाता है। प्रतिदर्श के रूप में उन्हीं योग्यताओं का चयन होता है, जिनकी उस कार्य को पूरा करने में आवश्यकता होती है। अर्थात व्यक्ति में अनेक योग्यताएं होती है परंतु जब वह किसी कार्य का संपादन करता है तो उस कार्य के संपादन में सभी योग्यताओं में से थोड़ाथोड़ा- प्रतिदर्श अथवा नमूना लेकर उस कार्य विशेष के लिए एक नवीन योग्यता बना लेता है। अथवा उन योग्यताओं का कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

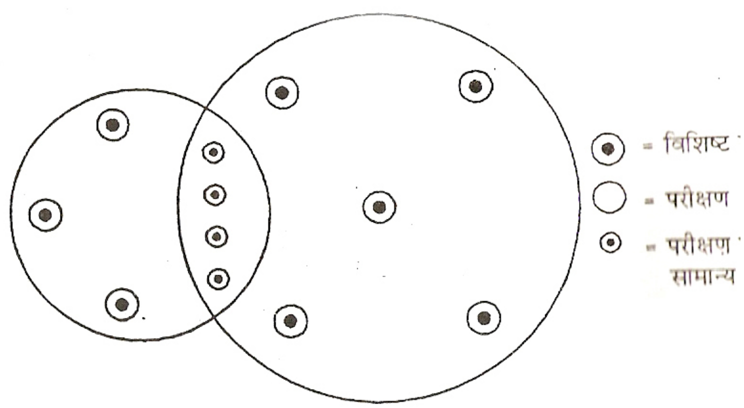

चित्र 12.5 : थाम्पसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त।

12.8 बर्ट तथा वर्नन का पदानुक्रम सिद्धान्त (Hierarchical Theory of Vernon and Burt)

बर्ट और वर्नन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1965 में किया इन्होंने अपने सिद्धान्त में सामान्य मानसिक योग्यताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया । पहली प्रयोगिक, यांत्रित प्रेक्षण तथा भौतिक, सामान्य मानसिक योग्यताएं तथा दूसरी शाब्दिक, अंकिक तथा शैक्षिक । इस वर्गीकरण को कारक विश्लेषण विधि के द्वारा परीक्षण किया गया। वर्नोन ने बुद्धि

को एक पदानुक्रमिक संरचना में व्यवस्थित करने के लिए एक मॉडल बनाया, जिसमें सबसे ऊपर सामान्य बुद्धि का एक स्तर था, और फिर नीचे विशिष्ट बुद्धि का एक स्तर था।

सामान्य बुद्धि (g): यह सिद्धांत मानता है कि बुद्धि में एक सामान्य कारक होता है जो सभी विशिष्ट बुद्धि कारकों में योगदान करता है, जिसे सामान्य बुद्धि या "g" कहा जाता है।

विशिष्ट क्षमताएँ: विशिष्ट क्षमताएँ, जैसे कि भाषा, गणित, या स्थानिक कौशल, सामान्य बुद्धि से जुड़ी होती हैं, लेकिन वे विशिष्ट क्षेत्रों में प्रदर्शन करने की क्षमता प्रदान करती हैं।

पदानुक्रमित संगठन: बुद्धि को विभिन्न स्तरों पर व्यवस्थित किया जाता है, जिसमें सामान्य बुद्धि सबसे ऊपर और विशिष्ट क्षमताएँ सबसे नीचे होती हैं।

भिन्नता का स्रोत: यह सिद्धांत मानता है कि बुद्धि में भिन्नता का एक बड़ा स्रोत सामान्य कारक है, जो व्यक्तियों के बीच बुद्धि के स्तर में अंतर को निर्धारित करता है।

मानसिक योग्यता

सामान्य मानसिक	विशेष मानसिक योग्यताए
स्मरण, चिंतन, तर्कतथा कल्पना	
प्रयोगिक, यांत्रिक	शाब्दिक, आंकिक,स्थानिक कौशल
भौतिक	शैक्षिक

12.9 गिल्फोर्ड का त्रिआयामी सिद्धान्त (Three-Factor Theory of Guilford)

गिलफोर्ड, एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक, ने बुद्धि के त्रिआयामी सिद्धांत या 3D मॉडल का प्रस्ताव दिया है। यह सिद्धांत इस बात का समर्थन करता है, कि बुद्धि 'संक्रिया',विषय वस्तु 'सामग्री' और 'उत्पादों' सहित तीन आयामों का संयोजन है। गिल्फोर्ड ने 1967 में मानसिक योग्यताओं को तीन आयामों में वर्गीकृत किया-

1. संक्रिया (Operations)
2. विषय वस्तु (Contents)तथा
3. उत्पाद (Products)

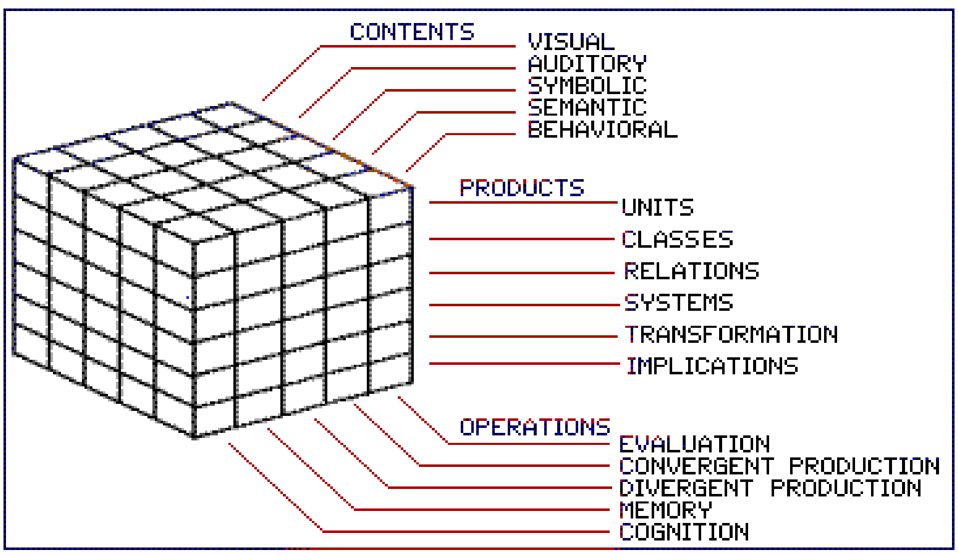

इन्होंने मानसिक योग्यताओं के इन क्षेत्रों का फैक्टर-एनेलेसिस किया तथा निष्कर्षों के आधार पर एक त्रिआयामी प्रतिरुप (मॉडल) प्रस्तुत किया, जिसमें 5x5x6 वर्ग बनाए। इस प्रकार कुल 150 सैल (कोष) प्रस्तुत किए। इन्होंने अपने अनुसंधान सार में 80 कारकों का आपसी सम्बन्ध पाया। इनके सिद्धान्त में सम्मिलित कारकों का वर्गीकरण तालिका में है -

सामान्य मानसिक बुद्धि

मानसिकक्रियाएँ Operations	विषयवस्तु Content	उत्पाद Products
मूल्यांकन Evaluation	Visual	इकाई Unit
अभिसारितचिंतन Convergent Thinking	Auditory	वर्ग Classes
अवसारितचिंतन Divergent Thinking	प्रतीकात्मक Symbolic	सम्बन्ध Relations
स्मृति Memory	अर्थगत Sematic	प्रणाली Systems
संज्ञान Cognition	व्यावहारिक Behavioural	रुपान्तरण Transformation
		निहितार्थ Implications

गिलफोर्ड (7 मार्च 1897 को जन्मे) ने चार्ल्स स्पीयरमैन के इस दृष्टिकोण का खंडन किया कि बुद्धिमत्ता को एक एकल संख्यात्मक पैरामीटर में वर्णित किया जा सकता है। गिलफोर्ड ने बुद्धि की त्रि-आयामी संरचना का प्रस्ताव रखा। गिलफोर्ड के अनुसार, बौद्धिक गतिविधि या लक्षणों के तीन आयाम हैं- "संक्रिया ", "सामग्री", और "उत्पाद"।

"संक्रिया" वह है, जो उत्तरदाता करता है। यह उपयोग की जा रही विशेष संज्ञानात्मक प्रक्रिया को संदर्भित करता है। ये हैं संज्ञान, स्मृति, अपसारी उत्पादन, अभिसारी उत्पादन और मूल्यांकन।

"सामग्री" या "विषय वस्तु" आयाम उस विशेष माध्यम को संदर्भित करता है, जिसमें कोई व्यक्ति उस समय काम कर रहा होता है। यह उन सामग्रियों या सूचनाओं की प्रकृति है जिन पर बौद्धिक संचालन किया जाता है। इनमें दृश्य, श्रवण, प्रतीकात्मक (जैसे अक्षर, संख्याएँ, आदि), अर्थपूर्ण (उदाहरण के लिए, शब्द) और व्यवहारिक शामिल हैं।

"उत्पाद" आयाम संचालन और सामग्री का परिणाम है। इसमें इकाइयाँ, वर्ग, संबंध, प्रणालियाँ, परिवर्तन और निहितार्थ शामिल हैं।

12.10 हावर्ड अर्ल गार्डनर का बहु-बुद्धि सिद्धान्त: Howard Earl Gardner's Multiple Intelligence Theory

गार्डनर ने शुरू में सात बुद्धिमत्ताओं की एक सूची तैयार की। 1999 में, उन्होंने आठवें के रूप में प्रकृतिवादी बुद्धिमत्ता को जोड़ा । उन्होंने अपने सिद्धांत में नौवीं बुद्धिमत्ता के रूप में अस्तित्ववादी बुद्धिमत्ता को शामिल करने पर भी विचार किया है (स्लाविन, 2009)। पहले दो को आम तौर पर स्कूलों में महत्व दिया गया है; अगले तीन आमतौर पर कला से जुड़े होते हैं; अगले दो वे हैं जिन्हें गार्डनर ने 'व्यक्तिगत बुद्धिमत्ता' कहा है; जबकि नए जोड़े गए अंतिम दो सौंदर्यशास्त्र और जीवन के दार्शनिक विचारों से संबंधित हैं (गार्डनर 1999)।

1. भाषाई बुद्धि (Linguistic Intelligence)
2. तार्किक गणितीय बुद्धि (Logical -Mathematic)
3. स्थानिक बुद्धि (Spatial)

4. शरीर गति की बुद्धि (Body - Kinesthetic)
5. संगीत बुद्धि (Musical)
6. वैयक्तिक-आत्म बुद्धि (Personal-Self)
7. वैयक्तिक अन्य बुद्धि (Personal Others)
8. प्रकृति वादी (Naturalistic)
9. अस्तित्वात्मक (Existential)

गार्डनर के बहु-बुद्धि सिद्धांत का उपयोग पाठ्यचर्या विकास, योजना निर्देश, पाठ्यक्रम गतिविधियों के चयन और संबंधित मूल्यांकन रणनीतियों के लिए किया जा सकता है। गार्डनर बताते हैं कि हर किसी के पास विभिन्न बुद्धिमता में ताकत और कमजोरियां होती हैं, यही कारण है कि शिक्षकों को यह तय करना चाहिए कि विषय-वस्तु और छात्रों के व्यक्तिगत वर्ग को देखते हुए पाठ्यक्रम सामग्री को सर्वोत्तम तरीके से कैसे प्रस्तुत किया जाए। उन्होंने 1983 में अपनी पुस्तक 'Frames of Mind : The Theory of Multiple Intelligence' लिखी। जिसमें गार्डनर ने बुद्धि संबंधी आठ योग्यताएं बताई। ये बुद्धि संबंधी योग्यताएं निम्नांकित हैं -

1. **भाषाई बुद्धि:** भाषाई बुद्धि में शब्दों तथा भाषा सम्बन्धी योग्यताएं आती हैं। इसमें लिखित तथा वाचिक योग्यताएं सम्मिलित है। कथा, कहानियों का पढ़ना, लिखना, उन्हें याद रखना, नोट्स तैयार करना, भाषण-सुनना, वादविवाद तथा परिचर्चा करना, शाब्दिक-स्मृति, विदेशी भाषा को शीघ्र सीख लेना शब्दों का विस्तृत भण्डार, शब्दों को याद रखना तथा उनको प्रयोग करना। इस बुद्धि में भाषा का प्रभावी ढंग से उपयोग करके खुद को अलंकारिक या काव्यात्मक रूप से व्यक्त करने की क्षमता शामिल है; और जानकारी को याद रखने के साधन के रूप में लेखक, कवि, वकील और वक्ता उन लोगों में से हैं जिन्हें हॉवर्ड गार्डनर उच्च भाषाई बुद्धि वाले मानते हैं। यह क्षेत्र बोले गए या लिखे गए शब्दों से संबंधित है। उच्च मौखिक-भाषाई बुद्धि वाले लोग शब्दों और भाषाओं के साथ एक सुविधा प्रदर्शित करते हैं। वे आम तौर पर पढ़ने, लिखने, कहानियाँ सुनाने और तारीखों के साथ शब्दों को याद रखने में अच्छे होते हैं। वे पढ़ने, नोट्स लेने, व्याख्यान सुनने और चर्चा

और बहस करके सबसे अच्छा सीखते हैं। मौखिक-भाषाई बुद्धि वाले लोग विदेशी भाषाओं को बहुत आसानी से सीखते हैं क्योंकि उनके पास उच्च मौखिक स्मृति और स्मरण शक्ति होती है, और वाक्यविन्यास और संरचना को समझने और उसमें हेरफेर करने की क्षमता होती है। इस बुद्धि वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में लेखक, वकील, पुलिसकर्मी, दार्शनिक, पत्रकार, राजनेता, कवि और शिक्षक शामिल हैं।

2. **तार्किक गणितीय बुद्धि:** इस बुद्धि में तर्क करने की योग्यता, गणना करने, शतरंज की चालें , कम्प्यूटर प्रोग्राम निर्मित करना, जटिल गणनाएं करना आदि योग्यताएं आती हैं । इस बुद्धि में तार्किक रूप से समस्याओं का विश्लेषण करने, गणितीय संचालन करने और वैज्ञानिक रूप से मुद्दों की जांच करने की क्षमता शामिल है। हॉवर्ड गार्डनर के शब्दों में, इसमें पैटर्न का पता लगाने, तर्क करने और तार्किक रूप से सोचने की क्षमता शामिल है। यह बुद्धि अक्सर वैज्ञानिक और गणितीय सोच से जुड़ी होती है। इस क्षेत्र का संबंध तर्क, अमूर्तता, तर्क और संख्याओं से है। जबकि अक्सर यह माना जाता है कि इस बुद्धि वाले लोग स्वाभाविक रूप से गणित, शतरंज, कंप्यूटर प्रोग्रामिंग और अन्य तार्किक या संख्यात्मक गतिविधियों में उत्कृष्ट होते हैं, एक अधिक सटीक परिभाषा पारंपरिक गणितीय क्षमता पर कम और तर्क क्षमताओं, पहचान के अमूर्त पैटर्न, वैज्ञानिक सोच और जांच और जटिल गणना करने की क्षमता पर अधिक जोर देती है। यह "बुद्धिमत्ता" या IQ की पारंपरिक अवधारणाओं के साथ दृढ़ता से सहसंबंधित है। इस बुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति वैज्ञानिक, भौतिकशास्त्री, गणितज्ञ, अभियन्ता, डाक्टर, अर्थशास्त्री तथा दर्शनशास्त्र में सफल होते हैं।

3. **स्थानिक बुद्धि:** इसमें कलात्मक अभिकल्प, वास्तुशिल्पी (Architects) पहेली तथा समस्या समाधान आदि योग्यताएं सम्मिलित हैं। पायलटों या नाविकों द्वारा तय की गई विस्तृत जगहों और मूर्तिकारों, वास्तुकारों या चैंपियनशिप शतरंज खिलाड़ियों द्वारा सामना की जाने वाली सीमित जगहों दोनों के पैटर्न। यह क्षेत्र स्थानिक निर्णय और मन की आंखों से कल्पना करने की क्षमता से संबंधित है। इस प्रकार की बुद्धिमत्ता वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में कलाकार, डिज़ाइनर और आर्किटेक्ट शामिल हैं। एक स्थानिक व्यक्ति पहेलियों में भी अच्छा होता है।

4. **शरीर गतिकी बुद्धिः** इस योग्यता में वस्तुओं को विधि पूर्वक सतर्कतापूर्ण कुशलतापूर्वक उपयोग करना, शारीरिक गति पर नियन्त्रण में प्रवीणता, लक्ष्य का निर्धारण, खेलकूद तथा नृत्य, अभिनय, शाब्दिक स्मृति, संगीत-स्मृति आदि योग्यताएं सम्मिलित हैं। इसमें समस्याओं को हल करने के लिए अपने पूरे शरीर या शरीर के अंगों का उपयोग करने की क्षमता शामिल है। यह शारीरिक गतिविधियों को समन्वित करने के लिए मानसिक क्षमताओं का उपयोग करने की क्षमता है। सिद्धांत रूप में, जिन लोगों के पास शारीरिक-गतिशील बुद्धि है, उन्हें मांसपेशियों की हरकतों (जैसे उठना और घूमना) को शामिल करके बेहतर सीखना चाहिए, और वे आम तौर पर खेल या नृत्य जैसी शारीरिक गतिविधियों में अच्छे होते हैं। उन्हें अभिनय या प्रदर्शन करना पसंद हो सकता है, और आम तौर पर वे निर्माण और चीजों को बनाने में अच्छे होते हैं। वे अक्सर कुछ पढ़कर या उसके बारे में सुनकर नहीं, बल्कि शारीरिक रूप से कुछ करके सबसे अच्छा सीखते हैं। इस बुद्धि वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में शामिल हैं: एथलीट, नर्तक, संगीतकार, अभिनेता, सर्जन, डॉक्टर, बिल्डर, पुलिस अधिकारी और सैनिक। हालाँकि इन करियर को वर्चुअल सिमुलेशन के माध्यम से दोहराया जा सकता है, लेकिन वे वास्तविक शारीरिक शिक्षा नहीं देंगे जो इस बुद्धि में आवश्यक है। ऐसे व्यक्ति खिलाडी, नर्तक, संगीतकार, अभिनेता, शल्य चिकित्सक, डाक्टर, भवन निर्माता, पुलिस अधिकारी तथा सैनिक अच्छे होते हैं।
5. **संगीत-बुद्धिः** जिसमें संगीत, नाट्य गायन, वादन, तथा इन्हें कम्पोज करने की योग्यता होती है उनमें यह बुद्धि पाई जाती है इस योग्यता वाले अच्छे वक्ता, लेखक, कम्पोजर आदि होते हैं। इस बुद्धि में संगीत के पैटर्न के प्रदर्शन, रचना और प्रशंसा में कौशल शामिल है। इसमें संगीत की पिच, स्वर और लय को पहचानने और रचना करने की क्षमता शामिल है। हॉवर्ड गार्डनर के अनुसार संगीत की बुद्धि भाषाई बुद्धि के लगभग संरचनात्मक समानांतर चलती है। इस क्षेत्र का संबंध ध्वनियों, लय, स्वर और संगीत के प्रति संवेदनशीलता से है। उच्च संगीत बुद्धि वाले लोगों में आम तौर पर अच्छी पिच होती है और यहां तक कि पूर्ण पिच भी हो सकती है और वे गाने, संगीत वाद्ययंत्र बजाने और संगीत रचना करने में सक्षम होते हैं। चूंकि इस बुद्धि में एक मजबूत श्रवण घटक होता है, इसलिए जो लोग इसमें सबसे मजबूत होते हैं वे व्याख्यान के माध्यम से सबसे अच्छा सीख सकते हैं। भाषा कौशल आमतौर पर उन लोगों में अत्यधिक विकसित होते हैं जिनकी आधार बुद्धि संगीत है।

इसके अलावा, वे कभी-कभी सीखने के लिए गाने या लय का उपयोग करेंगे। उनमें लय, पिच, मीटर, टोन, मेलोडी या टिम्बर के प्रति संवेदनशीलता होती है। इस बुद्धि वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में वाद्य यंत्र वादक, गायक, कंडक्टर, डिस्क-जॉकी, वक्ता, लेखक और संगीतकार शामिल हैं।

6. **वैयक्तिक आत्मबुद्धिः** इस बुद्धि के धनी व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं। ये दूसरों का मूड पहचानने भावनाओं को जानने, उनका उत्प्रेरण स्तर जानने में कुशल होते हैं। इनकी वार्ता करने का ढंग प्रभावी, परानुभूति को समझने में कुशल होते हैं। वाद-विवाद तथा वार्ताओं में आनन्द लेते है, ये अच्छे विक्रयकर्ता राजनीतिक, मैनेजर सामाजिक कार्यकर्ता एवं अध्यापन कार्यों में सफल रहते हैं। यह बुद्धि दूसरे लोगों के इरादों, प्रेरणाओं और इच्छाओं को समझने की क्षमता से संबंधित है। यह लोगों को दूसरों के साथ प्रभावी ढंग से काम करने की अनुमति देती है। शिक्षक, बिक्री करने वाले लोग, धार्मिक और राजनीतिक नेता और परामर्शदाता सभी को एक अच्छी तरह से विकसित वैयक्तिक आत्मबुद्धि की आवश्यकता होती है। यह क्षेत्र दूसरों के साथ बातचीत से संबंधित है। सिद्धांत रूप में, जिन लोगों में उच्च वैयक्तिक आत्मबुद्धि होती है, वे बहिर्मुखी होते हैं, वे प्रभावी ढंग से संवाद करते हैं और दूसरों के साथ आसानी से सहानुभूति रखते हैं, और नेता या अनुयायी हो सकते हैं। वे आम तौर पर दूसरों के साथ काम करके सबसे अच्छा सीखते हैं और अक्सर चर्चा और बहस का आनंद लेते हैं। इस बुद्धि वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में बिक्री, राजनेता, प्रबंधक, शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता शामिल हैं
7. **वैयक्तिक अन्य बुद्धिः** इस बुद्धि से युक्त व्यक्ति में अन्य लोगों की इच्छा अपेक्षा आवश्यकता आदि की समझ तथा दूसरों के व्यवहार का आत्मकथन की योग्यता होती है। इसमें खुद को समझने, अपनी भावनाओं, भय और प्रेरणाओं की सराहना करने की क्षमता शामिल है। हॉवर्ड गार्डनर के अनुसार इसमें खुद का एक प्रभावी कामकाजी मॉडल होना और अपने जीवन को विनियमित करने के लिए ऐसी जानकारी का उपयोग करने में सक्षम होना शामिल है। यह क्षेत्र आत्मनिरीक्षण और आत्म-चिंतन क्षमताओं से संबंधित है। अंतरवैयक्तिक बुद्धि वाले लोग सहज और आम तौर पर अंतर्मुखी होते हैं। वे अपनी भावनाओं और प्रेरणाओं को समझने में कुशल होते हैं। इसका मतलब है खुद की गहरी समझ होना; आपकी ताकत/कमजोरी क्या है, इस बुद्धि वाले लोगों के

लिए उपयुक्त करियर में दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, धर्मशास्त्री, वकील और लेखक शामिल हैं। अंतर वैयक्तिक बुद्धि वाले लोग अकेले काम करना भी पसंद करते हैं। अंतःवैयक्तिक बुद्धि एक महत्वपूर्ण क्षमता है जो व्यक्ति को स्वयं को बेहतर तरीके से समझने, अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और अपने जीवन में अधिक सफलता प्राप्त करने में मदद करती है।

8. **प्रकृतिवादी बुद्धिः** प्रकृतिवादी बुद्धि में प्राकृतिक कार्यविधियों को समझने की योग्यता होती हैं। इस बुद्धि का संबंध प्रकृति से है, अपने प्राकृतिक परिवेश से जुड़ी जानकारी का पोषण और उससे संबंध स्थापित करना। ऐसा व्यक्ति अपने पर्यावरण की अनेक प्रजातियों - वनस्पतियों और जीवों - की पहचान और वर्गीकरण में विशेषज्ञता प्रदर्शित करता है। इस बुद्धि वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में प्रकृतिवादी, किसान और माली शामिल हैं।
9. **अस्तित्वात्मक बुद्धिः** इस प्रकार की बुद्धि से सम्पन व्यक्त्यिों में ध्यान केन्द्रित करने की बुद्धि, अथवा इन्द्रियों के संज्ञानात्मक व्यवहार से परे का आभास होता है। यह अमूर्त घटनाओं या प्रश्नों पर विचार करने की क्षमता है, जैसे कि अनंत और अतिसूक्ष्म। इस बुद्धि वाले लोगों के लिए उपयुक्त करियर में ब्रह्मांड विज्ञानी और दार्शनिक शामिल हैं।

मिलाकर मनोविज्ञानिकों से गार्डनर के अभिमतों को स्वीकृति तथा आलोचना का सामना बराबर मिला है। कुल मिला कर इनके सिद्धान्तों का सदुपयोग बुद्धिमापन में किया जाना लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1. बिने ने .... कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया
2. थार्नडाइक ने बुद्धि के .... प्रकार बताए।
3. गिल्फोर्ड सामान्य बुद्धि को .... भागों में बाटां।
4. .... ने बुद्धि का प्रतिदर्श सिद्धान्त दिया।

5. बहुबुद्धि सिद्धान्त का प्रतिपादन ----- ने किया है।
6. थर्स्टन ने बुद्धि के .... सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
7. गिल्फोर्ड ने बुद्धि के .... सिद्धान्त का प्रतिपादन किया
8. गिल्फार्ड का बुद्धि सिद्धान्त .... आयामी है।

12.11 सारांश

बुद्धि के सिद्धांत हमें बुद्धि की संरचना का ज्ञान कराते हैं। बुद्धि की संरचना के द्वारा हमें यह मालूम होता है, कि बुद्धि किन-किन तत्वों या घटकों से मिलकर बनी है। इन घटकों की संख्या, क्रम तथा शक्ति विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग बताई है। इस प्रकार बुद्धि की संरचना की व्याख्या होने लगी। अमेरिका के, थर्स्टन थार्नडाईक, थॉमसन आदि मनोवैज्ञानिकों ने कारकों के आधार पर बुद्धि के स्वरूप विषय में अपने-अपने विचार व्यक्त किए । इसी तरह फ्रांस में अल्फ्रेड बिने, ब्रिटेन में स्पीयरमेन ने भी बुद्धि के स्वरूप के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। बुद्धि के कई सिद्धांत हैं, प्रत्येक सिद्धांत बुद्धि को समझने की अपनी विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान करता है। बुद्धि के कुछ मुख्य सिद्धांतों में शामिल हैं: एक-कारक सिद्धांत, द्विकारक सिद्धांत, बहुकारक सिद्धांत, समूह कारक सिद्धांत, और बहुबुद्धि सिद्धांत आदि।

12.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. एक
2. तीन
3. तीन
4. थाम्पसन
5. गार्डनर
6. समूह तत्व

7. त्रिआमी

8. त्रिआयामी

12.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
2. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
3. सिंह, शिरीष पाल ;(2009) शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।
4. गुप्ता एस.पी. (2014).उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान. शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
5. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
6. Mangal, S.K. (2007), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
7. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra .Vinod Pustak Mandir.
8. Pathak, P.D. (2012), Educational Psychology, Agra.
9. MAED-104 Uttarakhand Open University.

12.14 निबन्धात्मक प्रश्न –

1. थार्नडाइक के बहुकारक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. थाम्पसन के प्रतिदर्श सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
4. बर्ट तथा बर्नन का पदानुक्रम सिद्धान्त को विस्तार पूर्वक लिखिए।
5. गिल्फोर्ड के त्रिआयामी सिद्धान्त तथा उसकी तीनों विमाओं को स्पष्ट कीजिए।
6. हावर्ड गार्डनर के बहुबुद्धि सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई 13 - बुद्धि परीक्षण (Intelligence Testing)

13 .1 प्रस्तावना(Introduction)

13 .2 उद्देश्य(Objectives)

13.3 बुद्धि परीक्षण का इतिहास(History of Intelligence Testing)

13.3.i बिने –पूर्व काल (Pre-Binnet Period)

13.3.ii बिने – काल (Binet-Priod)

13.3.iii बिने –उत्तर काल (Post-Binet Period)

13.4 बुद्धि परीक्षण की तकनीकें (Techniques of Intelligence Testing)

13.4.i मानसिक आयु (Mental Age)

13.4.ii बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient)

13.5 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार (Types of Intelligence Tests)

13.5.i -व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण

13.5.ii -सामूहिक बुद्धि परीक्षण

13.6 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता

13.7 सारांश (Summary)

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

13.9 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

13.1 प्रस्तावना (Introducation)

मानव अपनी बुद्धि के कारण ही अन्य सभी प्राणियों से सर्वश्रेष्ट है। मनुष्य एक दूसरे से केवल अपने शारीरिक गुणों से नहीं, बल्कि मानसिक और बौद्धिक गुणों से भी अलग होते हैं। जिसको व्यक्तिगत भिन्नता कहते है, ये भिन्नताऐं जन्मजात हैं। कुछ लोग जन्म से ही बहुत बुद्धिमान होते हैं, जबकि कुछ समान्य एवं कम बुद्धिमान होते हैं। इन भिन्नताओं को जानने, व परखने के लिए मनुष्य सभ्यता के शुरूआती दौर से ही प्रयासरत रहा है। आजकल विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश परीक्षा का आयोजन एवं नौकरी पाने के लिए साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुजरना किसी न किसी तरह बुद्धि मापन से संबधित है। अर्थात बुद्धि मापन की प्रक्रिया को जानना व समझना बहुत ही आवश्यक है, ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बहुत ही प्रभावशाली बनाया जा सके। अतः प्रस्तुत इकाई में आपको बुद्धि के इतिहास एवं बुद्धि परीक्षण की तकनीकें और बुद्धि परीक्षण के प्रकार की विस्तृत जानकारी दी जाएगी।

13.2 उद्देश्य(Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद शिक्षार्थी –

- बुद्धि परीक्षण के इतिहास को समझ सकेगें ।
- बुद्धि परीक्षण की तकनीकें को समझ सकेगें।
- बुद्धि परीक्षणों के प्रकार को समझ सकेगें।

बुद्धि परीक्षण का अर्थ (Meaning of Intelligence test)

बुद्धि को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। कुछ इसे सामान्य योग्यता मानते हैं तो कुछ नवीन परिस्थितियों में समायोजन। गाल्टन बुद्धि को पहचानने तथा सीखने की योग्यता मानते है। जब भी वैक्तिगत भिन्नताओं के मापन पर विचार किया जाता है ,तो बुद्धि भी इसी संदर्भ में देखी-परखी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में बौद्धिक या मानसिक योग्यता भिन्न होती है। शिक्षा तथा समाज के अन्य क्षेत्रों में बुद्धि मापन को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है।

आधुनिक शिक्षा- मनोविज्ञान की एक सबसे महत्वपूर्ण देन है- बुद्धि का मापन करने के लिए बुद्धि-परीक्षण । बुद्धि-मापन का अर्थ है- बालक की मानसिक योग्यता का मापन करना या यह ज्ञात करना कि उसमें कौन सी मानसिक योग्यताये है और कितनी ? प्रत्येक बालक में इस प्रकार की कुछ जन्मजात योग्यताये होती है बुद्धि- परीक्षाण द्वारा उसकी इन्हीं योग्यताओं या उसकी मानसिक विकास का अनुमान लगाया जाता है। **ड्रावर के शब्दों में बुद्धि परीक्षाण -** " बुद्धि परीक्षाण किसी प्रकार का कार्य या समस्या होती है, जिसकी सहायता से एक व्यक्ति के मानसिक विकास के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है या मापन किया जा सकता है।"

13. 3 बुद्धि परीक्षण का इतिहास (History of Intelligence Testing)

मनाव हमेशा से ही अपने साथियों की योग्यताओं को जानने का इच्छुकरहा है । प्राचीन काल में शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन तथा पहेली बुझाने जैसी अपरिपक्क विधियों से दूसरे व्यक्तियों की योग्तायों का मापन किया जाता था ।सभ्यता के विकास तथा वैज्ञानिक विधियों के विकास के साथ- साथ योग्यता मापन की विधिया भी धीरे-धीरे परिष्कृत होती गई। सन् 1905 में बिने ने अपने सहयोगी साइमन के साथ मिलकर आधुनिक प्रकार का सबसे पहला सफल बुद्धि परीक्षण तैयार किया था।इसी के आधार पर बुद्धि मापन के इतिहास विकासक्रम को तीन काल खण्डों में बांटा जा सकता है ।

बिने –पूर्व काल (Pre-Binnet Period)

व्यक्तियों के बौद्धिक तथा अन्य मनोवैज्ञानिक गुणों में एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न होने के तथ्य को शताब्दियों पूर्व स्वीकार किया जा चुका था एवं प्रश्नोत्तर करने, वाद-विवाद करने, पहेली बुझने जैसी अप्रमापीकृत विधाओं की सहायता से बुद्धि या मानसिक योग्यताओं को जानने का प्रयास अनेक शताब्दियों तक मानव समाज द्वारा किया जाता रहा हैं मानसिक परीक्षण शब्द का प्रयोग सबसे पहले सन् 1890 में कैटेल ने किया था । उसने अपनी प्रयोगशाला में स्मरण, शुद्धता, निर्णय आदि अनेक मानसिक क्रियाओं के मापन सम्बन्धी प्रयोग करके व्यक्तिगत विभेद करने का प्रयास किया। सन् 1891 में बोल्टन ने, 1893 में जैस्ट्रो ने, सन् 1894 में गिलबर्ट ने, 1895 में बिने ने स्मृति,ज्यामिति डिजाइन, पाठन ,निर्देश, ग्रहणशीलता, नैतिक भाव आदि से संबंधित प्रश्नों की एक विस्तृत सूची तैयार की थी। प्रश्नों की यह सूची ही बाद में बिने साइमन बुद्धि परीक्षण का प्रमुख आधार बनी।

बिने – काल (Binet-Priod)

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ से फ्रांसीसी शिक्षा अधिकारियों का ध्यान अपने यहां के प्राथमिक विद्यालय में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की बड़ी संख्या की तरफ आकर्षित हुआ। अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की यह विशाल संख्या क्या छात्रों के ही द्वारा कठिन परिश्रम न करने का परिणाम है। अथवा छात्रों की जन्मजात योग्यता में ही कोई कमी है। इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए फ्रांस के जन शिक्षा मंत्री के द्वारा सन 1904 में एक आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने एक ऐसी वस्तुनिष्ठ परीक्षण की आवश्यकता महसूस की, जो अल्प बुद्धि छात्रों को छाँट सके। इस आयोग के द्वारा बुद्धि परीक्षण के निर्माण की आवश्यकता महसूस करने के परिणाम स्वरुप बिने तथा साइमन नामक दो व्यक्तियों की विशेष योगदान से प्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण हुआ तथा इसे 1905 का बिने साइमन बुद्धि परीक्षण कहा गया। वास्तव में बिने तथा साइमन इस आयोग के सदस्य थे तथा बुद्धि का मापन करने के लिए प्रयुक्त की जा सकने वाली विभिन्न संभावित विधियों पर विचार करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे की सबसे उपयुक्त विधि अनेक छोटे-छोटे मानसिक कार्यों का चयन करके क्या देखा जाये कि विभिन्न आयु के बालक उनमें से किन-किन कार्यों को सफलतापूर्वक कर पाते हैं तथा उन्होंने निर्णय स्मृति, तर्क, अंकगणना जैसे विभिन्न मानसिक कार्यों से संबंधित अनेक प्रश्न तैयार किये । इस प्रश्नों को अनेक बालको पर प्रशासित करके उन्होंने कुल 10 प्रश्नों का चयन किया उन्हें कठिनता के बढ़ते क्रम में व्यवस्थित करके बुद्धि परीक्षण का रूप दिया इस परीक्षण की सहायता से बिने तथा साइमन ने बालकों को बुद्धि के अनुरूप अधिक वस्तुनिष्ट ढंग से वर्गीकृत करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

बुद्धि मापन के क्षेत्र में प्राप्त अपनी सफलता से उत्साहित बिने तथा साइमन ने अपने इस परीक्षण में सुधार करके सन् 1908 में इसे नवीन रूप से प्रस्तुत किया। सन 1908 में प्रश्नों की संख्या बढाकर के 59 कर दी गई तथा इन्हें आयुवार वर्गों में बांटा गया । प्रत्येक आयु वर्ग के लिए कुछ प्रश्नों को निश्चित किया गया।

मानसिक आयु के प्रत्यय का प्रतिपादन भी बिने तथा साइमन ने इन परीक्षण में किया। उसने कहा कि कुछ भी मानसिक क्रियो का चयन किया जा सकता है, जिनकी किसी दी गई आयु के सामान्य बालक से सफलतापूर्वक करने की अपेक्षा की जा सकती है, जिस आयु के लिए अपेक्षित मानसिक कार्यों का कोई बालक सफलतापूर्वक कर लेता है, उस बालक की मानसिक आयु उतने ही वर्ष कहीं जा सकती है। भले ही उसकी वास्तविक आयु इससे कम या अधिक क्यों ना हो ।

जैसा यदि कोई बालक 7 वर्ष के सामान्य बालकों के द्वारा की जाने वाली अपेक्षित मानसिक क्रियाओं को कर लेता है, तो उसकी मानसिक आयु 7 वर्ष कही जाएगी । सन 1908 वाले परीक्षण में बेल्जियम, जर्मनी, ब्रिटेन, स्विट्ज़रलैंड, अमेरिका आदि देशों के मनोवैज्ञानिकों ने पर्याप्त रुचि ली तथा उन्होंने उस पर अनेक सुझाव दिए। इन सुझावों के आधार पर 1911 में बिने तथा साइमन परीक्षण को पुनः परिमार्जित किया गया। इन संशोधन में कुछ प्रश्नों को बदला गया तथा कुछ को निकाल दिया गया अंकन विधि में भी सुधार किया गया। बिने के अनुसार जिस बालक की मानसिक आयु उसके वास्तविक आयु के बराबर होती है उसे बुद्धि की दृष्टि से सामान्य बालक अथवा सामान्य बुद्धि वाला बालक कहा जाता है। मानसिक आयु की वास्तविक आयु से अधिक होने पर तीव्र बुद्धि तथा कम होने पर मंदबुद्धि बालक कहा जाता है बुद्धि में श्रेष्टता या पिछड़ेपन की मात्रा मानसिक आयु व वास्तविक आयु के अंतर पर निर्भर करती है। इसके 1 वर्ष के दौरान विलियम स्टर्न ने मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु के अनुपात के रूप में बुद्धि लब्धि का प्रयोग करने का सुझाव दिया, जिसका आप सर्वत्र बहुतायत से प्रयोग किया जाता है । बिने की मृत्यु सन 1911 में हो गयी । निसंदेह बिने ने बुद्धि मापन के क्षेत्र में दो अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिये। प्रथम, उसने बुद्धि परीक्षण की प्रमाणीकरण की विधि का प्रतिपादन किया तथा द्वितीय, उसने मानसिक आयु के प्रत्यय को प्रस्तुत किया।

बिने –उत्तर काल (Post-Binet Period)

बिने – साइमन के द्वारा बुद्धि परीक्षण का निर्माण फ्रेंच बालकों के लिए किया गया था। अन्य देशों बालकों के लिए इस परीक्षण का प्रयोग करने के लिए पहले इसका अनुवाद उस देश की भाषा में करना तथा वहां की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप प्रश्नों की विषयवस्तु में परिवर्तन करना आवश्यक था । बिने – साइमन बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता को देखते हुए लगभग सभी प्रमुख देशों में इस परीक्षण के अनुकूल तैयार किये गये । इन अनुकूलनों में अमेरिका के स्टेनफोर्ड विश्वविधालय में प्रो . टरमन व उनके सहयोगियों द्वारा 1961,1937 व 1960 में किये गये अनुकूलन बहुत प्रसिद्ध हुए ।इन अनुकूलित परीक्षणों को स्टेनफोर्ड- बिने परीक्षण के नाम से जाना जाता है। स्टेनफोर्ड बिने मापनी का चौथी संशोधन सन् 1986 में किया गया हैं।

भारत में भी सन् 1912 में श्री सी. एच. राइस नें बिने परीक्षण का भारतीय अनुकूलन करके ' हिन्दुस्तानी बिने परीक्षण' परीक्षण तैयार किया । सन 1939 में बैश्लर ने बुद्धि मापन के लिए शाब्दिक तथा और अशाब्दिक प्रश्नों वाला बुद्धि परीक्षण तैयार किया। इस परीक्षण के पीछे आधारभूत सिद्धांत था कि बुद्धि न केवल संकेतों, अमूर्तता, व प्रत्ययों के प्रयोग की क्षमता है, वरन् मूर्त वस्तुओं के प्रयोग वाली परिस्थितियों में तथा समस्याओं के साथ समायोजन की योग्यता भी है। सन् 1955 में उसने इसका संशोधित रूप प्रस्तुत किया जिसे वैश्लर प्रौढ बुद्धि परीक्षण के नाम से जाना जाता है। सन् 1949 में उसने बालकों के लिए विश्लर बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया इसके अतिरिक्त 20वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में अन्य विद्वानों के द्वारा अनेक शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण विभिन्न आयु के बालकों व व्यक्तियों के लिए किया गया । प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ओटिस महोदय के प्रयासों के सफल स्वरूप आर्मी अल्फा स्केल जो शाब्दिक परीक्षण था, तथा आर्मी बीटा स्केल,जो अशब्दिक परीक्षण था , का निर्माण समूह प्रशिक्षण के रूप में किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय आर्मी सामान्य बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया गया इसके बाद अनेक सामूहिक बुद्धि परीक्षण तैयार किए गए रेवन तथा कैटल के द्वारा तैयार किए गये अशाब्दिक परीक्षण भी काफी प्रसिद्ध हुए ।भारत में भारतीय द्वारा निर्मित मानसिक योग्यता परीक्षण, मनोविज्ञानशाला, इलाहाबाद द्वारा तैयार किया गया सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण तथा प्रयोग मेहता की सामूहिक बुद्धि परीक्षण बहुत प्रसिद्ध हुए।

अपनी उन्नति जाने -

प्रश्न 1. मानसिक परीक्षण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था?

प्रश्न 2. मानसिक आयु का प्रतिपादन किसने किया ?

13.4 बुद्धि मापन की तकनीके(Techniques of Intelligence measurment)

बुद्धि परीक्षण के ऐतिहासिक विवेचन से बुद्धि मापन के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होते हैं । वस्तुतः बुद्धि परीक्षण के परिणाम अंकों के रूप में प्राप्त होते हैं परंतु केवल इन अंकों के आधार पर बुद्धि के संबंध में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता है। ऐतिहासिक विवेचन में मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि के प्रत्ययों की संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी

है। वास्तव में बुद्धि परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांको को मानसिक आयु में बदलकर फिर उसकी सहायता से बुद्धि लब्धि की गणना की जाती है। मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि ही किसी व्यक्ति की उच्च्च बुद्धि, सामान्य बुद्धि, या निम्न बुद्धि के घोतक होते हैं ।अतः मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि की विस्तृत चर्चा करना समोचित प्रतीत होता है।

मानसिक आयु (Mental Age)

मानसिक आयु के प्रत्यय का प्रतिमान बिने के द्वारा किया गया था। बुद्धि परीक्षण के निर्माण के दौरान बिने के सामने प्रश्न आया कि बुद्धि का मापन कैसे तथा किस इकाई में किया जाए। कोई व्यक्ति बुद्धि परीक्षण के कितने प्रश्नों को हल करता है, इस आधार पर उसे अंक तो प्रदान किये जा सकते हैं, परन्तु इन अंको के आधार पर उसकी बौद्धिक योग्यता या मानसिक विकास के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष प्राप्त करना संभव नही हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति या बालक किसी बुद्धि परीक्षण पर 65 अंक प्राप्त करता है, तो इस 65 के आधार पर उस व्यक्ति की बुद्धि सम्बन्ध में एकदम से कुछ भी कहना संभव नहीं होगा। किसी परीक्षण पर 10 वर्ष, 15 वर्ष व 25 वर्ष के तीन व्यक्तियों के द्वारा 65 -65 अंक प्राप्त करना, उस तीनों की एक जैसी बुद्धि का परिचायक नहीं हो सकता है। बिने का विचार था कि मानसिक योग्यता का ठीक –ठीक ज्ञान तब हो सकता है , जब हमें यह ज्ञात हो कि किसी निश्चित आयु के बालकों को क्या अंक प्राप्त हुए हैं ।बिने ने विभिन्न आयु के लिए मानक अंक तैयार करने के स्थान पर विभिन्न आयु के लिए मानक प्रश्नों का चयन किया तथा बालकों के लिए द्वारा उन प्रश्नों को सही हल कर सकने के आधार पर मानसिक आयु के प्रत्यय की कल्पना की। ।स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति की मानसिक आयु उस व्यक्ति के मानसिक विकास की अवस्था को बताती है तथा इसके आधार पर बालकों तथा व्यक्तियों को मंद बुद्धि, सामान्य बुद्धि, तथा तीव्र बुद्धि जैसे विभिन्न वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

बिने के अनुसार मानसिक आयु किसी व्यक्ति के मानसिक विकास की वह अभिव्यक्ति है, जो उसके द्वारा किये जा सकने वाले मानसिक कार्यों से ज्ञात की जा सकती है तथा जिनकी उस आयु विशेष के सामान्य बालकों से सफलतापूर्वक करने की अपेक्षा रहती है। बिने ने विभिन्न आयु के बालकों के लिए कुछ प्रश्नों को निर्धारित किया। जिस आयु के लिए निर्धारित प्रश्नों को बालक सही ढंग से कर देता है, उस बालक की मानसिक आयु उतने ही वर्ष मानी जाती

है ।जैसे यदि बालक 8 वर्ष के लिए निर्धारित प्रश्नों को सही हल कर देती है तो उसकी मानसिक आयु 8 वर्ष मानी जायेगी। मानसिक आयु ज्ञात करते समय बालक जिस उध्धतम आयु स्तर के समस्त प्रश्नों को सही हल करता है, उसके साथ- साथ उसे इससे अधिक आयु स्तरों के उन समस्त प्रश्नों के लिए भी क्रेडिट मिलता है ,जिन्हें वह सही हल कर करता है। जिस उधतम आयु स्तर के सभी प्रश्नों को बालक सही हल करता है, उसे आधार वर्ष कहते हैं तथा जिस आयु स्तर का कोई भी प्रश्न वह हल नहीं कर पता है, उसे उस बालक के लिए टर्मिनल वर्ष कहते हैं। स्पष्ट है कि आयु बुद्धि परीक्षण का प्रशासन करते समय तब तक उध्ध आयु के प्रश्नों की ओर आगे बढ़ते जाते हैं, जब तक टर्मिनल वर्ष नहीं प्राप्त हो जाता है। बालक की मानसिक आयु ज्ञात करने के लिए आधार तथा टर्मिनल वर्षों के बीच के जितने प्रश्न बालक हल कर पता है, उनका क्रेडिट आधार वर्ष में जोड़ देते हैं। मानसिक आयु का वास्तविक आय से कोई संबंध नहीं है। 8 वर्ष के बालक की मानसिक आयु 8 वर्ष से कम या अधिक कुछ भी हो सकती है। मानसिक आयु बालक की मानसिक परिपक्वता की स्थिति को प्रदर्शित करती है मानसिक आयु की तुलना वास्तविक आयु से करने पर बालक के मानसिक विकास की स्थिति स्पष्ट हो जाती है यदि बालक की मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है तो बालक की कुशाग्र बुद्धि कहा जाता है। इसके विपरीत यदि मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है तो बालक को मंदबुद्धि वाला बालक कहा जाता है यदि मानसिक आयु का वास्तविक आयु एक- दूसरे के बराबर होती है तो बालक को सामान्य बुद्धि का कहा जाएगा। स्पष्ट है कि मानसिक आयु व वास्तविक आयु का अंतर एवं दिशा ही बालक की श्रेष्ठता - निकृष्टता के परिणाम को इंगित करती है।

बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient)

मानसिक आयु वास्तव में बुद्धि या मानसिक विकास की स्थिति का कोई निरपेक्ष मान न होकर के सापेक्ष मान है। मानसिक आयु की सहायता से बुद्धि के संबंध में कोई निर्णय लेने के लिए व्यक्ति की तिथिक अथवा वास्तविक आयु के ज्ञान की आवश्यकता भी पड़ती है। इस परेशानी को देखते हुए स्टर्न तथा कोहलमान ने सन 1912 में बुद्धि लब्धि, जिसे संक्षेप में आई० क्यू० कहते हैं, का प्रयोग करने का सुझाव दिया, परन्तु इसका प्रयोग सन् 1916 में टरमैन के द्वारा स्टैंडफोर्ड- बिने परीक्षण के प्रकाशन के उपरांत ही प्रचलित हो पाया था। बुद्धि लब्धि व्यक्तियों या बलकों के मानसिक

आयु या बुद्धि को व्यक्त करने वाला एक ऐसा निरपेक्ष मान है, जिसकी सहायता से बालक या व्यक्ति के कुशाग्र, सामान्य या मंद बुद्धिहोने का पता तो चलता ही है, साथ ही साथ उसकी तुलना अन्य बलकों या व्यक्तियों से सरलता से की जा सकती है। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु तथा तिथिक आयु का अनुपात है, जिसमे दशमलव बिंदु हटाने के लिए 100 से गुणा कर देते हैं। अतः

बुद्धि लब्धि (i.Q.) = मानसिक आयु (M.A.)/ तिथिक आयु (C.A.)X100

स्पष्ट है कि यदि मानसिक आयु तिथिक आयु के बराबर होती है तो बुद्धि लब्धि 100 के बराबर होती है। मानसिक आयु के तिथिक आयु से अधिक होने पर यह गुणांक 100 से अधिक होता है। मानसिक आयु तिथिक आयु से जितना अधिक होती है, बुद्धि लब्धि का मैं 100 से उतना ही अधिक होता है। इसके विपरीत मानसिक आयु के तिथिक आयु से कम होने पर बुद्धि लब्धि का मान 100 से कम प्राप्त होता है तथा मानसिक आयु जितनी कम होती है, इस गुणांक का मान भी उतना ही कम होता है। सोलह वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के लिए बुद्धि लब्धि की गणना करते समय सूत्र में तिथिक आयु का मान 16 वर्ष ही रखते हैं।

टरमैन ने सन् 1916 के स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षण के साथ बुद्धि लब्धि के वितरण की तालिकायें भी तैयार की थी,जिनमें विभिन्न बुद्धि लब्धि वर्गों के लिए बालको व व्यक्तियों की प्रतिशत संख्याये भी दी गई थीं। सामान्य तौर पर किसी बड़े समूह के लिए बुद्धि लब्धि का विवरण सामान्य प्रायिकता वक्र का अनुगमन करता है। बुद्धि लब्धि विवरण का एक उदाहरण

बुद्धि लब्धि सीमाऐ I.Q. Limits	प्रतिशत %	वर्ग Category
130 से अधिक	2	प्रतिभाशाली (Genius)

121-130	7	प्रखर बुद्धि (Superior)
111-120	16	तीव्र बुद्धि (above Average)
91-110	50	सामान्य बुद्धि(Average)
81-90	16	मंद बुद्धि (Feeble minded)
71-80	**7**	अल्प बुद्धि (Dull)
71 से कम	**2**	जड़ बुद्ध(Idito)

बुद्धि लब्धि के उपरोक्त वितरण के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांश व्यक्ति / बालक औसत बुद्धि के होते है एवं औसत से कम बुद्धि वाले तथा औसत से अधिक बुद्धि वाले व्यक्तियों /बालकों का प्रतिशत क्रमशः घटता जाता है।

13.5 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार(Types of Intelligence Tests)

सन् 1905 में बिने के द्वारा प्रथम बुद्धि परीक्षण के निर्माण के बाद अनेक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ कुछ बुद्धि परीक्षकों को एक समय में केवल एक ही व्यक्ति पर प्रकाशित किया जाता है, जबकि कुछ बुद्धि परीक्षणों को एक साथ अनेक व्यक्तियों पर प्रकाशित किया जा सकता है इस आधार पर बुद्धि परीक्षकों को प्रशासन की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है-

1-व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण

2-सामूहिक बुद्धि परीक्षण

कुछ बुद्धि परीक्षणों में भाषा के माध्यम द्वारा समस्याएं प्रस्तुत की जाती हैं तथा परीक्षार्थियों को भाषा के माध्यम से ही उत्तर देने होते हैं जबकि कुछ अन्य परीक्षणों में चित्रों या स्थूल सामग्री की सहायता से समस्याएं प्रस्तुत की जाती है, जिनमें परीक्षार्थियों को कुछ करके उत्तर देना होता हैं। अतः बुद्धि परीक्षणों को प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है-

1-शाब्दिक बुद्धि परीक्षण

2-अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण(Individual Intelligence Tests)

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों को एक समय में केवल एक ही व्यक्ति पर प्रकाशित किया जाता है। परीक्षणकर्ता एक बार में केवल एक ही व्यक्ति के सम्मुख परीक्षण समस्याओं को प्रस्तुत करता है तथा उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसकी बुद्धि का मापन करता है। व्यक्तिगत परीक्षण के प्रशासन में कुशलता व दक्षता की आवश्यकता होती है यही कारण है कि केवल प्रशिक्षित प्रशिक्षण करता ही व्यक्तिगत परीक्षणों का समुचित ढंग से उपयोग कर सकता है। व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण के प्रशासन के समय परीक्षणकर्ता को परीक्षार्थियों के साथ घनिष्ठ व आत्मीय संबंध तथा उचित सामंजस स्थापित करना पड़ता है। घनिष्ठ व आत्मीय संबंध तथा सामंजस्य के उपरांत ही परीक्षार्थी प्रश्नों का ठीक ढंग से उत्तर दे पाता है तथा प्रशिक्षण की औपचारिकता के कारण कर्तव्यविमुध नहीं होता है। व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों में शाब्दिक या अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं। शाब्दिक प्रश्नों वाले व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण को शाब्दिक व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहते हैं। अशाब्दिक प्रश्नों वाले व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण को अशाब्दिक व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहते हैं। कुछ व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण में शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के प्रश्न होते हैं इन्हें शाब्दिक - अशाब्दिक व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहा जाता है। बिने - साइमन परीक्षण, स्टैनफोर्ड-टरमन संशोधन, गुडएनफ ड्रा ए मैने परीक्षण, भाटिया बैटरी, वैश्लर बुद्धि परीक्षण आदि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण हैं।

विशेषताएं

चूँकि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण में परीक्षणकर्ता तथा परीक्षार्थियों के बीच उचित व घनिष्ठ सामंजस्य हो जाता है, इसलिए इनसे व्यक्ति के व्यवहार का गहन व गूढ़ अध्ययन संभव हो जाता है। भलीभांति प्रशिक्षित विशेषज्ञों के द्वारा परीक्षण किए जाने से उनकी विश्वसनीयता तथा वैधता बढ़ जाती है। इन परीक्षणों में परीक्षार्थियों के द्वारा धोखा देने की संभावना भी कम रहती है। शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किये जा सकने तथा परीक्षणकर्ता के प्रत्यक्ष अवलोकन के कारण इनसे व्यक्ति की कार्यप्रणाली, सामाजिक व संवेगात्मक पक्षों, व्यक्तित्व के गुणात्मक

पहलुओं का भी मापन संभव होता है शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन के लिए, मानसिक निदान के लिए तथा छोटे बच्चों, पिछड़े एवं मंदबुद्धि व्यक्तियों के लिए व्यक्तिगत परीक्षण विशेष रूप से उपयोगी होते हैं।

सीमायें

जहां व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण में अनेक विशेषताएं हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी कुछ ऐसी सीमाएं भी है, जिनके कारण इनका प्रयोग कुछ सीमित होता जा रहा है प्रशिक्षित प्रशिक्षणकर्ता के द्वारा एक समय में केवल एक ही व्यक्ति पर प्रकाशित हो सकने के कारण यह समय ,धन व मानव श्रम की दृष्टि से अत्यधिक व्यय साध्य होते हैं, विशेषकर जब किसी बड़े समूह का बुद्धि परीक्षण करना होता है व्यक्तिगत परीक्षणों के अंकन की विश्वसनीयता भी कम होती है। परीक्षण के पूर्व यदि परीक्षणकर्ता तथा परीक्षार्थी के बीच सामंजस्य नहीं स्थापित हो पता है तो परीक्षार्थी उदासीन व अनिच्छुद हो जाते हैं, जिससे परीक्षण के परिणाम बुरी तरह से प्रभावित हो जाते हैं। इन कमियों के कारण व्यक्तिगत परीक्षणों का प्रयोग सीमित हो रहा है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण(Group Intelligence Tests)

सामूहिक बुद्धि परीक्षण का प्रारंभ द्वितीय विश्व युद्ध के समय में प्रारंभ हुआ। तब सेवा में सैनिकों तथा अधिकारियों की भर्ती के लिए इच्छुक हजारों लाखों व्यक्तियों की मानसिक योग्यता का मापन करने के लिए ऐसे बुद्धि परीक्षण की आवश्यकता प्रतीत हुई जो एक साथ अनेक पर प्रकाशित किया जा सके। इसके फलस्वरुप आर्मी अल्फा परीक्षण तथा आर्मी बीटा परीक्षणों का निर्माण हुआ। आर्मी अल्फा परीक्षण अंग्रेजी भाषा जानने वाले के लिए तथा आर्मी बीटा परीक्षण अंग्रेजी न जानने वालों व अशिक्षितों के लिए था। सामूहिक बुद्धि परीक्षण एक समय में अनेक व्यक्तियों पर प्रकाशित किया जा सकता है। इस प्रकार के परीक्षार्थी का प्रशासन तथा अंकन सरल होता है तथा अल्प प्रशिक्षण के उपरांत सामान्य व्यक्ति इनका प्रशासन कर सकते हैं। सामूहिक बुद्धि परीक्षण की शाब्दिक या अशाब्दिक दोनों ही प्रकार की हो सकते हैं। छात्रों व कर्मचारियों के चयन में इनका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। जलोटा, टंडन व मेहता के सामान्य मानसिक परीक्षण सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण हैं।

विशेषताएं

सामूहिक बुद्धि परीक्षण व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी हैं। एक साथ अनेक व्यक्तियों पर प्रशासित हो सकने के कारण ये समय धन व श्रम की दृष्टि से अत्यधिक मितव्यई होते हैं। इनमें प्रशासन के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता न होने के कारण साधारण अध्यापकगण भी इनका सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकते हैं। सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का प्रमाणीकरण व अंकन अपेक्षाकृत सरल व सुगम होता है। यह परीक्षण अधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं। व्यक्तियों के चयन तथा वर्गीकरण में इनका उपयोग प्रायः अधिक किया जाता है

सीमायें

सामूहिक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग छोटे बच्चों तथा मंद बुद्धि व समस्याग्रस्त व्यक्तियों के साथ करना संभव नहीं होता है। इन परीक्षणों के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का गूढ़ व गहन अध्ययन किया जाना संभव नहीं हो पता है। सामूहिक परीक्षणों में नल व धोखे की संभावना अधिक रहती है। इनकी विश्वासनीयता तथा वैधता प्रायः कम होती है। यदि बालक या व्यक्ति समूहिक बुद्धि परीक्षण के प्रति संवेदनशील नहीं होते हैं तो उनसे मिलने वाले परिणाम व्यर्थ हो जाते हैं।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण(Verbal Intelligence Tests)

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों से तात्पर्य उन परीक्षणों से है जिनमें शब्दों या भाषा के माध्यम से प्रश्नों या समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है तथा परीक्षार्थी भी शब्दों या भाषा के माध्यम से इन प्रश्नों या समस्याओं का उत्तर प्रदान करते हैं दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जिन परीक्षणों में भाषा का प्रयोग करके समस्याएं प्रस्तुत की जाती है, शाब्दिक परीक्षण कहा जाता है। शाब्दिक परीक्षण प्रायः कागज-कलम परीक्षण या लिखित परीक्षण होते हैं , फिर भी कभी-कभी इनको मौखिक रूप से भी प्रयुक्त किया जाता है। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत भी हो सकते हैं तथा सामूहिक भी होते हो सकते हैं। बिने - साइमन परीक्षण तथा जलोटा, टंडन व मेहता के बुद्धि परीक्षण शाब्दिक बुद्धि परीक्षण के कुछ उदाहरण है

विशेषताएं

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का प्रशासन अधिक सरल व सुगम होता है। इन परीक्षणों का अंकन वस्तुनिष्ठ होता है।इनकी विश्वसनीयता का वैधता अधिक होती है। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण अल्पव्ययी होते हैं। इनका उपयोग व्यक्तिगत परीक्षण या तथा सामूहिक परीक्षण दोनों के रूप में किया जा सकता है। छात्रों की बुद्धि का मापन करने के लिए शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है।

सीमाएं

भाषा के प्रयोग के कारण शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का क्षेत्र सीमित हो जाता है। परीक्षण में प्रयुक्त भाषा का लिखना तथा पढ़ना जानने वाले व्यक्तियों पर ही शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है। छोटे बच्चों और अशिक्षितों, अन्य भाषा वाले व्यक्तियों तथा मंदबुद्धि व्यक्तियों के लिए इनका प्रयोग करना संभव नहीं है नहीं होता है। सांस्कृतिक कारकों, सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक स्थिति तथा वातावरणीय हीनता आदि के कारण इन परीक्षणों पर व्यक्तियों की बुद्धि का मापन प्रभावित हो सकता है।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण(Non-Verbal Intelligence Tests)

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण से अभिप्राय उन परीक्षणों से है, जिनमें शब्दों या भाषा का प्रयोग न करके चित्रों व अन्य स्थल वस्तुओं के माध्यम से समस्याये प्रस्तुत की जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अशब्दिक बुद्धि परीक्षण में चित्रों या स्थूल सामग्री की सहायता से प्रश्नों की रचना की जाती है तथा परीक्षार्थी को सही चित्र या वस्तु छांटकर अथवा कुछ क्रिया करके अपने उत्तर को व्यक्त करना होता है। इस प्रकार के बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण भी हो सकते हैं तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षण भी हो सकते हैं अशब्दिक बुद्धि परीक्षण के निर्देश प्रायः भाषा के माध्यम से ही व्यक्त किये जाते हैं। अशब्दिक बुद्धि परीक्षण दो प्रकार 1- कागज कलम परीक्षण तथा 2-निष्पादन परीक्षण के हो सकते हैं। कागज- कलाम परीक्षणों को लिखित परीक्षण भी कहा जाता है तथा इस इस प्रकार के परीक्षणों में चित्रों, आकृतियों या संख्याओं आदि की सहायता से कागज पर मुद्रित रूप में समस्याएं प्रस्तुत की जाती हैं, जिनका उत्तर परीक्षार्थी कागज पर भी कुछ निशान लगाकर अथवा करके देते हैं। इसके विपरीत निष्पादन परीक्षण में निर्जीव वस्तुओं जैसे

विभिन्न प्रकार के लकड़ी के गुटके आदि की सहायता से समस्याएऐं प्रस्तुत की जाती है। परीक्षार्थीगण इन गुटकों को व्यवस्थित करके अपनी-अपनी मानसिक योग्यता का प्रमाण देते हैं। निष्पादन परीक्षण प्रायः व्यक्तिगत परीक्षण ही होते हैं। रेविन की प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स कागज- कलम प्रकार का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है, जबकि भाटिया बैटरी निष्पादन प्रकार का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है।

विशेषताएं

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग बच्चों, अशिक्षितों अन्य भाषा जानने वाले व्यक्तियों के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है। भाषायी योग्यता में पिछड़े परीक्षार्थियों तथा वातावरणीय हीनता के कारण व्यक्तियों के लिए तो अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण विशेष रूप से प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारकों से अप्रभावित होने के कारण अशब्दिक बुद्धि परीक्षण अधिक विश्वसनीय तथा वैध होते हैं। यह परीक्षण व्यक्ति की योग्यता के संबंध में विस्तृत व अपरोक्ष सूचना भी प्रदान कर सकते हैं

सीमायें

भाषा का प्रयोग न होने के कारण अशब्दिक बुद्धि परीक्षण व्यावहारिक दृष्टि से कम उपयोगी होते हैं। इनका निर्माण व प्रयोग अधिक व्ययसाध्य होता है। उनकी रचना व प्रशासन कुशल व प्रशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा ही किया जा सकता है। निष्पादन परीक्षणों के अंकन की व्यक्ति निष्ट होने की संभावना रहती है।

अपनी उन्नति जाने –

प्रश्न 3. प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से बुद्धि परीक्षणों को कितने भागो में बांटा गया है?

प्रश्न 4. प्रशासन की दृष्टि से बुद्धि परीक्षणों को कितने भागो में बांटा गया है ?

प्रश्न 5. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण के नाम बताओ।

13.6 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता (Use of Intelligence Tests)

बुद्धि-परीक्षण मानव जीवन के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। शाब्दिक एवं अशाब्दिक सभी प्रकार के बुद्धि परीक्षणों के लाभों या उपयोगिता के कुछ मुख्य बिन्दुओं पर अग्र प्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है।

1. शैक्षिक उपयोग : बालकों की शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने में बुद्धि-परीक्षण अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता है। बुद्धि-परीक्षण की सहायता से शिक्षार्थी की बुद्धि-लब्धि का मापन किया जाता है, जिसके आधार पर सामान्य, मन्द बुद्धि, पिछड़े तथा प्रतिभाशाली बालकों के मध्य विभेदीकरण हो जाता है। परीक्षण के परिणामों के आधार पर निर्देशन प्रदान किया जाता है। इसी से उनकी समस्याओं का निदान व उपचार करना सम्भव हो पाता है।

2. व्यावसायिक उपयोग : व्यक्ति के बौद्धिक स्तर तथा उसकी मानसिक योग्यताओं के अनुकूल व्यवसाय तलाश करने तथा नियुक्ति के सम्बन्ध में बुद्धि-परीक्षण सहायक सिद्ध होता है। व्यावसायिक निर्देशन से जुड़े दो पहलुओं–प्रथम, व्यक्ति विश्लेषण जिसमें व्यक्ति की बुद्धि, योग्यता, रुचि तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी जानकारियाँ आती हैं; तथा द्वितीय, व्यवसाय विश्लेषण जिसमें विशेष व्यवसाय के लिए विशेष गुणों की आवश्यकता का ज्ञान आवश्यक है–में बुद्धि-परीक्षण उपयोगी है।

3. विद्यार्थीयों के पिछड़ने का पता लगाने के लिए – कभी- कभी बालक पढ़ने में किसी कारणवश पिछड़ जाते हैं। बुद्धि परीक्षण की सहायता से विद्यार्थीयों के पिछड़पन का पता लगाकर उसी अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करने में सहायता मिलती हैं।

4. नैदानिक उपयोग – बुद्धि परीक्षण का प्रयोग नैदानिक उद्देश्यों के लिए भी किया जाता हैं बुद्धि परीक्षण छात्रों को अधिगम में उत्पनं हो रही कठिनाईयों का ज्ञान प्रदान करने में सहयता करता है। बालकों की बुद्धि का ज्ञान करके उनकी शैक्षिक प्रगति, समायोजन तथा अधिगम आदि को अच्छी तरह से संचालित किया जा सकता है।

5.**व्यावहारिक उपयोग** – मानव के व्यावहारिक जीवन में भी बुद्धि परीक्षण उपयोगी भूमिका अदा कर सकते है व्यक्ति की मानसिक योगताओं के आधार पर उन्हें वस्तुनिष्ट ढंग से उच्च बुद्धि, सामान्य या मंद बुद्धि में वर्गीकृत करने के लिए बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है।

अपनी उन्नति जाने प्रश्नों का उत्तर -

प्रश्न 1 मानसिक परीक्षण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था?

उत्तर- कैटेल

प्रश्न 2 मानसिक आयु का प्रतिपादन किसने किया ?

उत्तर- बिने

प्रश्न 3 प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से बुद्धि परीक्षणों को कितने भागो में बांटा गया है?

उत्तर -2

प्रश्न 4 प्रशासन की दृष्टि से बुद्धि परीक्षणों को कितने भागो में बांटा गया है ?

उत्तर -2

प्रश्न 5 शाब्दिक बुद्धि परीक्षण के नाम बताओ।

उत्तर –जलोटा, टंडन व मेहता के बुद्धि परीक्षण

13.7 सारांश (Summary)

बिने को बुद्धि मापन के आधुनिक युग का प्रवर्तक माना जाता है। बिने सन 1905 में प्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। बुद्धि मापन के लिए प्रायः बुद्धि लब्धि ज्ञात की जाती है, जो मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग देकर तथा 100 से गुणा करके प्राप्त होता है बुद्धि परीक्षण शाब्दिक भी हो सकता है तथा अशाब्दिक भी हो सकता है बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत तथा सामूहिक भी हो सकता है अतः बुद्धि परीक्षण के चार प्रकार है-शाब्दिक-व्यक्तिगत, शाब्दिक –सामूहिक, अशाब्दिक- व्यक्तिगत, अशाब्दिक –सामूहिक। बुद्धि-परीक्षण शैक्षिक, व्यावसायिक, विद्यार्थीयों के पिछड़ने का पता लगाने के लिए, नैदानिक, तथा व्यावहारिक क्षेत्रों में बुद्धि परीक्षणों को महत्वपूर्ण उपयोग हैं।

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, डॉ. एस.पी गुप्ता, , डॉ. अलका गुप्ता

2. शिक्षा मनोविज्ञान, एस. के .मंगल
3. शिक्षा- मनोविज्ञान ,पी .डी. पाठक

13.9 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

प्रश्न.1-बुद्धि मापन के इतिहास का विस्तार से वर्णन कीजिये।

प्रश्न .2 बुद्धि मापन की तकनीकों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न .3 व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण व सामूहिक बुद्धि परीक्षण की विस्तार से व्याख्या कीजिये

इकाई 14 – Personality: Concept and its development, Determinants of Personality.Techniques of Personality assessment (व्यक्तित्व: अवधारणा और उसका विकास, व्यक्तित्व के निर्धारक, व्यक्तित्व मूल्यांकन की तकनीकें)

14 .1 प्रस्तावना(Introduction)

14 .2 उद्देश्य(Objectives)

14.3 व्यक्तित्व का अर्थ

14.4 व्यक्तित्व की परिभाषा

14.5 व्यक्तित्व के प्रकार

14.6व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले

14.7 व्यक्तित्व आकलन की विधियाँ (Method of Personality Assessment)

14.7.i आत्मनिष्ट विधियाँ (Subjective Methods)

14.7.ii वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective Methods)

14.7.iii प्रक्षेपीय विधियाँ (Projective Methods

14.8 सारांश (Summary)

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

14.8 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

13.1 प्रस्तावना (introduction)

लोगों में यह आम धारणा है कि व्यक्तित्व का मतलब है आकर्षक मुस्कान या दृष्टिकोण के साथ एक व्यक्तिगत रूप। लेकिन मनोवैज्ञानिक इस अवधारणा को गतिशील प्रकृति के रूप में देखते हैं जो किसी व्यक्ति की संपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रणाली, शारीरिक व मानसिक विकास से संबंधित है। व्यक्तित्व को किसी व्यक्ति के भीतर लगातार मनोवैज्ञानिक पैटर्न के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो दूसरों के साथ उनके व्यवहार और सामने आने वाली स्थितियों को प्रभावित करता है। व्यक्तित्व को अपेक्षाकृत स्थिर और स्थायी विशेषताओं के रूप में परिभाषित किया जाता है जो हमारे विचारों, भावनाओं और व्यवहार को निर्धारित करती हैं। व्यक्तित्व एक जटिल विषय है और व्यक्तित्व निर्माण के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। व्यक्तित्व को एक सामान्य और सरल शब्दों इस प्रकार मे परिभाषित कर सकते है – व्यक्तित्व मनुष्य के भीतर वे मनोवैज्ञानिक पैटर्न है, जो दूसरों के साथ व्यवहार और उनके सामने आने वाली स्थितियों को प्रभावित करता है। "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोभौतिक प्रणालियों का गतिशील संगठन है जो उसके व्यवहार और विचारों को निर्धारित करते हैं" (ऑलपोर्ट, 1961, पृष्ठ 28) इस इकाई में हम व्यक्तित्व के विषय में अध्यन करेगें।

3.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद,शिक्षार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे:

1. व्यक्तित्व की अवधारणा को समझ एवं उस पर चर्चा कर सकेंगे;
2. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं को समझ सकेंगे;
3. व्यक्तित्व की चारित्रिक विशेषताओं को समझ सकेंगे;
4. व्यक्तित्व मूल्यांकन के अर्थ, उद्देश्य व्यक्तित्व मूल्यांकन की विभिन्न तकनीकों पर चर्चा कर सकेंगे;

व्यक्तित्व का अर्थ

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग साधारण बातचीत के दौरान बहुतायत में किया जाता है। साधारण बातचीत में प्रयुक्त 'व्यक्तित्व' शब्द किसी ऐसे गुण या विशेषता को इंगित करता है, जिसे सभी व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार करने तथा पारस्परिक संबंधों की दृष्टि से विशेष महत्व देते हैं। साधारण रूप से हम हम कहते है सुजीत का व्यक्तित्व अत्यंत मोहक एवं आकर्षक है, मीरा का व्यक्तित्व अजीब सा है, किरण का तो कोई व्यक्तित्व ही नहीं, जैसे वाक्यांश आम बोलचाल के दौरान प्रायः सुनने को मिलते हैं। यद्यपि सामान्य बोलचाल में व्यक्तित्व शब्द का उपयोग तो बहुतायतः से किया जाता है, परंतु 'व्यक्तित्व' शब्द को परिभाषित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है। फिर भी सभी व्यक्ति समझते हैं कि इस प्रकार के वाक्यांशों से क्या अभिप्राय है। स्पष्ट है कि सामान्य अर्थों में व्यक्तित्व से तात्पर्य शारीरिक गठन, रंगरूप, वेशभूषा, बातचीत के तथा कार्य व्यवहार जैसे विभिन्न गुणों के संयोजन से लगाया जाता है। व्यक्तित्व शब्द के अंग्रेजी पर्याय 'Personality' का शाब्दिक अर्थ भी व्यक्ति के बाह्य गुणों या बाह्य आचरण को इंगित करता है। वस्तुतःअंग्रेजी शब्द पर्सनालिटी शब्द लैटिन भाषा के शब्द पर्सोना से बना है। जिसका अर्थ है मुखौटा है। पर्सोना शब्द का अभिप्राय उसे पहनावे या वेशभूषा से था, जिसे पहनकर नाटक में पात्र रंगमंच पर किसी अन्य व्यक्ति का अभिनय करते थे। अतः पर्सनालिटी शब्द का शाब्दिक अर्थ व्यक्तित्व के बाह्य दिखावे मात्र को इंगित करता है। व्यक्तित्व शब्द का यह अर्थ निश्चित ही कुछ संकुचित अर्थ है। आधुनिक संदर्भ में व्यक्तित्व एक अत्यंत व्यापक शब्द है तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका वास्तविक अर्थ इसके परंपरागत शाब्दिक अर्थ से पर्याप्त भिन्न है।

व्यक्तित्व की परिभाषा

गिलफोर्ड के अनुसार ' व्यक्तित्व गुणों का समन्वित रूप हैं।'

Personality is an integrated pattern of trait.

वुडवर्थ के अनुसार 'व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की एक समग्र विशेषता है।'

Personality is the total quality of an individual's behavior.

ड्रेवर के शब्दों में –"व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक,मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के उस एकीकृत तथा गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है जिसे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान –प्रदान में व्यक्त करता है।"

Personality is the term used for the integrated and dynamic organization of the physical, mental, moral and social qualities of the individual as that manifest itself to other people, in the give and take of social life.

बिग तथा हंट के शब्दों में –"व्यक्तित्व किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान इसकी समस्त विशेषताओं के योग को व्यक्त करता है।"

Personality refers to the whole behavioral pattern of an individual to the totality of its characteristics.

आलपोर्ट के अनुसार "व्यक्तित्व व्यक्ति के अन्दर उन मनोशारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के साथ उसका एक अनूठा समायोजन स्थापित करते हैं।"

Personality is the dynamics organization within the individual of those psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment.

व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे वर्ग से है जो व्यक्तित्व गुणों की दृष्टि से एक दूसरे के काफी समानता रखते है एवं दूसरे प्रकार से पर्याप्त भिन्नता रखते है।व्यक्तित्व को विभिनं मनोंवैज्ञानिकों के द्वारा भिन्न-भिन्न ढंगों से वर्गीकृत किया गया है।व्यक्तित्व के वर्गीकरण में इस वैभिन्य का मुख्य कारण मनोवैज्ञानिकों के द्वारा अलग–अलग दृष्टिकोणों से व्यक्तित्व के प्रकारों को देखना हैं। व्यक्तित्व के कुछ प्रमुख वर्गीकरण निम्नवत हैं –

1. **शरीर-रचना दृष्टिकोण (constitutional View-Point)**

   (i) लम्बकाय (Asthenic)-ऐसे व्यक्ति लम्बे-पतले शरीर वाले होते हैं ।ये दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध बनाने से बचते हैं तथा अपने क्रोध को सीधे –सीधे अभिव्यक्त नही कर पाते हैं।

   (ii) सुडौलकाय (Athletic)- ऐसे व्यक्ति हष्ट –पुष्ट तथा स्वस्थ शरीर वाले होते है ये सामान्य व्यक्तित्व गुणों को रखने वाले व्यक्ति होते है।

   (iii) गोलकाय (picnic)- ऐसे व्यक्ति नाटे तथा मोटे होते हैं। ये सुख व दुःख, क्रियाशील व निष्क्रिय,उत्साह व निरुत्साह आदि के बीच झूलते रहते हैं। कभी सुख कभी दुखी, कभी क्रियाशील कभी निष्क्रिय, कभी उत्साही कभी उत्साह विहीन रहते हैं।

2. **सामाजिक दृष्टिकोण(Social View Point)**

जुंग के अनुसार सामाजिक अन्तेर्क्रिया की दृष्टि से व्यक्तियों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है –

i.अन्तेर्मुखी (Introvert)- ऐसे व्यक्ति संकोची ,लज्जशील, मितभाषी, जल्दी घबराने वाले, आत्मकेंद्रित,अध्ययनशील, आत्मचिंन्तक, तथा असामाजिक प्रकृतिके होते हैं।

ii. बहिर्मुखी(Extrovert)-ऐसे व्यक्ति व्यवहार कुशल, चिंतामुक्त, सामाजिक,आशावादी,साहसिक,तथा लोकप्रिय प्रकृति के होते हैं।

iii. उभयमुखी(Ambivert)- इस प्रकार के व्यक्तियों में कुछ गुण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के तथा कुछ गुण बहिर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं।

3.मूल्य दृष्टिकोण (Values Viewpoint)

मूल्यों के आधार पर स्प्रेंजर ने व्यक्तित्व को छह भागो में वर्गीकृत किया है ।उसके अनुसार व्यक्तियों को निम्न छह प्रकारों मन बांटा जा सकता हैं –

(i) सद्धान्तिक (Theoretical)- ऐसे व्यक्तियों में ज्ञान की पिपासा होती है। ये अपने सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करते हैं तथा बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों व विद्वानों को पसंद करते हैं।

(ii) आर्थिक (Economic)-ऐसे व्यक्ति धन व भौतिक सुख के इच्छुक होते हैं तथा सदैव धन प्राप्ति की दिशा में क्रियाशील रहते हैं।

(iii) धार्मिक (Religious)-ऐसे व्यक्ति ईश्वर में विश्वास रखने वाले, दैवीय से विपदाओं डरने वाले तथा धार्मिक नियमों के अनुरूप कार्य करने वाले होते हैं।

(iv) राजनीतिक (Political)-ऐसे व्यक्ति राजनितिक विचारों के होते हैं ।ये सदैव राजनैतिक दाँव पेंचों में लिप्त रहते हैं तथा राजनीतिक पद प्राप्ति के इच्छुक रहते हैं।

(v) सामाजिक (Social)-ऐसे व्यक्ति दयालु, सहानुभूतिपूर्ण, त्यागी, परोपकारी प्रवृति के होते हैं। ये जनहित में अपने व्यक्तिगत हित का ध्यान नही रखते हैं एवं सदैव अन्यों की सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं।

(vi) कलात्मक (Asthetic)- ऐसे व्यक्ति सौन्दर्य के पुजारी होते हैं ।इनमें ललित कलाओं, संगीत, काव्य, नृत्य, चित्रकला, प्राकृतिक सौन्दर्य,बागवानी, सजावट आदि के प्रति विशेष लगाव होता हैं।

4 .भारतीय दृष्टिकोण(Indian View point)

भारतीय दर्शन की सर्वोत्तम रचना श्रीमद्भगवत गीता में व्यक्तित्व के तीन गुणों यथा –सत्व गुण, रजो गुण, तथा तमोगुण की चर्चा की गयी हैं ।अध्याय 14 के श्लोक 9 में कहा गया है की सत्व गुण व्यक्ति को सुख में लगता है , रजो गुण कर्म में लगता है तथा तमो गुण प्रमाद में लगता हैं। इन तीनों गुणों के आधार पर व्यक्तियों को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है –

(i) सात्विकी –ऐसे व्यक्तियों में सत्वगुण की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्ति ज्ञानी, शांत, निर्मल, धार्मिक व सौम्य स्वभाव के होते हैं।

(ii) राजसी –ऐसे व्यक्तियों में रजोगुण की अधिकता होती हैं। ये साहसी, वीर, दबंग तथा कामना व आसक्ति की प्रवृति से युक्त होते हैं।

(iii) तामसी –ऐसे व्यक्तियों में तमोगुण की बहुलता होती है । ये प्रमादी, आलसी, क्रोधी तथा अनावश्यक लड़ाई-झगड़ा करने वाले होते हैं ।

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले

व्यक्तित्व के अर्थ एवं प्रकारों को स्पष्ट करने के उपरांत यह भी आवश्यक एवं तर्कसंगत प्रतीत होता है कि व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट किया जाये । यद्यपि जन्म के समय व्यक्ति में कुछ जन्मजात विशेषताएं होती हैं तथापि उसके व्यक्तित्व का विकास धीरे-धीरे एक क्रमबद्ध ढंग से होता है । किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व दो प्रकार के कारकों से प्रभावित होता है, ये हैं – जैविकीय कारक तथा वातावरणीय कारक। इन दोनों प्रकारों के कारकों की परस्पर अन्तर्क्रिया के फलस्वरुप व्यक्तित्व का विकास होता है इसलिए इन्हें व्यक्तित्व के निर्धारक भी कहा जाता है।

1 .**जैवकीय कारक**

हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति एक अनोखी शारीरिक संरचना के रूप में जन्म लेता है। जन्म के समय वह अनेक शारीरिक विशेषताओं से युक्त होता है जो उसके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष बनती हैं। इन शारीरिक गुणों की वजह से वह व्यक्ति जन्म से लेकर की मृत्युपर्यन्त अन्य लोगों से भिन्न रहता है । व्यक्ति का रंगरूप, कदकाठी, भार तथा स्वास्थ्य काफी सीमा तक जन्म के समय वंशानुक्रम के द्वारा निर्धारित हो जाते हैं । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात व्यक्ति के शारीरिक या जैवकीय गुणों के द्वारा उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के विकास पर प्रभाव डालना है। व्यक्ति का स्नायुमंडल तथा अंतःस्रावी ग्रंथियां भी उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करती हैं। अंतः स्रावी ग्रंथियां हार्मोन्स छोड़ती हैं। थाइराइड, पैराथाइराइड, पिट्यूटरी, थाइमस, आदि अंतःस्रावी ग्रंथियों के द्वारा छोड़े जाने वाले हार्मोन्स की मात्रा आवश्यकता से कम या अधिक होने पर शरीर का समुचित विकास नहीं हो पाता है। जिससे संपूर्ण व्यक्ति परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से प्रभावित होता है। स्नायुमंडल भी व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं का संचालन काफी हद तक स्नायुमंडल के सुचारू ढंग से कार्य करने पर ही निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के स्नायुविक रोग जैसे हकलाना, तुतलाना, हिस्टीरिया, बहरापन, शब्द अंधापन आदि व्यक्तित्व के

विकास को प्रभावित करते हैं। लिंगभेद बुद्धि, मूल प्रवृत्तियाँ, विशिष्ट योग्यताएं जैसे जैविक कार्य को भी व्यक्तित्व के विकास को प्रभाव डालते हैं।

2. **वातावरण के कारक**

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण कारक वातावरण है वातावरण कारकों के अंतर्गत व्यक्ति के वातावरण से संबंधित सभी कारक आ जाते हैं। वातावरण को दो भागों में बांटा जाता है- भौतिक वातावरण तथा सामाजिक वातावरण। भौतिक वातावरण से अभिप्राय जलवायु, भूमि, कृषि उपजें, भौतिक संसाधनों की उपलब्धता आदि से हैं। भौतिक वातावरण के कारण व्यक्ति की कदकाठी, रंगरूप, स्वास्थ्य, रहन-सहन की आदतों में काफी अंतर आ जाता हैं। माँ के द्वारा गर्भधारण करने के साथ ही गर्भस्थ शिशु पर अपने चारों ओर के वातावरण का प्रभाव पड़ना प्रारंभ हो जाता है। मां के द्वारा ली गई खुराक, मादक द्रव्य, किया गया श्रम तथा माँ की संवेगात्मक स्थिति का गर्भावस्था से शिशु पर जो प्रभाव पड़ता है। वह आने वाले वर्षों में भी बना रहता है। जन्म के उपरांत घर, गांव व शहर की भौतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है।

सामाजिक वातावरण से तात्पर्य व्यक्ति को उपलब्ध सामाजिक अन्तेर्क्रिया की गुणवत्ता तथा संभावना से है। इसके अंतर्गत परिवार, पड़ोस, विद्यालय, जनसंचार साधन धर्म तथा संस्कृति आदि आते हैं। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि सामाजिक वातावरण का प्रभाव जैविकीय वातावरण से कहीं अधिक व्यापक होता है। अतः सामाजिक कारकों की विस्तृत चर्चा आवश्यक प्रतीत होती है।

3. **परिवार**

परिवार के विभिन्न सदस्य के व्यक्तित्व तथा उनकी परस्पर अंतर्क्रिया का बालक के व्यक्तित्व पर जन्म से ही प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो जाता है बालक जन्म से ही एक सामाजिक प्राणी होता है तथा सबसे पहले वह अपने परिवारजनों के सम्पर्क में आता है। इसलिए पारिवारिक पृष्ठभूमि का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य परिवारजनों यहाँ तक की घर के नौकर आदि के द्वारा की जाने वाली क्रियाओं , लाड- दुलार,

तिरस्कार, ईर्ष्या, द्वेष आदि का प्रभाव बालक पर पड़ता है। परिवार में कलह होने या परिवार की संघर्षपूर्ण जीवन शैली तथा पारिवारजनों की प्रवृतियाँ, महत्वकाँक्षा, रूचि , दृष्टिकोण, क्षमता तथा आर्थिक , सामाजिक व शैक्षिक स्थिति आदि का बालक के व्यक्तित्व के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

अपनी उन्नति जाचें(Know Your progress)-01

प्रश्न 1.व्यक्तित्व विकास क्या है?

(A) गुणों का एक निश्चित समूह

(B) विकास और परिवर्तन की एक गतिशील प्रक्रिया

(C)वंशानुगत विशेषताएँ

(D) स्थिर और अपरिवर्तनीय

प्रश्न 2. परसोना(persno) किस से संबंधित है

(A) ज्ञान

(B) व्यक्तित्व

(C) भाषा

(D) चरित्र

व्यक्तित्व आकलन की विधियां(Method Of Personality Assessment) –

व्यक्तित्व का मूल्यांकन किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं के मापन को संदर्भित करता है। इसमें साक्षात्कार आदि के माध्यम से जानकारी एकत्र करना और विशिष्ट विशेषताओं को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण करना शामिल है। मूल्यांकन जानकारी एकत्र करने का अंतिम परिणाम है। यह क्षेत्र में अनुसंधान को आगे बढ़ाने में योगदान देता

है और यह भी तय करने में मदद करता है कि किस प्रकार का परीक्षण लागू किया जाए और किस तरीके से। मूल्यांकन इस धारणा पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तित्व लक्षणों के संबंध में दूसरे से भिन्न होता है। भले ही उनके पास समान लक्षण हों, लेकिन उनका व्यवहार अलग-अलग स्थितियों में उनके अनुभवों के संदर्भ में भिन्न होगा । व्यक्तित्व आकलन की विधियों को प्रमुख रूप तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

1. **आत्मनिष्ट विधियाँ (Subjective Methods)**
2. **वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective Methods)**
3. **प्रक्षेपीय विधियाँ (Projective Methods)**

1.आत्मनिष्ट विधियाँ (Subjective Method)

आत्मनिष्ट विधियाँ वह होती हैं जिनमे व्यक्ति को अवलोकन की वस्तु के रूप में अपने बारे में जो कुछ भी पता हैं उसे प्रकट करने की अनुमति होती हैं उदहारण के लिए, अगर व्यक्ति आप हो, तब आपको अपने बारे में शोधकर्ता को सबकुछ बाताना हैंयह विधियाँ इस बात पर आधारित होते हैं कि व्यक्ति स्वयं अपने लक्षणों, दृष्टिकोणों, व्यक्तिगत अनुभवों, लक्ष्यों, आवश्यकताओं और रुचियों के बारे में क्या कहता हैं कुछ महत्वपूर्ण आत्मनिष्ट विधियाँ निम्न प्रकार से है -

(i) आत्मकथा (Autobiography)

(ii) जीवन इतिहास (Case History)

(iii) साक्षात्कार (Interview)

(i) आत्मकथा (Autobiography)

इस विधि में मनुष्य केवल अपने बारे में बताता हैं या अपने जीवन के बारे में बताता हैं कि वह क्या हैं? क्यों हैं? उसकी लाइफ जर्नी क्या रही? मतलब इसमें मनुष्य अपनी लाइफ के बारे में खुद से बताता हैं।सरल **शब्दों** में कहा जा

सकता है कि आत्मकथा का मतलब व्यक्ति के खुद के द्वारा लिखी गई कथा होता है क्योकि उसमे व्यक्ति अपने पर्सनल एक्सपीरियंस, घटित घटनाओं, लक्ष्य को लिखकर खुद अन्य लोगो को यह सब इनफार्मेशन देता हैं

बहुत सारे फेमस व्यक्तियो के द्वारा बायोग्राफी लिखी जाती हैं

(ii) जीवन इतिहास (Case History)

इस विधि का प्रयोग प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के समय से चला आ रहा है। आधुनिक काल में इस विधि को प्रमापिक करके अपराधी बालकों और व्यक्तियों को समझने के लिए प्रयोग किया जा रहा है गार्डनर एवं मरफी ने इसे मौखिक विधि की संज्ञा देते हुए लिखा है –**"जीवन-इतिहास विधि में व्यक्ति का, जैसा कि वह आज है, क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।"**

पोलेंसकी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि इस विधि का प्रयोग करते समय अध्ययन किये जाने वाले व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध में अग्रांकित सूचनायें प्राप्त करनी चाहिए –

1. व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्ध
2. व्यक्ति की व्यक्तिगत विभिन्तायें
3. व्यक्ति का दूसरे लोगों के साथ सामंजस्य
4. व्यक्ति की रुचियाँ, दृष्टिकोण और शारीरिक विशेषताएं
5. व्यक्ति के माता- पिता और निकट सम्बन्धियों का अध्ययन।

   इस विधि का मुख्य दोष यह है किव्यक्ति और निकट उससे सम्बन्धित लोग उनके बातों को छिपा लेते हैं।पर कुशल अध्ययनकर्ता विभिन्न स्त्रोतों से सूचनाये एकत्र करके इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर लेता है।इसलिए **थोर्पे एवंशमलर ने इस विधि की प्रशंसा करते हुए लिखा है –"जीवन-इतिहास विधि के समान बहुत ही कम विधियाँ हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस विधि का किसी- न -किसी रूप में अनेक वर्षों से प्रयोग किया है।**

(iii) साक्षात्कार विधि (Interview methods)

व्यक्तित्व मापन की इस विधि का मौखिक विधि का प्रयोग शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। **गैरेट के** अनुसार ,इस विधि के डो स्वरूप है –**औपचारिक और अनौपचारिक ।**

- **औपचारिक** – इस विधि में साक्षात्कार करने वाला, व्यक्ति से नाना प्रकार के प्रश्न पूछता है । इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है,जब बहुत से उम्मीदवारों में से एक या कुछ को किसी कार्य या पद के लिए चुना जाता है ।
- **अनौपचारिक** -इस विधि में साक्षात्कार करने वाला कम –से- कम प्रश्न पूछता है और व्यक्ति को अपने बारें में अधिक- से- अधिक बातें स्वयं बताने का अवसर देता है। इस विधि का प्रयोग, व्यक्ति की समस्याओं, कठिनाइयों, परेशानियों आदि को जानकर उनका निवारण करने के लिए किया जाता है।

2. **वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective Methods)**

इस विधि में मनुष्य के बारे में इनफार्मेशन इनडायरेक्ट तरीके से इकट्ठा की जाती है मतलब वस्तुनिष्ठ विधियाँ व्यक्ति के स्वयं के बारे में दिए गए बयानों पर निर्भर नहीं करती है बल्कि दूसरों के सामने प्रकट किए गए उनके स्पष्ट व्यवहार पर निर्भर करते है

मतलब व्यक्ति का व्यवहार दूसरों के सामने कैसा हैं? अगर मैं किसी व्यक्ति को जानता हैं तो मुझसे उस व्यक्ति के बारे में पता लगाया जाएगा, वह मेरा फ्रेंड, टीचर, पड़ोसी, रिश्तेदार आदि हो सकता हैं कुछ वस्तुनिष्ठ विधियाँ हैं

(i) प्रश्नावली (Questionnaire)

प्रश्नावली क्या है इसे गुडे एवं हॉट के निम्न वर्णन द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता है-

“सामान्यतः प्रश्नावली से प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त, उस साधन का बोध होता है,जिससे एक फार्म का उपयोग किया जाता है और इसे जिससे उत्तर प्राप्त किए जाते है, वही भरता है।

यह परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रश्नावली विधि में व्यक्ति की व्यक्तित्व संबंधित सूचनाये एकत्रित करने के लिए एक पपत्र जिसमे कुछ आवश्यक प्रश्न लिखे अथवा छपे होते हैं,प्रयोग में लाया जाता है प्रश्नों का उत्तर देने के लिए इस फार्म में प्रायः स्थान दिया होता है ।जिसमें सबसे ऊपर ‘हाँ’, ‘नही’ अथवा ‘कहा नही जा सकता’ इत्यादि शीर्षक वालें विभिन्न कॉलम दिए होते हैं। **सरलतापूर्वक सभी प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करने के दृष्टिकोंण से प्रश्नावली को एक बहुत ही महत्वपूर्ण विधि माना जाता है।**

(ii)रेटिंग स्केल (Rating Scales)

रेटिंग स्केल का प्रयोग दूसरे व्यक्तियों से यह जानने के लिए किया जाता है कि कोई व्यक्ति किन्ही व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के हिसाब से कैसा है। प्रायः इस तकनीक के माध्यम से हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व संबंधी कुछ गुणों के बारे में किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता से कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।उस मनुष्य के **इमोशन, गुण, समायोजन, इंटरेस्ट क्या हैं?**

इस तरीकें में एक स्केल होता हैं जिस पर 5 पॉइंट्स बने होते हैं जब किसी व्यक्ति के बारे में अगर हम कुछ जानना चाहते हैं तब उस व्यक्ति के संपर्क में रहने वाले लोगो से उसके बारे में मत माँगा जाता है जिसके आधार पर उस मनुष्य को रेटिंग दिया जाता है

उदहारण के लिए, अगर **अधिक लोगो** ने उस व्यक्ति को अच्छा कहा हैं तब हम अच्छी रेटिंग देते हैं और अगर **अधिक** लोगो ने गलत बताया हैं तब हम ख़राब रेटिंग देंगें

(iii) परिस्थिति परीक्षण (situation test)

यहाँ जिस व्यक्तित्व संबंधी गुण के बारे में जानना हो उससे संबंधित कार्यो को व्यक्ति द्वारा किए जाने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ कृत्रिम रूप से पैदा की जाती हैं।उदहारण के रूप में बच्चे की इमानदारी का मूल्यांकन करने के लिए कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा की जाती है जिसमे उसके व्यवहार अथवा अनुक्रियाओं को इमानदारी अथवा बईमानी के रूप में

तोला जा सके। वह नेकी करने का प्रयत्न करता हैं अथवा नहीं पर जानबूझ कर रखे हुए पैसों को उठाने का प्रयास करता हैं अथवा नही, इस प्रकार से कुछ विशेष परिस्थितियों में वह जैसा व्यवहार करता है उससे उसके व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

3.प्रक्षेपी विधियाँ (Projective Method) – व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधियाँ

प्रक्षेपीय प्रविधियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता व्यक्ति के अचेतन को जानना है।प्रक्षेपीय से अभिप्राय अचेतन को जानने की उस प्रक्रिया से है, जिसमे व्यक्ति अपने विचारों, दृष्टिकोण, संवेगों , गुणों, आवश्यकताओं आदि को अन्य व्यक्तियों या वस्तुओं के माध्यम से अपरोक्ष ढंग से अभिव्यक्त कर देता है।

प्रक्षेपीय प्रविधियों में व्यक्ति के सम्मुख किसी उद्दीपक परिस्थिति को प्रस्तुत किया जाता है तथा व्यक्ति को इस बात के अवसर दिया जाते है की वह अपने विचारों, दृष्टिकोण, संवेगों , गुणों, आवश्यकताओं आदि को उस परिस्थिति में आरोपित कर सकें।प्रक्षेपीय प्रविधियों में व्यक्ति के द्वारा दी जाने वाली प्रतिक्रियाओं के आधार पर प्रक्षेपीय प्रविधियों को निम्न पांच प्रकारों में बांटा जा सकता है

(i) साहचर्य प्रविधियाँ

(ii) रचना प्रविधियाँ

(iii) पूर्ति प्रविधियाँ

(iv) क्रम प्रविधियाँ

(v) अभिव्यक्ति प्रविधियाँ

साहचर्य प्रविधि में व्यक्ति को अपने सम्मुख प्रस्तुत उद्दीपकों से संबंधित कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत करनी होती है। प्रस्तुत किए गये उद्दीपकों के आधार पर साहचर्य तकनीक भी कई प्रकार की हो सकती है।जैसे शब्द साहचर्य,चित्र साहचर्य तथा वाक्य साहचर्य

रचना प्रविधि में व्यक्ति को अपने सामने प्रस्तुत उद्दीपकों के आधार पर कोई नवीन रचना तैयार करने को कहा जाता है।

पूर्ति प्रविधि के अन्तेर्गत किसी अधूरी रचा को उद्दीपक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा व्यक्ति से उस अधूरी रचना को पूरा करने को कहा जाता है।

क्रम प्रविधि में व्यक्ति के सम्मुख कुछ शब्द, कथन, विचार, भाव चित्र, वस्तुएं इत्यादि प्रस्तुत की जाती है तथा उससे उन इन वस्तुओं को अपनी पसंद-नापसंद के अनुरूप किसी क्रममें व्यवस्थित करने के लिए कहा जाता है।

अभिव्यक्ति प्रविधि के अन्तेर्गत व्यक्ति को अपने सम्मुख प्रस्तुत किए गये उद्दीपनों पर अपनी प्रतिक्रियायें मनचाहे तथा स्वतंत्र रूप में अभिव्यक्त करनी होती हैं।

(a) स्याही धब्बा परीक्षण(Rorschach Ink-Blot Method)

हरमन रोर्शा (1884-1920) एक स्विस मनोचिकित्सक थे जिन्होंने वर्ष 1921 में इस तकनीक का विकास किया था।

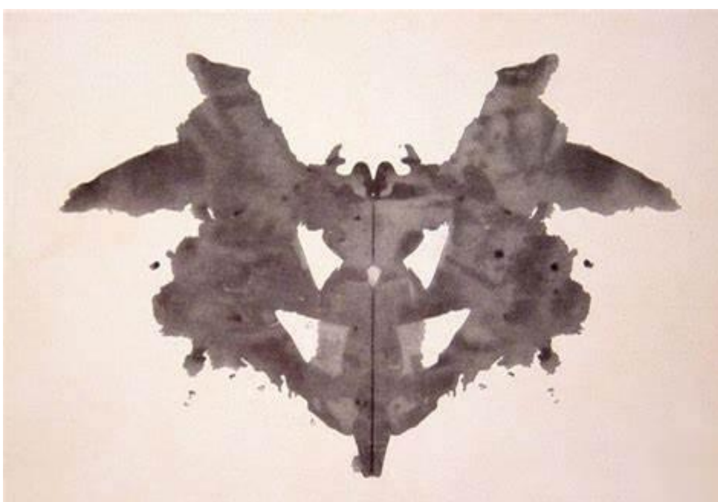

परीक्षण सामग्री : इस परीक्षण में स्याही के धब्बों के 10 कार्डों का प्रयोग किया जाता है इन कार्डो में से 5 बिल्कुल काले हैं, 2 काले और लाल हैं और 3 अनेक रंगों के है। स्याही के धब्बे अत्यधिक असंरचित होते हैं और उनका कोई विशिष्ट अर्थ नहीं होता।

परीक्षण- विधि –जिस मनुष्य के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है उसे ये कार्ड निश्चित समय के अन्तेर के बाद एक –एक करके दिखाये जाते है ।फिर उससे पुछा जाता है कि उसे प्रत्येक कार्ड के धब्बे में क्या दिखाई डे रहा है ।परीक्षार्थी, धब्बों में जो भी आकृतियाँ देखता है, उनको बताता है और परीक्षक उसके उत्तरों को सविस्तार लिखता है एक बार दिखाए जाने के बाद कार्डो को परीक्षार्थी को दुबारा दिखाया जाता है ।इस बार उससे पुछा जाता है कि धब्बों में बताई गए आकृति को उसने किन स्थानों पर देखा था।

विश्लेषण –परीक्षक, परीक्षार्थी के उत्तरों का विश्लेषण निम्न चार बातों के आधार पर करता है

(i) स्थान –इसमे यह देखता है कि परीक्षार्थी की प्रतिक्रिया पुरे धब्बे के प्रति थी,या उसके किसी एक भाग के प्रति।

(ii) निर्धारक –इसमे यह देखा जाता है कि परीक्षार्थीकी प्रतिक्रिया धब्बे की बनावट के कारण थी या उसके रंग के कारण या उसमे देखीजाने वाली किसी आकृति की गति के कारण।

(iii)विषय – इसमे यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी ने धब्बों में किसकी आकृतियाँ देखीं – व्यक्तियों की, पशुओं की, वस्तुओं की, प्राकतिक द्रश्यों की, नक्शों की या अन्य किसी की।

(iv)समय व प्रतिक्रिया – इसमे यह देखा जाता है कि परीक्षार्थी ने प्रत्येक धब्बे के प्रति कितने समय तक प्रतिक्रिया की, कितनी प्रतिक्रियायें किन और किस प्रकार की कीं।

निष्कर्ष – अपने विश्लेषण के आधार पर परीक्षक निम्न प्रकार के निष्कर्ष निकालता है –

(i) यदि परीक्षार्थी ने सम्पूर्ण धब्बों के प्रति प्रतिक्रियायें की है, वह व्यवहारिक मनुष्य न होकर सैद्धान्तिक मनुष्य है।

(ii) यदि परीक्षार्थी ने धब्बों के भागों के प्रति प्रतिक्रियायें की है तो वह छोंटी –छोटी और व्यर्थ की बातों की ओर ध्यान देने वाला है।

(iii) यदि परीक्षार्थी ने धब्बों में व्यक्तियों, पशुओं आदि की गति देखी है,तो यह वह अन्तेर्मुखी मनुष्य है।

(iv) यदि परीक्षार्थी ने रंगों के प्रति प्रतिक्रियायें की है तो उसमें संवेगों का बाहुल्य है।

उपयोगिता – इस परीक्षण के द्वारा व्यक्ति की बुद्धि, सामाजिकता, अनुकूलन , अभिवृतियों ,संवेगात्मक संतुलन, व्यक्तिगत विभिन्नता आदि की बुद्धि का पर्याप्त ज्ञान हो जाता हैं

(b) प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण(Thematic Apperception Test)

परीक्षा- प्रणाली- इस परीक्षण का निर्माण मोर्गन एवं मुर्रे ने 1925 में किया था।इस प्रशिक्षण में 30 चित्रों का प्रयोग किया जाता है। यह सभी चित्र पुरुषों या स्त्रियों के हैं। इनमें से 10 चित्र पुरुषों के लिए, 10 स्त्रियों के लिए और 10 दोनों के लिए हैं। परीक्षण के समय लिंग के अनुसार साधारणतः 10 चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

परीक्षण- विधि –परीक्षक, परीक्षार्थी को एक चित्र दिखाकर पूछता है- चित्र में क्या हो रहा है? इसके होने का क्या कारण है? इसका क्या परिणाम होगा? चित्र में अंकित व्यक्ति या व्यक्तियों के विचारों और भावनायें क्या है? इन प्रश्नों को पूछने के बाद परीक्षक, परीक्षार्थी को एक-एक करके 10 कार्ड दिखता है। वह परीक्षार्थी के प्रश्नों को ध्यान में रखकर प्रत्येक कार्ड के चित्र के संबंध में कोई कहानी बनाने को कहता है। परीक्षार्थी कहानी बनकर सुनता है।

विश्लेषण -परीक्षार्थी साधारणतः अपने को चित्र कोई पात्र मान लेता है। इसके बाद वह कहानी कहकर अपने विचारों, भावनाओं, समस्याओं आदि को व्यक्त करता है।यह कहानी स्वयं उसके जीवन की कहानी होती है। परीक्षक कहानी का विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता लगता है।

उपयोगिता -इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति की रुचियों, अभिरुचियों, प्रवृत्तियों , इच्छाओं, आवश्यकताओं, सामाजिक और व्यक्तिगत संबंधों आदि की जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस जानकारी के आधार पर व्यक्तिगत निर्देशन देने का कार्य सरल हो जाता है

अपनी उन्नति जाचें(Know Your progress)-02

प्रश्न 3.प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (TAT) व्यक्तित्व मापन की एक –

(A)आत्मनिष्ठ तकनीक है

(B) वस्तुनिष्ठ तकनीक है

(C) प्रयोगात्मक तकनीक है

(D) प्रक्षपी तकनीक है

प्रश्न 4. एक बालक व्यक्तित्व मापन की सर्वाधिक व्यक्तिनिष्ठ विधि है –

(A)प्रक्षेपी विधि

(B)साक्षात्कार विधि

(C)समाजमित विधि

(D)प्रश्नावली विधि

प्रश्न 5. निम्न में से कौन सी विधि व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधि है -

(A) अवलोकन

(B) रेटिंग स्केल

(C) साक्षात्कार

(D)TAT

सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने व्यक्तित्व की अवधारणा, अर्थ ,परिभाषा एवं इसकी उत्पत्ति और व्युत्पत्तियों का अध्ययन किया। हमने व्यक्तित्व की विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया । इसके बाद व्यक्तित्व की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन किया गया। अब हम यह समझने में सक्षम हैं कि व्यक्तित्व कैसे संगठित होता है और हम इसे एक गतिशील प्रणाली क्यों कहते हैं। हम जानते हैं कि व्यक्तित्व जीवन भर विकसित होता रहता है और यह स्थिर नहीं है। व्यक्तित्व के विभिन्न

आयामों को अपने शब्दों में समझ सकते हमने व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों जैसे- लक्षण आयाम, प्रेरक आयाम, स्वभाव आयाम और चरित्र आयाम का अध्ययन किया। साथ ही हमने व्यक्तित्व मूल्यांकन का अर्थ एवं व्यक्तित्व आकलन करने की विधियों को समझाने का प्रयास किया । व्यक्तित्व मूल्यांकन के सैद्धांतिक और व्यावहारिक उद्देश्य और महत्व पर चर्चा की। तथा व्यक्तित्व सूची, उनके अर्थ, व्यक्तित्व सूची की उत्पत्ति पर चर्चा की। व्यक्तित्व मूल्यांकन की प्रोजेक्टिव तकनीक तथा उसके प्रकारों पर विस्तृत चर्चा की ।

अपनी उन्नति जाचें(Chack your progress) –ANSWER-01

प्रश्न.1-उत्तर - (A) गुणों का एक निश्चित समूह

प्रश्न.2-उत्तर - (B) व्यक्तित्व

अपनी उन्नति जाचें(Chack your progress) –ANSWER-02

प्रश्न.3-उत्तर - (D) प्रक्षेपी तकनीक है

प्रश्न.4-उत्तर - (D)प्रश्नावली विधि

प्रश्न.5-उत्तर - (D)TAT

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

1.जॉन माल्टबी, लिज़ डे, एन मैकस्किल (2009), व्यक्तित्व, व्यक्तिगत अंतर और बुद्धि (दूसरा संस्करण) पियर्सन एजुकेशन यूरोप, मध्य पूर्व और अफ्रीका, कनाडा।

2.रॉबर्ट बी. इवेन (1998), व्यक्तित्व के सिद्धांतों का परिचय (5वां संस्करण) लॉरेंस एर्लबौम एसोसिएट्स,प्रकाशक, न्यू जर्सी।

3.कूपर, सी. (2002), व्यक्तिगत अंतर (दूसरा संस्करण) न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

4. गुप्ता.एस. पी & गुप्ता .अलका –उचित्तर शिक्षा मनोविज्ञान: शारदा पुस्तक भंडार,इलाहाबाद.

5. पाठक ,पी. डी & ममता चतुर्वेदी, (2008), ISO: 9001 अग्रवाल पब्लिकेशन ,आगरा.

14.8 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

प्रश्न 1.व्यक्तित्व शब्द से आप क्या समझते हैं? विस्तार से चर्चा करें।

प्रश्न 2. व्यक्तित्व की विशिष्ट विशेषताओं पर टिप्पणी करें।

प्रश्न 3.व्यक्तित्व मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित चर्चा करें।

प्रश्न 4.व्यक्तित्व मूल्यांकन की विभिन्न प्रक्षेपी तकनीकों पर विस्तार से चर्चा करें।

इकाई -15- अभिप्रेरणा का अर्थ, परिभाषाएँ, उद्देश्य तथा विद्यार्थियों के लिए इसकी उपयोगिता (Meaning, Definitions, Objectives of Motivation. The Utility for the students of Motivation)

15.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)
15.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)
15.3 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Motivation)
15.4 अभिप्रेरणा की प्रकृति (NATURE OF MOTIVATION)
15.5 अभिप्रेरणा की आवश्यकता (NEED OF MOTIVATION)
15.6 अभिप्रेरणा के घटक (COMPONENTS OF MOTIVATION)
15.7 अभिप्रेरणा के प्रकार (TYPES OF MOTIVATION)
15.8 अभिप्रेरणा के सिधांत (THEORYES OF MOTIVATION)
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
15.9 छात्रों के लिए अभिप्रेरणा की उपयोगिता (UTILITY FOR THE STUDENTS OF MOTIVATION)
15.10 सारांश (SUMMARY)
15.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWER OF PRACTICE QUESTIONS)
15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCE)
15.13 निबंधात्मक प्रश्न (LONG ANSWER QUESTIONS)

15.1 प्रस्तावना (INTERODUCTION)

अभिप्रेरणा व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य कारकों का वह समुच्चय है, जो उसे किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। यह सीखने, कार्य करने और जीवन में सफलता प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण तत्व है। शिक्षा और विकास के

क्षेत्र में अभिप्रेरणा का विशेष स्थान है, क्योंकि यह छात्रों की जिज्ञासा को बढ़ाती है, उन्हें सक्रिय रूप से सीखने के लिए प्रेरित करती है तथा उनकी उपलब्धियों को प्रभावित करती है। वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा और अन्य शैक्षिक दृष्टिकोणों में भी शिक्षार्थियों को आत्म-प्रेरित करने और उनमें उत्साह बनाए रखने पर विशेष ध्यान दिया गया है। अधिगम में अभिप्रेरणा का विशेष महत्व होता हैं क्योंकि कोई भी अधिगम बिना अभिप्रेरणा के नही हो सकता हैं। अतः शिक्षक को अधिगम स्वरूपों को उत्पन्न करने के लिए अभिप्रेरणा की प्रबिधियों का प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक होता हैं।

इस इकाई में, हम अभिप्रेरणा की परिभाषा, इसके प्रकार, सिद्धांतों और शिक्षण-अधिगम में इसकी भूमिका का अध्ययन करेंगे। साथ ही, यह समझने का प्रयास करेंगे कि एक शिक्षक या अभिभावक किस प्रकार छात्रों को अभिप्रेरित कर सकते हैं ताकि वे अपने लक्ष्यों की ओर अग्रसर हों और आत्मनिर्भरता तथा आत्म-नियंत्रण विकसित कर सकें।

15.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र -

1. छात्र अभिप्रेरणा के अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेंगे।
2. छात्र अभिप्रेरणा की प्रकृति एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
3. छात्र अभिप्रेरणा के घटकों के बारे में समझ सकेंगे।
4. छात्र अभिप्रेरणा के प्रकार के बारे में समझ सकेंगे ।
5. छात्र अभिप्रेरणा के सिधान्तों के बारे में समझ सकेंगे।

15.3 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Motivation)-

अभिप्रेरणा का सामान्य अर्थ है किसी व्यक्ति के भीतर या बाहर मौजूद वह शक्ति या प्रक्रिया, जो उसे किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है। यह एक मानसिक अवस्था है, जो लक्ष्य प्राप्ति की ओर सक्रियता और उत्साह बनाए रखती है। अभिप्रेरणा व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और व्यवहार को दिशा देती है, जिससे वह अपने उद्देश्यों को

प्राप्त करने के लिए सतत प्रयासरत रहता है। शिक्षा, कार्यक्षेत्र और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह सफलता और आत्म-विकास की कुंजी है।

अभिप्रेरणा एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और व्यवहार को प्रभावित करती है। यह वह शक्ति है, जो व्यक्ति को किसी कार्य को करने, लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयास करने और सतत रूप से आगे बढ़ते रहने के लिए प्रेरित करती है। यह शिक्षा, व्यवसाय, खेल, व्यक्तिगत विकास और जीवन के अन्य सभी पहलुओं में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। "अभिप्रेरणा" सामान्यतः दो शब्दों से मिलकर बना है- "अभि" और "प्रेरणा", जिसमें "अभि" का अर्थ "सामने" या "आगे" होता है और "प्रेरणा" जिसका अर्थ "प्रेरित करना" या "आत्मिक शक्ति देना" होता है। इस प्रकार, अभिप्रेरणा का अर्थ है किसी व्यक्ति को उसके लक्ष्यों की ओर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना।

अंग्रेजी में "Motivation" शब्द लैटिन भाषा के "Movere" शब्द से बना है, जिसका अर्थ है "गतिमान होना" या "आगे बढ़ना"। यह संकेत करता है कि अभिप्रेरणा वह शक्ति है, जो व्यक्ति को कार्य करने और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है।

अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा को अलग-अलग रूप में परिभाषित किया हैं **गुड** ने अभिप्रेरणा को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया हैं-

अभिप्रेरणा किसी कार्य को प्रारम्भ करने, जारी रखने तथा सही दिशा में लगाने की प्रक्रिया हैं।

ब्लेयर, जोन्स और **सिम्पसन** ने अभिप्रेरणा को सीखने के सन्दर्भ में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया हैं-

अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया हैं जिसमें सीखने वाले की आंतरिक उर्जाएँ अथवा आवश्यकताएं उसके पर्यावरण में उपस्थित विभिन्न आदर्शोन्मुख लक्ष्यों की और निर्देशित होती हैं।

मेड़ोनाल्ड के अनुसार-

अभिप्रेरणा व्यक्ति के अन्दर उर्जा परिवर्तन हैं जो भावात्मक जाग्रति तथा उद्देश्य अपेक्षित अनुक्रियाओं को जन्म देता हैं।

15.4 अभिप्रेरणा की प्रकृति (NATURE OF MOTIVATION)

अभिप्रेरणा एक जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और व्यवहार को प्रभावित करती है। यह व्यक्ति को किसी कार्य को करने, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने और निरंतर प्रयासरत रहने के लिए प्रेरित करती है। इसकी प्रकृति को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

1- अभिप्रेरणा प्रक्रिया एवं परिणाम दोनों हैं।

2- अभिप्रेरणा का जन्म किसी न किसी आवश्यकता से होता हैं।

3- अभिप्रेरणा व्यक्ति को तब तक क्रियाशील रखती हैं, जब तक कि उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाये।

4- अभिप्रेरणा एक आंतरिक भावना और मनोवैज्ञानिक पहलू है।

5- अभिप्रेरणा लक्ष्य-आधारित व्यवहार का उत्प्रेरण या उर्जाकरण है।

6- अभिप्रेरणा सकारात्मक या नकारात्मक हो सकती है।

7- अभिप्रेरणा लचीली लेकिन जटिल है।

8- अभिप्रेरणा एक समय में कई चरों से प्रभावित होती है।

9- अभिप्रेरणा आंतरिक या बाह्य हो सकती है।

10-अभिप्रेरणा एक प्रक्रिया या बल है, जो बच्चों को अभिप्रेरित करता है।

11-अभिप्रेरणा मनुष्य को अपनी ऊर्जा मुक्त करने के लिए प्रेरित करता है।

12-अभिप्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया जाता है।

15.5 अभिप्रेरणा की आवश्यकता (NEED OF MOTIVATION)

अभिप्रेरणा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह उसे अपने लक्ष्यों की प्राप्ति, आत्म-विकास, उत्पादकता, सकारात्मक दृष्टिकोण और चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित करती है। शिक्षा, व्यवसाय, खेल, नेतृत्व और व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति प्रेरित होता है, तो वह न केवल अपने कार्यों को बेहतर तरीके से करता है, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास में भी योगदान देता है। इसलिए, अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित करने के लिए उचित रणनीतियाँ अपनाई जानी चाहिए ताकि व्यक्ति और समाज दोनों का समुचित विकास हो सके। अभिप्रेरणा व्यक्ति के विकास, कार्यक्षमता और लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक होती है। इसकी प्रमुख आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं:

1- **लक्ष्य की प्राप्ति के लिए -** अभिप्रेरणा व्यक्ति को उसके निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। जब कोई व्यक्ति अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित होता है, तो वह अपने कार्य में अधिक रुचि दिखाता है और पूरे उत्साह के साथ प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, एक छात्र अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए प्रेरित होता है, तो वह कठिन परिश्रम करता है और अध्ययन में अधिक ध्यान देता है।

2- **आत्मविकास में सहायक -** अभिप्रेरणा व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास और आत्म-सुधार के लिए प्रेरित करती है। यह आत्म-विश्वास को बढ़ाती है और व्यक्ति को अपनी क्षमताओं को पहचानने और उन्हें निखारने के लिए प्रेरित करती है। जब कोई व्यक्ति अपने लक्ष्यों की दिशा में कार्य करता है, तो वह धीरे-धीरे अपने कौशल और ज्ञान को विकसित करता है.

3- **उत्पादकता एवं कार्यक्षमता में सहायक-** अभिप्रेरित व्यक्ति अधिक मेहनत करता है और अपनी कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास करता है। व्यवसाय और उद्योग में अभिप्रेरित कर्मचारी अधिक उत्पादक होते हैं और संगठन की सफलता में योगदान देते हैं। जब किसी संगठन में कर्मचारियों को प्रेरित किया जाता है, तो वे अधिक उत्साह के साथ कार्य करते हैं और संगठन की उन्नति में सहायक होते हैं।

4- **सकारात्मक दृष्टिकोण बनाने में सहायक-** अभिप्रेरणा व्यक्ति में सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करती है। यह उसे नकारात्मक विचारों से दूर रखती है और उसे अपने कार्य में विश्वास दिलाती है। आत्मविश्वास बढ़ने से व्यक्ति किसी भी कठिनाई का सामना करने के लिए तैयार रहता है और चुनौतियों को अवसरों में बदलने की क्षमता विकसित करता है।

5- **शिक्षा में अभिप्रेरणा की भूमिका-** शिक्षा के क्षेत्र में अभिप्रेरणा का विशेष महत्व है। जब छात्र प्रेरित होते हैं, तो वे बेहतर तरीके से सीखते हैं और शिक्षा में रुचि लेते हैं। शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को उनकी रुचि और क्षमताओं के अनुसार प्रेरित करें ताकि वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

6- **कार्यस्थल में अभिप्रेरणा का महत्व -** कार्यस्थल पर अभिप्रेरणा कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढ़ाने में सहायक होती है। एक प्रेरित कर्मचारी अधिक मेहनती, रचनात्मक और उत्पादक होता है। यदि प्रबंधन कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए उचित रणनीतियाँ अपनाता है, तो संगठन की प्रगति निश्चित होती है।

7- **चुनौतियों का सामना करने की क्षमता-** अभिप्रेरणा व्यक्ति को जीवन में आने वाली कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना करने की शक्ति प्रदान करती है। यह व्यक्ति को हार न मानने और लगातार प्रयास करने के लिए प्रेरित करती है। जब व्यक्ति प्रेरित होता है, तो वह किसी भी विपरीत परिस्थिति में भी धैर्य और आत्म-विश्वास बनाए रखता है।

15.6 अभिप्रेरणा के घटक (COMPONENTS OF MOTIVATION)

अभिप्रेरणा के मुख्यतः तीन घटक होते हैं जो निम्नवत हैं –

1- आवश्यकताएं (NEED)

2- अंतर्नोद या चालक (DRIVE)

3- प्रोत्साहन (INCENTIVE)

अभिप्रेरणा किसी आवश्यकता से आरम्भ होती हैं तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के बाद स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं, अभिप्रेरणा में अंतर्नोद एवं प्रोत्साहन भी अपना महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं।

1- आवश्यकता (NEED)-

आवश्यकता से तात्पर्य किसी वस्तु के अभाव की अनुभूति से होता है जिससे मनुष्य का सामान्य व्यवहार प्रभावित होता है।

बर्नाड के अनुसार - जब तक आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है तब तक जीवन में तनाव की स्थिति बनी रहती है। इस प्रकार आवश्यकता की धारणा और उनसे संबंधित अभिप्रेरणा एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं, प्रत्येक प्रकार के व्यवहार के मूल में आवश्यकता महत्वपूर्ण कार्य करती है, इस प्रकार व्यक्ति में निहित वह शक्ति जो किसी को विशेष प्रकार के व्यवहार करने को प्रेरित करते है उसे आवश्यकता कहते हैं।

आवश्यकताएं मुख्यतः दो प्रकार की होती है-

1- शारीरिक आवश्यकता,

2- मानसिक आवश्यकता,

शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होते ही व्यक्ति के व्यवहार का रूप संतुष्टि में बदल जाता है, परंतु मनोवैज्ञानिक आवश्यकता व्यक्ति के व्यवहार के निर्धारण में महत्वपूर्ण कार्य करती है। इनकी संतुष्टि कभी भी पूर्ण रूप में नहीं होती है, अधिकांश व्यक्तियों का व्यवहार मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से नियंत्रित होता है।

बोरिंग तथा लेंगफील्ड ने आवश्यकता को एक तनाव के रूप में परिभाषित किया हैं जो इस प्रकार से हैं-

आवश्यकता किसी भी व्यक्ति के अन्दर का वह तनाव हैं, जो उसे उद्देश्य लक्षित निश्चित प्रोत्साहनों की और प्रवर्त कर्ता हैं और उनकी प्राप्ति के लिए क्रियाओं को उत्पन्न करती हैं।

इन सभी प्रकार की आवश्यकताओं की व्याख्या **मूरे की आवश्यकता सिद्धांत** तथा **मैस्लो के चढ़ाव सिद्धांत** में की गई है।

2- अंतर्नोद या चालक (DRIVE)-

आवश्यकता व्यक्ति के अन्दर तनाव पैदा करती हैं, यह तनाव जिस रूप में अनुभव किया जाता हैं उसे अंतर्नोद अथवा चालक कहते हैं। जैसे भोजन की आवश्यकता होने पर भूख लगना, एवं पानी की आवश्यकता होने पर

प्यास लगना आदि। ये अंतर्नोद आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति को अधिक क्रियाशील करते हैं, जैसे भूख लगने पर भोजन की तलाश करना, और प्यास लगने पर पानी पीने के लिए कोशिश करना।

शेफर के अनुसार-

अंतर्नोद वह शक्तिशाली एवं सतत उद्दीपक है जो किसी समायोजन की अनुक्रिया की मांग करता हैं।

3- प्रोत्साहन (INCENTIVE)-

प्रोत्साहन वाह्य वातावरण से प्राप्त होने वाली वह वस्तु हैं जो किसी व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति करके आवश्यकता के कारण उत्पन्न होने वाले अंतर्नोद या चालक को समाप्त या शांत करती हैं, जैसे- भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भोजन प्राप्त होना, भोजन भूख प्रेरक को शांत करने के सन्दर्भ में प्रोत्साहन हैं।

हिल्गार्ड के अनुसार-

सामान्यतः उचित प्रोत्साहन वह हैं जिसके प्राप्त होने से अंतर्नोद की तीव्रता कम होती हैं,

15.7 अभिप्रेरणा के प्रकार (TYPES OF MOTIVATION)

अभिप्रेरणा को सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता हैं, जो निम्नवत हैं –

1- आतंरिक अभिप्रेरणा (INTERNAL MOTIVATION)

2- बाह्य अभिप्रेरणा (EXTERNAL MOTIVATION)

1- **आतंरिक अभिप्रेरणा-** आतंरिक अभिप्रेरणा वह प्रेरणा होती है जो व्यक्ति के भीतर से उत्पन्न होती है तथा जो व्यक्ति के व्यवहार को उत्तेजित करती हैं, इस प्रकार की अभिप्रेरणा में व्यक्ति की आंतरिक शक्ति अत्यंत प्रबल होती हैं, जो उस व्यक्ति को कोई भी कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। इसमें व्यक्ति किसी कार्य को अपने आनंद, रुचि या आत्म-संतोष के लिए करता है, न कि किसी बाहरी इनाम या दबाव के कारण। जैसे- ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा, किसी कला में निपुणता हासिल करने की इच्छा आदि।

2- **बाह्य अभिप्रेरणा-** बाह्य अभिप्रेरणा वह प्रेरणा होती हैं जो बाहरी कारकों से प्रभावित होती है, बाह्य अभिप्रेरणा में व्यक्ति की इच्छा गौण होती हैं। जैसे पुरस्कार, प्रशंसा, पदोन्नति या दंड का भय। इसमें व्यक्ति किसी कार्य को बाहरी लाभ प्राप्त करने या दंड से बचने के लिए करता है। जैसे- परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए पढ़ाई करना, वेतन वृद्धि के लिए मेहनत करना आदि।

15.8 अभिप्रेरणा के सिद्धांत (THEORIES OF MOTIVATION)

अभिप्रेरणा को समझाने के लिए कई मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं-

1- **मूल प्रवर्तियों का सिद्धांत (INSTINCT THEORY)**

2- **मनो-विश्लेषनात्मक सिद्धांत (PSYCHO-ANALYTIC THEORY)**

3- **अंतर्नोद सिद्धांत (DRIVE THEORY)**

4- **प्रोत्साहन सिद्धांत (INCENTIVE THEORY)**

5- **आवश्यकता सिद्धांत (NEED THEORY)**

- **मूल प्रवर्तियों का सिद्धांत (INSTINCT THEORY)**

मूल प्रवर्तियों के सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक **मैकडूगल** ने किया था इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य का प्रत्येक व्यवहार उसकी मूल प्रवर्तियों द्वारा संचालित होता हैं, तथा उसकी मूल प्रवर्तियों के पीछे छिपे संवेग ही अभिप्रेरकों का कार्य करते हैं यह सिधांत यह मानता है कि मनुष्य और अन्य प्राणियों का व्यवहार मुख्य रूप से जन्मजात और स्वाभाविक प्रवृत्तियों द्वारा संचालित होता है। इस सिद्धांत के अनुसार, प्रवृत्तियाँ ऐसे स्वचालित और सार्वभौमिक व्यवहार होते हैं, जो विशेष उद्दीपन के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होते हैं।

जैसे- आत्म-संरक्षण, भोजन की प्राप्ति, और मातृत्व जैसी प्रवृत्तियाँ मानव व्यवहार को संचालित करती हैं। व्यक्ति की कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ शुरुआती विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

- **मनो-विश्लेषनात्मक सिद्धांत (PSYCHO-ANALYTIC THEORY) -**

इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक **सिगमंड फ्रायड** ने किया हैं, इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाली अभिप्रेरणा के दो मूल कारक होते हैं-

1- मूल प्रवृत्तियों

2- अचेतन मन

यह सिद्धांत यह मानता है कि मानव व्यवहार मुख्य रूप से अवचेतन मन में दबे इच्छाओं, संघर्षों और अनुभवों द्वारा संचालित होता है। फ्रायड ने मन को तीन भागों – **इड (Id), अहम् (Ego), और सुपरइगो (Superego)** में विभाजित किया, जहाँ **इड** तात्कालिक इच्छाओं और आनंद की प्रवृत्ति को दर्शाता है, **अहम्** तर्कसंगत सोच और वास्तविकता से जुड़ा होता है, जबकि **सुपरइगो** नैतिकता और सामाजिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। यह सिद्धांत यह भी बताता है कि बचपन के अनुभव और दमन की गई इच्छाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। मनो-विश्लेषणात्मक सिद्धांत आधुनिक मनोविज्ञान, परामर्श, और मनोचिकित्सा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **अंतर्नोद सिद्धांत (DRIVE THEORY)-** इस सिद्धांत का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक **क्लार्क हल** ने किया हैं मानव और प्राणी व्यवहार को समझाने वाला एक प्रमुख सिद्धांत है, जिसके अनुसार जीवों का व्यवहार उनकी आंतरिक आवश्यकताओं और उद्दीपनों (drives) द्वारा प्रेरित होता है। जब किसी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती, तो जीव के भीतर तनाव (tension) उत्पन्न होता है, जिसे कम करने के लिए वह प्रयास करता है। इस सिद्धांत के अनुसार जैविक आवश्यकताएँ, जैसे भूख, प्यास, और नींद, जब अधूरी रहती हैं, तो वे अंतर्नोद

उत्पन्न करती हैं, और यह अंतर्नोद व्यक्ति के व्यवहार को प्रेरित करती है। जैसे- भूख लगने पर भोजन प्राप्त करना। इस सिद्धांत के अनुसार, जब आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है, तो तनाव कम हो जाता है और संतोष की अनुभूति होती है।

- **प्रोत्साहन सिद्धांत (INCENTIVE THEORY)-** इस सिद्धांत का प्रतिपादन **बोल्स तथा फाफ़मैन** ने किया हैं इस सिद्धांत के अनुसार मानव व्यवहार बाह्य प्रोत्साहनों और पुरस्कारों द्वारा प्रेरित होता है। यह सिद्धांत मानता है कि व्यक्ति किसी कार्य को तब करता है जब उसे उससे सुखद परिणाम (इनाम) प्राप्त होने की आशा होती है या किसी अप्रिय परिणाम (दंड) से बचाव की संभावना होती है। जैसे- विद्यार्थी अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए मेहनत करता है, क्योंकि अच्छे अंक उसकी प्रेरणा का कारण होते हैं। इसी प्रकार, कर्मचारी वेतनवृद्धि या पदोन्नति के लिए कार्य में उत्कृष्टता दिखाता है। इस सिद्धांत के अनुसार, प्रोत्साहन व्यवहार को दिशा और ऊर्जा प्रदान करता है।

- **आवश्यकता सिद्धांत (NEED THEORY)-** अभिप्रेरणा का आवश्यकता सिद्धांत के प्रतिपादक **मैस्लों** थे। मैस्लों ने मनुष्य की आवश्यकताओं को अलग-अलग स्तरों में वर्गीकृत किया हैं।

मैस्लो का मानव आवश्यकताओं का वर्गीकरण (Maslow's Hierarchy of Human Needs) –

मैस्लों ने अपने अभिप्रेरणा सिद्धान्त में आवश्यकताओं के वर्गीकरण का चढ़ाव क्रम की व्याख्या की है। उनका मानना था कि अभिप्रेरणा में आवश्यकताओं की अनुभूति तथा संतुष्टि निहित होती है मैस्लों ने सन 1954 में मानव की आवश्यकताओं को एक सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया हैं, जो निम्नवत हैं –

1- शारीरिक आवश्यकताएं (Psychological Needs)

2- सुरक्षा की आवश्यकताएं (Sefety Needs)

3- स्नेह तथा सम्बन्ध की आवश्यकताएं (Need of love & Belongingness)

4- सम्मान की आवश्यकताएं (Esteem Needs)

5- यथार्थीकरण/ स्वयं की प्राप्ति (Needs of Self Actualization)

1- **शारीरिक आवश्यकताएं (Psychological Needs)-** शारीरिक आवश्यकताओं को मानवीय आवश्यकताओं का प्राथमिक बिंदु माना जाता हैं, इसमें भूख,प्यास तथा लिंग आदि आवश्यकताएं सम्मलित होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति नही होने पर व्यक्ति का व्यवहार इन्ही से नियंत्रित होता हैं। जैसे- व्यक्ति भूखा होने पर भोजन खाने का प्रयास करता हैं। जब तक इन प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति नही हो जाती हैं, तब तक उच्च स्तर की आवश्यकतायें उत्पन्न नही होती हैं। शारीरिक आवश्यकताओं को निम्न स्तर की आवश्यकता माना जाता हैं।

2- **सुरक्षा की आवश्यकताएं (Sefety Needs)-** शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने के पश्चात् व्यक्ति की सुरक्षा की आवश्यकता उत्पन्न होती हैं। युवकों की अपेक्षा विद्यार्थियों में इस आवश्यकता को अधिक स्पस्ट रूप में देखा जा सकता हैं। इस प्रकार की आवश्यकता में जीवित रहने तथा सुरक्षित रहने आदि को मैस्लों ने निम्न प्रकार की आवश्यकता मानी हैं। सुरक्षा की आवश्यकता सभी प्रकार के जीवों में पायी जाती हैं।

3- **स्नेह तथा सम्बन्ध की आवश्यकता (Need of love & Belongingness)-** स्नेह तथा सम्बन्ध की आवश्यकता व्यक्ति में तभी उत्पन्न होती हैं। जब प्रथम तथा द्वितीय प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से प्राप्ति हो जाती हैं। इस प्रकार की आवश्यकता में व्यक्ति मित्र बनाने का प्रयास करता हैं, तथा समूह में अपना स्थान बनाने का प्रयास करता हैं। इस प्रकार की आवश्यकता के उदाहरण मित्र बनाना, मान्यता देना तथा स्नेह करना आदि हैं।

4- **सम्मान की आवश्यकता (Esteem Needs)-** सम्मान की आवश्यकता को उच्च स्तर की आवश्यकता माना जाता हैं। इसमें आत्मसम्मान की इच्छा होती हैं। इसके लिए व्यक्ति सम्मान पाना चाहता हैं, सम्मान, स्वामित्व, नेतृत्व करना तथा स्वतंत्र रहना चाहता हैं। व्यक्ति में इस प्रकार की जागृति तभी होती हैं, जब प्रथम तीनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती हैं। तीनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति नही होने पर व्यक्ति में हीन भावना जागृत हो जाती हैं।

5- **यथार्थीकरण/ स्वयं की प्राप्ति (Needs of Self-Actualization)-** प्रथम चारों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर व्यक्ति को यथार्थीकरण की अवस्था प्राप्त होती हैं। मैस्लों के अनुसार यथार्थीकरण की आवश्यकता का अर्थ यह हैं कि व्यक्ति को वही होना चाहिए जो वह हो सकता हैं।

मैस्लों द्वारा दिया गया व्यक्ति की आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण कक्षा शिक्षण तथा विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक उपयोगी तथा सार्थक प्रतीत होता हैं। मैस्लों ने अपने वर्गीकरण में प्रथम तीन प्रकार की आवश्यकताओं को निम्न प्रकार तथा बांकी के दो प्रकार की आवश्यकता हो उच्च प्रकार की आवश्यकता माना हैं।

मैस्लो के सिद्धांत की विशेषताएं-

मैस्लों के सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ या गुण निम्नवत हैं-

1- इस सिद्धांत के अनुसार मानव की आवश्यकताएं उसके लिए अभिप्रेरक का कार्य करती हैं।

2- इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति एक विशेष क्रम में होती हैं, जिसमें सबसे पहले व्यक्ति नीचे के स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति करता हैं, तथा उसके बाद वह क्रमशः उपर के क्रम की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्रयत्नशील रहता हैं।

3- इस सिद्धांत के अनुसार नीचे के क्रम से प्रथम दो स्तर की आवश्यकताएं शारीरिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता व्यक्ति की निम्न स्तर की आवश्यकताएं होती हैं।

4- इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की जैसे-जैसे उपर के क्रम की आवश्यकताओं की पूर्ति होते जाती हैं वैसे-वैसे व्यक्ति का विकास भी होते जाता हैं, तथा अंतिम आत्म सिद्धि की आवश्यकता को पूर्ण करने पर वह पूर्ण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बन जाता हैं।

5- अंतिम आत्म सिद्धि की प्राप्ति के बाद व्यक्ति को अपनी अन्तः शक्तियों को समझने तथा पहचानने में सहायता मिलती हैं।

मैस्लो के सिद्धांत की कमियां –

1- इस सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए मैस्लों ने कुल 49 प्रयोज्य (subjects) का ही प्रयोग किया था, इसलिए बहुत सरे मनोवेग्यनिकों का मानना था कि इतने कम प्रयोज्यों के आधार पर किसी भी सिद्धांत का प्रतिपादन नही किया जा सकता हैं।

2- मैस्लो ने आवश्यकताओं को एक पदक्रम में रखा है, जिसमें निचली आवश्यकताओं को पहले पूरा करना पड़ता है, और फिर उच्च स्तर की आवश्यकताओं की ओर बढ़ना चाहिए। लेकिन वास्तविक जीवन में कई बार यह क्रम लचीला नहीं होता। कुछ लोग सामाजिक और आत्मसम्मान की आवश्यकताओं को पहले पूरा कर सकते हैं, जबकि शारीरिक और सुरक्षा संबंधी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं।

3- इस सिद्धांत में स्वयं की प्राप्ति (self-actualization) का स्तर बहुत अधिक अमूर्त और व्यक्तिगत होता है, जिसे स्पष्ट रूप से परिभाषित करना कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसकी परिभाषा और प्राप्ति का तरीका भिन्न हो सकता है। इस स्तर को समझना और मापना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि यह एक अत्यधिक व्यक्तिपरक प्रक्रिया है।

4- मैस्लो का सिद्धांत मानता है कि सभी व्यक्तियों के लिए समान आवश्यकताएँ होती हैं, लेकिन व्यक्ति विशेष की जीवन परिस्थितियों, उद्देश्य, और प्राथमिकताएँ अलग हो सकती हैं। कुछ व्यक्तियों के लिए स्वयं की प्राप्ति या आत्म-सम्मान से भी अधिक महत्वपूर्ण हो सकती हैं अन्य मूल्य, जैसे सामाजिक या पारिवारिक दायित्व।

5- सम्मान की आवश्यकता को प्राप्त करने के फलस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति में प्रतिस्पर्धा का विकास होता है जो आगे चलकर द्वेष में परिवर्तन हो जाता हैं।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्रश्न.1- मनो-विश्लेषनात्मक सिद्धांत के प्रतिपादक कौन थे?

प्रश्न.2- आवश्यकता सिद्धांत के प्रतिपादक कौन थे?

प्रश्न.3- अंतर्नोद सिद्धांत के प्रतिपादक कौन थे?

प्रश्न.4- अभिप्रेरणा के कितने घटक होते हैं?

प्रश्न.5- अभिप्रेरणा कितने प्रकार की होती हैं?

प्रश्न.6- प्रोत्साहन सिद्धांत के प्रतिपादक कौन थे?

प्रश्न.7- मेसलों ने आवश्यकता सिद्धांत कब प्रतिपादित किया?

15.9 छात्रों के लिए अभिप्रेरणा की उपयोगिता (UTILITY FOR THE STUDENTS OF MOTIVATION)

अभिप्रेरणा मानव व्यवहार का एक प्रमुख घटक है, जो व्यक्ति को किसी विशेष कार्य को करने के लिए प्रेरित करता है। अभिप्रेरणा एक ऐसी आंतरिक शक्ति है, जो व्यक्ति को लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्साहित करती है। छात्रों के संदर्भ में, अभिप्रेरणा का विशेष महत्व है क्योंकि यह उनके सीखने, व्यक्तित्व के विकास, और सफलता की दिशा को निर्धारित करती है। शिक्षण प्रक्रिया में अभिप्रेरणा न केवल छात्रों को अध्ययन के प्रति प्रेरित करती है, बल्कि उन्हें प्रत्येक चुनौतियों का सामना करने और आत्म-निर्भर बनने के लिए भी प्रोत्साहित करती है।

- **विद्यार्थियों में रूचि उत्पन्न करना-** अभिप्रेरणा छात्रों में अपनी पढाई के प्रति उनमें रूचि उत्पन्न करती हैं। यदि छात्र किसी विषय में रुचि नहीं लेते, तो वे उस विषय में गहराई से सीखने की कोशिश नहीं करते। लेकिन जब वे अभिप्रेरित होते हैं, तो वे सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। अर्थात विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा देकर उनकी सीखने के प्रति उनकी रूचि को बढाया जा सकता हैं।
- **लक्ष्य के निर्धारण में सहायक -** अभिप्रेरणा से छात्रों के अपने शैक्षणिक और व्यक्तिगत लक्ष्यों को निर्धारित करने में सहायता मिलती हैं। अभिप्रेरणा से छात्रों में सही और गलत का आकलन करने की क्षमता का विकास होता हैं तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसी दिशा में केन्द्रित होकर कार्य करता हैं।
- **समस्याओं और चुनोंतियों का सामना** – शैक्षणिक जीवन में छात्रों को विभिन्न समस्याओं तथा चुनोंतियों का सामना करना पढता हैं। अभिप्रेरणा से छात्रों को इन सभी प्रकार की चुनोंतियों तथा समस्याओं का साहसपूर्वक सामना करने और समस्याओं के समाधान को खोजने के लिए प्रेरित करती हैं। अभिप्रेरित छात्र सभी प्रकार की समस्याओं को एक प्रबल अवसर के रूप में देखते हैं।

- **आत्मविश्वास बढ़ाने में सहायक-** छात्रों को अभिप्रेरणा देने से उनके आत्म विश्वास में सकारात्मक बढ़ोत्तरी होती हैं, यही आत्मविश्वास छात्रों को आगे बढ़ने तथा जीवन में प्रत्येक चुनोंतियों का सामना करने के लिए तैयार करती हैं।
- **रचनात्मकता और नवाचार को प्रोत्साहन-** अभिप्रेरणा से छात्र नयी चीजें सीखने और प्रयोग करने के लिए हमेशा उत्साहित रहते हैं। तथा छात्र रचनात्मक सोच विकसित करते रहते हैं जिससे नवीन विचारों को अपनाने में संकोच नही करते हैं, इससे उनकी रचनात्मकता बढ़ती हैं तथा वे नवाचार के लिए प्रेरित होते हैं।

15.10 सारांश (SUMMARY)

अभिप्रेरणा मानव जीवन की एक मूलभूत और आवश्यक शक्ति है, जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत प्रयासरत रखती है। यह केवल कार्य करने की शक्ति नहीं, बल्कि उस कार्य के पीछे छिपी हुई वह भावना है जो व्यक्ति को प्रेरित करती है। अभिप्रेरणा के बिना कोई भी व्यक्ति लंबे समय तक किसी कार्य में रुचि नहीं ले सकता। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि व्यक्ति की आंतरिक और बाह्य प्रेरणाओं को सही दिशा मिले, तो वह न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। शिक्षा, परिवार, समाज और कार्यस्थल सभी जगहों पर अभिप्रेरणा की सकारात्मक भूमिका होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति की आवश्यकताओं, रुचियों और क्षमताओं को समझते हुए उसे अभिप्रेरित किया जाए।

15.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर.1- सिगमंड फ्रायड,

उत्तर.2- मैसलों,

उत्तर.3- क्लार्क हल,

उत्तर.4- तीन,

उत्तर.5- दो,

उत्तर.6- बोल्स तथा फाफ़मैन

उत्तर.7- सन 1954,

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCE)

1. गुप्ता, एस.पी. (2002), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद. शारदा पुस्तक भवन.
2. लाल, रमन.बिहारी. (2013), शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारंभिक संखियिकी, मेरठ. आर.लाल बुक डीपो.
3. शुक्ल,ओ.पी. (2002), शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ. भारत प्रकाशन.
4. सिंह, शिरीष.पाल. (2009), शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ. आर.लाल बुक डीपो.
5. पाठक, पी.डी. (2002), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा. विनोद पुस्तक मंदिर.
6. वर्मा, जी.एस. (2011), शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, मेरठ, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.
7. Mangal, S.K. (2007), Advanced educational psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private limited.
8. Mathur, S.S. (2007), Educational psychology, Agra. Vinod pustak bhandar.

15.13 निबन्धात्मक प्रश्न (LONG ANSWER QUESTIONS)

1. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते हैं? अभिप्रेरणा की विशेषताओं तथा अभिप्रेरणा के प्रकारों का वर्णन कीजिये।
2. आवश्यकता क्या हैं? अभिप्रेरणा में आवश्यकता के महत्व को स्पष्ट कीजिये तथा मैस्लों के अभिप्रेरणा सिधांत की विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
3. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते हैं? अभिप्रेरणा के प्रमुख सिधांतों का वर्णन कीजिये।

इकाई-16- सृजनात्मकता का अर्थ, परिभाषाएँ, उद्देश्य तथा विद्यार्थियों के लिए इसकी उपयोगिता (Meaning, Definitions, Objectives of Creativity. The Utility for the students of Creativity)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

16.2 उद्देश्य (Objectives)

16.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Creativity)

16.4 सृजनात्मकता की प्रकृति एवं विशेषताएं (Nature and Characterstics of Creativity)

16.5 सृजनात्मकता के घटक (Components of Creativity)

16.6 सृजनात्मकता की आवश्यकता (Need of Creativity)

16.7 सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Creativity)

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

16.8 छात्रों के लिए सृजनात्मकता की उपयोगिता (Utility for students of Creativity)

16.9 सारांश (Summary)

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of practice questions)

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

16.12 निबंधात्मक प्रश्न (Long answer questions)

16.1 प्रस्तावना (INTERODUCTION)

वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में सृजनात्मकता एक अत्यंत महत्वपूर्ण गुण के रूप में सामने आया हैं जो ना केवल ज्ञान के विस्तार के रूप में सहायक होता हैं। बल्कि सृजनात्मकता व्यक्तियों में नवाचार, कल्पनाशीलता और समस्याओं के समाधान की क्षमता को भी बढ़ाती हैं। सृजनात्मकता का अर्थ है नई और मौलिक सोच के माध्यम से कुछ नया उत्पन्न करना, जो उपयोगी और प्रभावशाली हो। यह केवल कला या साहित्य तक सीमित न होकर जीवन के हर क्षेत्र में काम आती है। विभिन्न शिक्षाविदों ने सृजनात्मकता को ऐसी मानसिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें व्यक्ति

अपने नवीन विचार, समस्या समाधान या अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति की कल्पनाशीलता, नवाचार क्षमता, समस्या-समाधान कौशल और स्वतंत्र सोच को प्रोत्साहित करना है। शिक्षा के क्षेत्र में सृजनात्मकता का विशेष महत्व है क्योंकि यह विद्यार्थियों को जिज्ञासु और आत्मविश्वासी बनाती है। यह उन्हें केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उन्हें प्रयोग करने, प्रश्न पूछने और वैकल्पिक समाधान खोजने के लिए प्रेरित करती है। सृजनात्मकता विद्यार्थियों के समग्र विकास में सहायक होती है और उन्हें 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाती है। इसलिए शिक्षकों और शिक्षा व्यवस्था को चाहिए कि वे ऐसे वातावरण का निर्माण करें जहाँ बच्चों की सृजनात्मक शक्ति को पहचानकर उसे विकसित किया जा सके।

16.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र -

6. छात्र सृजनात्मकता के अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेंगे।
7. छात्र सृजनात्मकता को परिभाषित कर सकेंगे।
8. छात्र सृजनात्मकता की प्रकृति एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
9. छात्र सृजनात्मकता के घटकों के बारे में समझ सकेंगे।
10. छात्र सृजनात्मकता की आवश्यकता के बारे में समझ सकेंगे।
11. छात्र सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जान सकेंगें।
12. छात्र सृजनात्मकता की उपयोगिता के बारे में समझ सकेंगे।

16.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Creativity)-

सृजनात्मकता वह मानसिक क्षमता है जिसके द्वारा व्यक्ति मौलिक, नवीन और उपयोगी विचारों, वस्तुओं या समस्या समाधानों का निर्माण करता है। यह मानव मस्तिष्क की एक विशिष्ट विशेषता है, जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। सृजनात्मकता का संबंध केवल कला, साहित्य या संगीत जैसे रचनात्मक क्षेत्रों से नहीं है, बल्कि इसका विस्तार

विज्ञान, प्रौद्योगिकी, शिक्षा, चिकित्सा, व्यापार, और यहाँ तक कि हमारे दैनिक जीवन तक होता है। जब कोई व्यक्ति किसी समस्या का अनूठा समाधान निकालता है, नया विचार प्रस्तुत करता है, या किसी पुराने ढर्रे से हटकर सोचता है, तब वह सृजनात्मकता का परिचय देता है।

सृजनात्मकता दो शब्दों से मिलकर बना हैं- "सृजन" + "आत्मकता", अर्थात "कुछ नया रचने या उत्पन्न करने की स्वाभाविक क्षमता या प्रवृत्ति"।

संस्कृत में "सृजन" शब्द का अर्थ होता है- उत्पादन करना, निर्माण करना या रचना करना, और "आत्मकता" का अर्थ है उससे संबंधित गुण या स्वभाव। इस प्रकार, सृजनात्मकता का शाब्दिक अर्थ हुआ- नई वस्तुओं, विचारों या अभिव्यक्तियों को जन्म देने की क्षमता। अतः सृजनात्मकता केवल भौतिक वस्तुओं के निर्माण तक सीमित नहीं है, बल्कि विचारों, भावनाओं, तरीकों, और दृष्टिकोणों में नवीनता लाने की योग्यता को भी समाहित करता है।

सृजनात्मकता का मूल आधार कल्पनाशक्ति, जिज्ञासा और स्वतंत्र चिंतन है। यह प्रक्रिया अक्सर अनुभव, ज्ञान, पर्यवेक्षण और संवेदनशीलता से जुड़ी होती है। जब हम बच्चों को रंगों से खेलने, कहानियाँ बनाने, प्रश्न पूछने या किसी खेल में नए नियम बनाने की स्वतंत्रता देते हैं, तो हम उनके भीतर सृजनात्मकता को प्रोत्साहित कर रहे होते हैं। यह एक सहज प्रक्रिया हो सकती है, लेकिन इसके लिए उपयुक्त वातावरण, प्रोत्साहन और अभ्यास भी आवश्यक होता है। विभिन्न विद्वानों ने सृजनात्मकता को परिभाषित करने का प्रयास किया हैं जो निम्न प्रकार से हैं-

जेम्स ड्रेवर के अनुसार- "सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती हैं"।

क्रो एवं क्रो के अनुसार- "सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया हैं"।

गिल्फोर्ड के अनुसार- "सृजनात्मकता का अर्थ है- विचारों का मौलिक एवं नवीन ढंग से उत्पादन करना।"

डा. एस.एस चौहान के अनुसार- "सृजनात्मकता एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को किसी स्थिति में नया विचार उत्पन्न करने या नई प्रतिक्रिया देने में सक्षम बनाती है।"

टोरेंस के अनुसार- "सृजनात्मकता का अर्थ है- समस्या की पहचान करना, विभिन्न विकल्प उत्पन्न करना, उनका मूल्यांकन करना और सर्वश्रेष्ठ समाधान का चयन करना।"

16.4 सृजनात्मकता की प्रकृति एवं विशेषताएं (Nature and Characterstics of Creativity)

सृजनात्मकता के स्वरुप एवं उसके सर्वमान्य गुण अथवा तत्वों को उसकी प्रकृति या विशेषताएं कहते हैं, जो निम्नवत हैं-

1. सृजनात्मकता मनुष्य की वह योग्यता या शक्ति हैं जिसके द्वारा वह नए-नए विचार प्रस्तुत करता हैं तथा नई चीजों का निर्माण करता हैं।
2. सृजनात्मकता व्यक्ति में जन्मजात होती हैं इसकी अभिव्यक्ति एवं विकास अनुकूल पर्यावरण में होता हैं।
3. सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती हैं यह प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ना कुछ मात्रा में अवश्य होती हैं।
4. अलग-अलग व्यक्तियों में सृजनात्मकता की योग्यता भी अलग-अलग होती हैं।
5. सृजनात्मक व्यक्ति नए और अनोखे विचार प्रस्तुत करता है, जो सामान्य या पारंपरिक नहीं होते हैं।
6. सृजनात्मकता में व्यक्ति उस कल्पना की शक्ति से परिचित होता है जो सामान्य बातों को असामान्य रूप में देखने की क्षमता रखता है।
7. सृजनात्मक व्यक्ति में जटिल और नई समस्याओं को नए ढंग से समाधान करने की योग्यता होती है।
8. सृजनात्मक व्यक्ति अपने विचारों और दृष्टिकोणों को परिस्थिति के अनुसार बदलने में सक्षम होता है।
9. सृजनात्मक व्यक्ति हमेशा कुछ नया जानने, समझने और खोजने के लिए उत्सुक रहता है।

16.5 सृजनात्मकता के घटक (Components of Creativity)

सृजनात्मकता के घटक वे मूल तत्त्व हैं जो किसी व्यक्ति की सृजनात्मक क्षमता को बनाते और बढ़ाते हैं। ये घटक यह निर्धारित करते हैं कि कोई व्यक्ति किसी समस्या, परिस्थिति या विचार को कितनी रचनात्मकता से देख और हल कर सकता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक टोरेंस ने सृजनात्मकता के चर प्रमुख तत्व माने हैं जो निम्नवत हैं-

- **नवीनता (Novelty)-** नवीनता सृजनात्मकता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं यह किसी विचार, उत्पाद, दृष्टिकोण या समाधान की नई, मौलिक और अनूठी प्रकृति को दर्शाता है। जब तक व्यक्ति में नवीनता के प्रति आकर्षण नही होगा तब तक वह व्यक्ति नयी चीज का सृजन नही कर सकता हैं।

- **प्रवाह (Fluency)-** प्रवाह सृजनात्मकता का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो यह दर्शाता है कि कोई व्यक्ति कितनी सहजता, गति और मात्रा में विचार उत्पन्न कर सकता है। यह विचारों की बहुलता को दर्शाता है, न कि उनकी गुणवत्ता को। किसी समस्या के समाधान एवं किसी वस्तु के निर्माण के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने को प्रवाह कहते हैं। सृजनात्मक व्यक्तियों के चिंतन में प्रवाह होता हैं।

- **नमनीयता (Flaxibility)-** किसी वस्तु को अनेक रूप में प्रस्तुत करने या किसी भी समस्या के अनेक समाधान निकालने की क्षमता को नमनीयता कहते हैं। टोरेन्स के अनुसार जिन व्यक्तियों में यह क्षमता होती हैं उन व्यक्तियों में सृजनात्मकता होती हैं।

- **विस्तारता (Elaboration)-** किसी विचार को अपने अनुभवों के आधार पर विस्तृत व्याख्या करने को विस्तारता कहते हैं। विस्तारता, सृजनात्मकता का एक प्रमुख घटक है, जो यह दर्शाता है कि कोई व्यक्ति किसी मौलिक विचार को कितनी गहराई, विवरण और स्पष्टता के साथ विकसित कर सकता है। यह किसी विचार को केवल कहना नहीं, बल्कि उसे संवारना, जोड़ना और कार्यान्वित रूप देना है।

इन सभी चारों घटकों के संतुलित विकास से व्यक्ति की सृजनात्मक क्षमता बढ़ती है, तथा शिक्षा, विज्ञान, कला, उद्यमिता आदि सभी क्षेत्रों में ये घटक नवाचार को जन्म देते हैं।

16.6 सृजनात्मकता की आवश्यकता (Need of Creativity)

सृजनात्मकता मानव जीवन या विद्यार्थी जीवन का एक सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है, तथा विद्यार्थी जीवन में सृजनात्मकता की आवश्यकता विभिन्न क्षेत्रों में महशूस की जाती हैं जो निम्नवत हैं -

- **नवाचार के लिए आवश्यक-** नए विचारों, नवीन तकनीकों तथा समाज में उत्पन्न नवीन समस्याओं के समाधान की खोज के लिए व्यक्ति में सृजनात्मकता का होना अत्यंत आवश्यक है। यह व्यक्ति को स्वयं, समाज और राष्ट्र को आगे बढ़ाने में मदद करती है।
- **शिक्षा को रुचिकर और प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक-** शिक्षा केवल सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि यह एक गहराई से जुड़ा प्रक्रिया है जो छात्र और अध्यापक की सोच, समझ, जिज्ञासा और नवाचार को जन्म देती है। जब शिक्षा प्रणाली में सृजनात्मकता का समावेश होता है, तब वह विद्यार्थियों के लिए रुचिकर, प्रभावी और जीवनोपयोगी बन जाती है।
- **समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक-** व्यक्ति के जीवन में समस्याएँ आनी स्वाभाविक हैं चाहे वे व्यक्तिगत हों, सामाजिक हों, व्यावसायिक हो या शैक्षिक। प्रत्येक समस्या का समाधान पारंपरिक तरीकों से संभव नहीं होता, विशेषकर तब जब परिस्थितियाँ जटिल या नवीन हों। ऐसे समय में सृजनात्मकता ही व्यक्ति की वह शक्ति है जो समस्याओं के समाधान में नई दिशा और दृष्टिकोण प्रदान करती है।
- **व्यक्तिगत विकास हेतु आवश्यक-** सृजनात्मकता न केवल समाज और शिक्षा के व्यापक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, बल्कि यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में भी अत्यंत आवश्यक भूमिका निभाती है। यह व्यक्ति को केवल नवीन विचारों का सृजन करने में सक्षम नहीं बनाती, बल्कि उसके भीतर आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान और अनुकूलन की क्षमता को भी विकसित करती है।

- **समाजिक एवं सांस्कृतिक संवर्धन हेतु आवश्यक-** सृजनात्मकता समाज और संस्कृति के निर्माण, विकास तथा संवर्धन में एक केंद्रीय भूमिका निभाती है। यह न केवल व्यक्तियों को जोड़ने और समाज में सौहार्द स्थापित करने का माध्यम है, बल्कि विविध संस्कृतियों की अभिव्यक्ति, संरक्षण और नवाचार में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- **आर्थिक और तकनीकी विकास हेत आवश्यक-** वर्तमान वैश्विक युग में आर्थिक और तकनीकी क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसे में नवाचार और सृजनात्मकता दो ऐसे मूल स्तंभ हैं, जो किसी देश की प्रगति और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को निर्धारित करते हैं। केवल संसाधनों या श्रमशक्ति के आधार पर विकास संभव नहीं है, जब तक उसमें सृजनात्मक विचारों और तकनीकी नवाचार का समावेश न हो।

अतः सृजनात्मकता किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार है। यह केवल कला या साहित्य तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र जिसमें शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के संरक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान समय में रटने और दोहराने से कहीं अधिक ज़रूरी है सोचने, समझने और नवीन दिशा में कार्य करने की क्षमता से हैं।

16.7 सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Creativity)

सृजनात्मकता एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति नवीन, मौलिक और उपयुक्त विचार, समाधान, कलाकृतियाँ या उत्पाद उत्पन्न करता है। सृजनात्मकता किसी भी व्यक्ति में एक जन्मजात गुण हो सकता है, सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले कई कारक होते हैं जो किसी व्यक्ति की मौलिक और नवीन सोच को प्रेरित या बाधित कर सकते हैं। यह एक जटिल प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक और तकनीकी पहलुओं से जुड़ी होती है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता, कल्पनाशीलता, आत्मविश्वास, जिज्ञासा और आंतरिक प्रेरणा उसकी रचनात्मकता को बढ़ावा देती है। परिवार और समाज का सहयोगात्मक दृष्टिकोण, नवाचार के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और स्वतंत्रता का वातावरण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वहीं, शिक्षण पद्धतियाँ, शिक्षक का दृष्टिकोण, और विद्यालयीय संसाधन जैसे पुस्तकालय, प्रयोगशाला और सह-शैक्षिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों की

सृजनात्मक सोच को विकसित करने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिक तकनीक, डिजिटल संसाधन और वैश्विक विचारों तक पहुँच भी नई संभावनाओं और विचारों को जन्म देती है। सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को स्वतंत्र, सुरक्षित, और प्रेरणादायक वातावरण मिले, जहाँ वह बिना भय के अपने विचारों को व्यक्त कर सके और नवीन प्रयोगों का साहस कर सके। सृजनात्मकता को निम्न कारकों के द्वारा प्रभावित किया जा सकता हैं-

1. व्यक्तिगत कारक (Personal Factors)
2. पारिवारिक और सामाजिक वातावरण (Family and Social Environment)
3. शैक्षिक वातावरण (Educational Environment)
4. मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक कारक (Psychological and Emotional Factors)
5. प्रौद्योगिकी और मीडिया (Technology and Media)

सृजनात्मकता एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो विभिन्न कारकों के संयुक्त प्रभाव से विकसित होती है। यह केवल एक जन्मजात क्षमता नहीं, बल्कि एक ऐसी शक्ति है जिसे अनुकूल वातावरण, समर्थन और अभ्यास के माध्यम से निखारा जा सकता है। यदि परिवार, विद्यालय और समाज मिलकर व्यक्ति को सोचने, अभिव्यक्ति करने और प्रयोग करने की स्वतंत्रता दें, तो हर व्यक्ति में सृजनात्मकता का बीज अंकुरित हो सकता है।

16.8 छात्रों के लिए सृजनात्मकता की उपयोगिता (UTILITY FOR THE STUDENTS OF CREATIVITY)

छात्रों के लिए सृजनात्मकता की उपयोगिता अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह न केवल उनके शैक्षिक विकास में सहायक होती है, बल्कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व निर्माण में भी योगदान देती है। सृजनात्मकता विद्यार्थियों को परंपरागत सोच से परे जाकर समस्याओं के नवीन और प्रभावी समाधान खोजने की क्षमता देती है। सृजनात्मकता विद्यार्थियों की जिज्ञासा,

कल्पनाशीलता और आत्म-अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करती है, जिससे वे अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर पाते हैं। रचनात्मक छात्र अधिक आत्मनिर्भर होते हैं और चुनौतियों का सामना आत्मविश्वास के साथ करते हैं। इसके अलावा, सृजनात्मकता समूह कार्य, परियोजना आधारित शिक्षा, और नवाचार से जुड़े कार्यों में भी सफलता दिलाने में सहायक होती है। यह उन्हें केवल अकादमिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सोचने, समझने और कार्य करने का एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती है। इसलिए, शिक्षा में सृजनात्मकता का विकास न केवल विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाता है, बल्कि उन्हें भावी जीवन के लिए भी बेहतर रूप से तैयार करता है। सृजनात्मकता विद्यार्थियों के लिए निम्न रूपों में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं -

- **शैक्षणिक विकास में उपयोगी -** सृजनात्मकता छात्रों को विषयों को गहराई से समझने, विश्लेषण करने, चिंतन-मनन करने और व्यावहारिक रूप से प्रयोग करने की प्रेरणा देती है। जब छात्र रचनात्मक रूप से सोचते हैं, तो वे सिर्फ याद नहीं रखते, बल्कि विषय की मूल भावना को समझते हैं। इससे उनमें जिज्ञासा और शोध-भावना का विकास होता है। जैसे- गणित में सृजनात्मक छात्र जटिल से जटिल समस्याओं को नए तरीकों से हल कर सकते हैं, जबकि विज्ञान में वे नवाचार और प्रयोगों से नये निष्कर्ष निकाल सकते हैं।
- **समस्या समाधान और निर्णय लेने की क्षमता में उपयोगी-** सृजनात्मक सोच वाले छात्र किसी समस्या को अनेक दृष्टिकोणों से देखने में सक्षम होते हैं। वे विभिन्न प्रकार के विकल्पों की खोज करते हैं, जोखिम उठाने से नहीं डरते और विफलता को सीखने का अवसर मानते हैं। इससे उनमें निर्णय लेने की क्षमता, आलोचनात्मक सोच और आत्मनिर्भरता का विकास होता है।
- **सामाजिक और भावनात्मक विकास में उपयोगी-** विद्यार्थियों को सृजनात्मक गतिविधियाँ जैसे समूह में कला निर्माण, नाटक, कहानी लेखन या सहयोगात्मक परियोजनाएँ, छात्रों को टीमवर्क, सहानुभूति और संवाद कौशल सिखाती हैं। इन गतिविधियों से छात्र दूसरों के विचारों को समझते हैं, तथा अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हैं और मिलकर समस्या समाधान ढूंढते हैं, तो उनका सामाजिक बौद्धिक विकास होता है। साथ ही, रचनात्मक

अभिव्यक्ति जैसे संगीत, चित्रकला या लेखन, उन्हें अपनी भावनाओं को स्वस्थ तरीके से व्यक्त करने का माध्यम देती है, जिससे आत्म-स्वीकृति और मानसिक संतुलन में वृद्धि होती है।

- **आत्म-विश्वास के विकास में सहायक-** जब विद्यार्थी अपनी रचनात्मकता या सृजनात्मकता के माध्यम से कुछ नई चीजों का निर्माण करते है जैसे कोई चित्र बनाना, कविता लिखना, मॉडल तैयार करना या मंच पर प्रस्तुति देना, तो उन्हें अपने विचारों की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। जब उनके प्रयासों की सराहना होती है या वे स्वयं अपने कार्य से संतुष्ट होते हैं, तो उनका आत्म-विश्वास स्वाभाविक रूप से बढ़ता है। सृजनात्मक कार्यों में निरंतर भागीदारी छात्रों को यह विश्वास दिलाती है कि वे समस्याओं का समाधान ढूंढ़ सकते हैं, अपनी बात कह सकते हैं और कुछ मूल्यवान चीजों का सृजन भी कर सकते हैं।
- **समस्या समाधान में सहायक-** सृजनात्मकता छात्रों को रटकर उत्तर देने की बजाय समस्याओं को अलग दृष्टिकोण से देखने और समझने की क्षमता देती है। जब कोई छात्र किसी कठिन परिस्थिति या शैक्षणिक चुनौती का सामना करता है, तो सृजनात्मक सोच उसे पारंपरिक तरीकों से हटकर नए और प्रभावी समाधान खोजने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, एक गणितीय समस्या का हल केवल सूत्र लगाने से नहीं, बल्कि तर्कशीलता और कल्पनाशीलता के साथ सोचने से भी निकाला जा सकता है। यही कौशल उन्हें जीवन की वास्तविक समस्याओं में भी आत्मनिर्भर और सक्षम बनाता है।
- **नेतृत्व और नवाचार की क्षमता के विकास में सहायक-** सृजनात्मकता विद्यार्थियों को केवल अनुकरण करने वाला नहीं, बल्कि पहल करने वाला बनाती है। जब छात्र नई सोच के साथ समस्याओं को हल करते हैं, तो वे केवल एक समाधान नहीं खोजते, बल्कि दूसरे विद्यार्थियों को भी प्रेरित करते हैं। यही गुण उन्हें नेतृत्व के लिए तैयार करता है। अतः नवाचार, सृजनात्मक सोच का ही परिणाम है जब छात्र पारंपरिक सीमाओं से परे जाकर नए उत्पाद, विधियाँ या विचार उत्पन्न करते हैं। शिक्षा में रचनात्मकता को बढ़ावा देने से ऐसे भविष्य के नागरिक तैयार होते हैं जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं।

- **मानसिक स्वास्थ्य और तनाव प्रबंधन में सहायक-** सृजनात्मक गतिविधियाँ जैसे चित्रकला, संगीत, नृत्य, लेखन या हस्तकला, विद्यार्थियों को अपनी भावनाओं को सकारात्मक रूप से व्यक्त करने का माध्यम प्रदान करती हैं। जब छात्र इन माध्यमों से अपने अंदर के विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं, तो उनके भीतर की बेचैनी, तनाव और चिंता कम होती है। सृजनात्मक कार्य ध्यान केंद्रित करने, मन को शांत रखने और आत्म-संतुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं। यह विशेष रूप से उन छात्रों के लिए लाभकारी होता है जो प्रतिस्पर्धा, परीक्षा या सामाजिक दबाव के कारण मानसिक दबाव का अनुभव करते हैं। इस प्रकार, सृजनात्मकता न केवल बौद्धिक बल्कि भावनात्मक रूप से भी छात्रों को सशक्त बनाती है।

छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए सृजनात्मकता एक अनिवार्य तत्व है। यह विद्यार्थियों को उन्हें केवल ज्ञान अर्जन तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उन्हें विचारशील, संवेदनशील और नवाचारी बनाती है। वर्तमान युग में जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता और तकनीकी परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं, वहाँ सृजनात्मकता ही वह मानवीय विशेषता है जो मनुष्य को अद्वितीय बनाती है। अतः शिक्षा व्यवस्था को चाहिए कि वह छात्रों की सृजनात्मक क्षमताओं को पहचानकर उन्हें विकसित करने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करे।

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

प्रश्न.1- निम्न में सृजनात्मकता के घटक नही हैं,

(अ) नमनीयता (ब) विस्तारता (स) उद्दंडता (द) प्रवाह

प्रश्न.2- सृजनात्मकता के माध्यम से विद्यार्थी अपनी भावनाओं को प्रभावी रूप से व्यक्त कर सकते हैं। **सही/गलत**

प्रश्न.3- सृजनात्मकता केवल कला और संगीत के क्षेत्रों तक सीमित होती है। **सही/गलत**

प्रश्न.4- सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख दो करक कौन कौन से हैं

16.09 सारांश (SUMMARY)

सृजनात्मकता किसी भी विद्यार्थी के संपूर्ण विकास की आधारशिला है, जो न केवल उनकी बौद्धिक क्षमताओं को पोषित करती है, बल्कि उनके सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह केवल एक कला-आधारित गुण नहीं है, बल्कि एक जीवन कौशल है जो विद्यार्थियों को जिज्ञासु, कल्पनाशील, समस्या-सुलझाने वाला और आत्मविश्वासी बनाता है। जब कोई छात्र किसी विषय को पारंपरिक सीमाओं से परे जाकर समझने और उस पर विचार करने लगता है, तो वह न केवल ज्ञान को आत्मसात करता है, बल्कि उसे रचनात्मक रूप से प्रस्तुत भी करता है। यही प्रक्रिया सृजनात्मकता की पहचान है। वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना देना या ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि उस सूचना या ज्ञान के आधार पर विद्यार्थियों को सोचने, विश्लेषण करने, कल्पना करने और नवाचार करने के लिए सक्षम बनाना होना चाहिए। सृजनात्मकता विद्यार्थियों को आत्म-अभिव्यक्ति करने का मंच देती है, जिससे उनका आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास सुदृढ़ होता है। इसके माध्यम से वे अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से व्यक्त कर पाते हैं और मानसिक तनाव या चिंता से भी मुक्त होते हैं। सृजनात्मक सोच व्यक्ति को नेतृत्व के योग्य बनाती है, क्योंकि वह न केवल नई दिशा में सोच सकता है, बल्कि साथ में वह दूसरों को भी उस दिशा में प्रेरित कर सकता है। इसके साथ ही, सृजनात्मकता विद्यार्थियों को समूह में कार्य करने, सहयोग करने और दूसरों की भावनाओं को समझने की क्षमता को भी विकसित करती है। सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा व्यवस्था को लचीला, बहु-विषयक, संवादात्मक और अनुभव आधारित बनाना आवश्यक है। शिक्षकों की भूमिका केवल जानकारी देने वाले के रूप में नहीं, बल्कि एक अच्छा अभिप्रेरक और मार्गदर्शक के रूप में होनी चाहिए, जो बच्चों के विचारों को सुनें, उनकी कल्पनाओं को प्रोत्साहित करें और उन्हें प्रयोग करने की स्वतंत्रता दें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, और वर्तमान शैक्षिक दृष्टिकोण सृजनात्मकता को शिक्षा के मूल में लाने का प्रयास कर रहे हैं, जो एक स्वागत योग्य परिवर्तन है। अंततः, यदि हम ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण कर सकें जो छात्रों में केवल जानकारी नहीं, बल्कि सृजनात्मकता, संवेदना, नवाचार, और नेतृत्व को भी जन्म दे, तो हम एक ऐसे समाज की ओर बढ़ेंगे जो अधिक

विचारशील, मानवीय और प्रगतिशील होगा। इसीलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सृजनात्मकता केवल शिक्षा का एक अंग नहीं, बल्कि शिक्षा का उद्देश्य ही होना चाहिए।

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

उत्तर.1- (स) उद्दंडता,

उत्तर.2- सही,

उत्तर.3- गलत,

उत्तर.4- 1- व्यक्तिगत कारक, 2- शैक्षिक वातावरण

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCE)

9. गुप्ता, एस.पी. (2002), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद. शारदा पुस्तक भवन.
10. लाल, रमन.बिहारी. (2013), शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारंभिक संखियिकी, मेरठ. आर.लाल बुक डीपो.
11. शुक्ल,ओ.पी. (2002), शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ. भारत प्रकाशन.
12. सिंह, शिरीष.पाल. (2009), शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ. आर.लाल बुक डीपो.
13. Mangal, S.K. (2007), Advanced educational psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private limited.
14. Mathur, S.S. (2007), Educational psychology, Agra. Vinod pustak bhandar.

16.12 निबन्धात्मक प्रश्न (LONG ANSWER QUESTIONS)

4. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं? सृजनात्मकता की विशेषताओं का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
5. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं? सृजनात्मकता की आवश्यकता एवं महत्व का विस्तृत वर्णन कीजिये।

6. सृजनात्मकता क्या हैं? सृजनात्मकता किस प्रकार से विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण हैं? चर्चा कीजिये।
7. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं? सृजनात्मकता के प्रमुख घटकों का वर्णन कीजिये।
8. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं? सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।